त्रैमासिक

हरसिंगार

वर्ष:५ भारतीय भाषा संरक्षा सम्मेलन एवं अंग्रेजी हटाओ अंक ५ अंक:४



मिल करते तव पद सेवा ॥

जय हो हिन्दी रानी

हर सिंगार

त्रैमासिक
हरसिंगार

भारतीय भाषा संरक्षा सम्मेलन एवं अंग्रेजी हटाओ अंक ५

वर्ष : ५ अंक : ४

अक्टूबर- दिसम्बर २००२

संरक्षक
मनोहर कोठारी

सम्पादक
भगवती प्रसाद देवपुरा

प्रबन्ध सम्पादक
श्याम प्रकाश देवपुरा

सम्पादन सहयोग
पुरुषोत्तम पालीवाल

विज्ञापन-व्यवस्था
संजय प्रकाश देवपुरा

मूल्य : यह अंक ३० रु. वार्षिक ५५ रु.

प्रकाशक
साहित्य-मण्डल
श्रीनाथद्वारा - ३१३३०१
✆ ०२९५३-३०७८५

लेजर टाईप सेटिंग :
कुमावत ऑफसेट प्रिन्टर्स
बी-१, हरिदासजीकी मगरी,उदयपुर ✆ ४३३०७५,४३३०४२

मुद्रक
हरिहर प्रिन्टर्स
जे-६७, अशोक चौक, आदर्श नगर,जयपुर

हे ईश्वर! हमारे देश की रक्षा करो !!

✍ भगवतीप्रसाद देवपुरा

सन् १९७१ में, जब हमने बांग्ला देश को पाकिस्तानी शिकंजे से मुक्त कराया, तब हमने ९९००० पाकिस्तानी फौजियों को भी कैद किया था। उस समय उन पाकिस्तानी दरिन्दे फौजियों के बंकरों से सहस्रों की संख्या में नग्न बंगवासी महिलाएँ बरामद की गई थीं, जो महीनों उनकी वासना का शिकार बनी थीं। इस वीभत्स समाचार से सम्पूर्ण संसार स्तब्ध रह गया था और पश्चिमी देशों के समाचार पत्रों ने आवेश में आकर यहाँ तक लिख दिया था–" पाकिस्तानी फौजी दरिन्दे इन्सानी नस्ल के नहीं लगते–लगता है ये भेड़ियों की औलाद हैं।"

हमारे सहस्रों सैनिकों ने अपना बलिदान देकर जिस बांग्लादेश को स्वतन्त्र कराया था, आज वर्षों बाद हम देखते हैं कि उसी बांग्लादेश ने हमारे उस उपकार की, उस महान् त्याग की कीमत किस प्रकार चुकाई है। हो सकता है कि हम उसे दुश्मन देश न मानें, किन्तु यह स्पष्ट है कि हमारे देश के राजनीतिबाजों की विवेकहीन दुर्बल रीति–नीतियों, अशोभनीय आचरणों और गलत व्यवहारों के कारण एक छोटा सा, हमसे उपकृत, देश भी हमें आँखें दिखाने लगता है।

जिस मुशर्रफ को कारगिल में हमारे जाँबाज सैनिकों ने धूल चाटने के लिए विवश किया था, वही मुशर्रफ हमारे नेताओं की घुटना टेक नीतियों के कारण हमें आँखें दिखाता रहता है और हम अमरीकी पट्ठे बने हुए, गिड़गिड़ाते हुए, उसे गीदड़ी भभकियाँ देते रहते हैं।

आज तक मुशर्रफ और उसके पूर्वजों ने कश्मीर में लगभग एक लाख हिन्दुओं की हत्या कर दी है, लाखों पण्डितों को काश्मीर छोड़ने के लिए विवश कर शरणार्थी बना दिया है। और एक हम हैं जो उस नारकीय व्यक्ति को सबक सिखाने की केवल बातें करते रहते हैं। जिन अमरीकी आदेशों को हम आँख मूँद कर माने जा रहे हैं उसी अमरीका से आशीर्वाद प्राप्त कर मुशर्रफ के हौसले बुलन्द हो गये हैं और अबतक वह हमारे सब मित्र देशों में फूट डालकर उनमें अपना प्रभाव जमाने का भरसक प्रयास कर रहा है।

विश्व में नेपाल ही एक ऐसा देश है जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अत्यन्त सन्निकट है। उसका और हमारा अतीत एक सा है। नेपाल के मन्दिर–मठ में जाकर जब हम वहाँ की देव–प्रतिमाओं के दर्शन करते हैं, विष्णुपदी और बागमती में स्नान कर उसका पूजार्चन करते हैं तब हमें ऐसा लगता है कि हम प्रयागराज में ही हैं। आज उसी

हर सिंगार

नेपाल को मुशर्रफ ने आई.एस.आई. का गढ़ बना दिया है। पाकिस्तानी आज उनके भाई बन गये हैं और भारतीयों को नेपाल की सीमा पर प्रताड़ित किया जाने लगा है। यह सब हुआ है हमारे अदूरदर्शी नेताओं की विवेकहीन नीतियों के कारण ! पता नहीं, इसका देश को क्या परिणाम भुगतना होगा ! चालाक मुशर्रफ ने नेपाल की ही नहीं बर्मा, लंका, भूटान, मालदीव आदि देशों की सहानुभूति प्राप्त करते हुए पूरे दक्षिणी एशिया महाद्वीप में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली है। इधर भारतीय नेताओं को देश की कोई चिन्ता नहीं है। या तो वे चुनावी अठखेलियों में व्यस्त हैं या एक दूसरे को चोर सिद्ध करने में लगे हुए हैं। सरकार में बैठे हुए भारतीय संस्कृति के ठेकेदार राजनेता, जो 'स्वदेशी' की बांग लगाते नहीं थकते थे–आज विदेशी के हाथों बिक से गये हैं। यहाँ तक कि प्रिण्ट मीडिया को इन्होंने विदेशियों के हाथ बेच दिया है।

भारतीय संसद पर हमला होने के बाद हमारी सेनाएँ अप्रत्याशित जोश–खरोश के साथ देश की सीमा की रक्षार्थ जुट पड़ी थीं किन्तु राजनेताओं ने उनके हौसले भी पस्त कर दिये हैं। सुना ऐसा भी गया है कि सीमाओं से गुपचुप सेनाएँ वापस बुला ली गई हैं। इधर देश में पंचमांगियों और आतंकवादियों को हर संभव सहायता देने वाले गद्दारों ने हमारे देश के युद्ध प्रतिष्ठानों और आयुध भण्डारों को आग के हवाले कर दिया है और सरकार सब जानते हुए भी, केवल वोट की खातिर, कोई कार्यवाही नहीं कर रही है। सम्पूर्ण देश बारूद पर बैठा हुआ है–पता नहीं–क्या होगा ? किन्तु हमारे नेता बाँसुरी बजाने में व्यस्त हैं। चूँकि सारे देश की जनता आस्तिक है, उसे 'राम' पर पूरा भरोसा है। अतः सारा देश रामभरोसे चल रहा है– लगता है जनता भी यही सोचती है कि **'कोउ नृप होय हमें का हानि'**। क्योंकि स्वतन्त्रता का लाभ तो सीमित राजनेताओं को ही मिला है। यह जनता तो आज भी भूखी–नंगी है और छोटे से कार्य को पूरा करने के लिए भी भारी रिश्वत दे रही है।

आइये, हम भी यही कहें-' हे ईश्वर ! हमारे देश की रक्षा करो।'

-प्रधानमंत्री, साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

हम भारतीय | हमारे संकल्प | हमारा अभियान

-सप्तपदी-

मेरा जन्म भारत में हुआ, इसकी भूमि के अन्न, जल, हवा से मेरा पोषण होता है, इस अर्थ में मैं भारतीय हूँ यह सत्य है किन्तु सच्चे अर्थ में भारतीय नागरिक कहलाए जाने के लिए मैं ये सात संकल्प करता हूँ :

१. मैं अपना परिचय जाति, धर्म, भाषा, प्रान्त के सन्दर्भ में न देते हुए 'मैं भारतीय हूँ–इसी प्रकार दूँगा लेकिन मेरी भारतीयता 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को समाहित करने वाली होगी।
२. मैं चिन्तन करने, बोलने, लिखने या हस्ताक्षर करने के लिए अपनी मातृभाषा अथवा राष्ट्रभाषा का ही सर्वत्र प्रयोग करूँगा। आवश्यक होने पर ही अन्य भाषा को व्यवहार में लाऊँगा। मैं स्वदेशी वस्तुओं को ही उपयोग में लाऊँगा। बहुत आवश्यक होने पर ही विदेश में निर्मित वस्तुओं का इस्तेमाल करूँगा।
३. अनेक जाति, धर्म, पंथ वाले अपने समाज में सामाजिक अभिसरण को बढ़ाने के दायित्व का मैं निर्वाह करूँगा। इसके लिए मैं अपनी जाति, धर्म, पंथ से बाहर कम से कम पाँच व्यक्तियों को अपना मित्र बनाऊँगा।
४. अपने परिवार के अतिरिक्त कम से कम पाँच अन्य परिवारों के साथ स्नेह, सद्भाव से सम्बन्ध जोड़कर उन्हें छोटे तथा सुखी परिवार की कल्पना दूँगा तथा देश की तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या को नियंत्रित करने का प्रयास करूँगा।
५. मैं जिस हरी–भरी वसुन्धरा पर रहता हूँ उसके पर्यावरण के लिए खतरा पैदा हो रहा है, इसलिए कम से कम पाँच वृक्ष लगाऊँगा तथा आसपास की जगह, नदी–नाले आदि को स्वच्छ रखूँगा।
६. निरक्षरता हमारे देश के लिए बहुत बड़ा कलंक है। उसे मिटाने के लिए कम से कम पाँच लोगों को मैं साक्षर बनाऊँगा।
७. अपनी शैक्षणिक एवं वैचारिक क्षमता बढ़ाने के लिए तथा राष्ट्र निर्माण की कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए मैं पाँच राष्ट्रपुरुषों की प्रेरणादायी जीवनियों और पाँच उन्नत तथा ऊर्जावान राष्ट्रों के इतिहास का गहराई से अध्ययन करूँगा।

साभार -राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

अनुक्रमणिका



सम्पादकीय

राष्ट्र को स्वतन्त्र हुए पचपन वर्ष हो गए हैं। इस लम्बे समय में कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जिसका भरपूर विकास नहीं हुआ हो। मात्र एक ऐसा क्षेत्र रह गया जिसका विकास होना तो दूर रहा वह पूर्णतया विनाश के कगार पर है-और वह क्षेत्र है राष्ट्रभाषा हिन्दी का।

अब बार-बार यह कहने की बात नहीं रह गई है कि जब भारत का संविधान लागू हुआ तब से ही राष्ट्रभाषा हिन्दी के विरुद्ध कुचक्र प्रारंम्भ हो गया था। स्वनामधन्य राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, सेठ गोविन्ददास, मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' प्रभृति राष्ट्रभक्तों ने अथक प्रयत्न किये किन्तु तत्कालीन प्रधानमन्त्री की हठधर्मिता से संविधान में राष्ट्रभाषा घोषित होने के पश्चात् भी किसी दुरभिसन्धि के कारण हिन्दी राष्ट्रभाषा न बन सकी-उसे पन्द्रह वर्ष का वनवास दे दिया गया और आज तो यह स्थिति हो गई है कि उस वनवास की अवधि का कोई अन्त ही नहीं है।

इन पचपन वर्षों में हिन्दी-सेवी हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं रहे, उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में हिन्दी के उत्थान के लिए अथक प्रयत्न किये, सरकार से लड़ाइयाँ लड़ीं और अपने स्तर से जो कुछ करना था, सब किया। किन्तु सरकार में बैठे काले अँग्रेजी शासकों और प्रशासकों ने एक नहीं सुनी और हिन्दी का वनवास यथावत् बना रहा।

देश की कई विशिष्ट हिन्दी-सेवी संस्थाओं ने भी हिन्दी को अपना स्थान दिलाने के लिए अनवरत परिश्रम किया किन्तु वे भी इसमें कृतकार्य नहीं हो सकीं।

तत्कालीन सरकार के विरोधी दल के राजनेताओं ने हिन्दी का प्रबल समर्थन किया और समय-समय पर हिन्दी उत्थान के लिए हिन्दी सेवियों के साथ मिलकर योगदान भी दिया। किन्तु जब वे शासन में चले गये तब उनकी स्थिति भी वैसी ही हो गई जैसी पूर्व शासकों की थी। आज वे जम कर सरकार में बैठे हुए हैं किन्तु हिन्दी के पक्ष में कोई निर्णय करने में सर्वथा असमर्थ हैं।

इधर गत दस-बीस वर्षों से हिन्दी क्षेत्र के लोगों ने भी देखा कि जो लोग आंग्ल शिक्षा में निष्णात हैं-वे ही प्रत्येक क्षेत्र में सरकारी नौकरियों में लगे हुए हैं-क्योंकि सभी संघीय परीक्षाओं का माध्यम अँग्रेजी है और उसी में सफलता प्राप्त कर लेने से वे आगे बढ़ जाते हैं। तब उन लोगों ने भी आंग्ल भाषा में ही अपने बच्चों को शिक्षित करने का निश्चय किया और उसका परिणाम यह निकला कि उन्होंने अपने घर बार बेचकर अपने बच्चों को पब्लिक स्कूलों में प्रवेश दिलाना प्रारम्भ किया।

परिणामतः सारा उत्तरी भारत पब्लिक स्कूलों से पट गया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी-सेवियों और हिन्दी-सेवी संस्थाओं ने हिन्दी की स्थापना के लिए जो प्रबल प्रयत्न किये थे वे धराशायी हो गये। आज तो स्थिति यह बन गई है कि हिन्दी पढ़ना अपना केरियर खराब करना है। स्थिति जितनी दिखाई दे रही है, उतनी ही खराब नहीं है बल्कि वह इससे भी कई गुना विषाक्त है। लगता है, हर साधारण व्यक्ति भी अपने बच्चों को अँग्रेजी में निष्णात कर उच्च सरकारी नौकरी में ही लगाना चाहता है। इसके लिए वह अपने परिवार, समाज, धर्म आदि की भी कोई चिन्ता नहीं करता।

पब्लिक स्कूलों की अनवरत उन्नति ने उसे अपने भविष्य के बारे में सोचने के लिए विवश कर दिया है और वह भागा जा रहा है अपने बच्चों को उसमें प्रवेश दिलाने के लिए।

इसका एक दूसरा पक्ष और है। राजनीतिबाज और तथाकथित हिन्दी हितैषी जो पेशेवर विद्वान हैं, अपने लेखों, भाषणों, प्रवचनों आदि में दिन रात हिन्दी के गीत गाते हैं, उसे अपनी माँ मानते और उसका इस प्रकार अपमान होने से घड़ियाली आँसू बहाते हैं-वे प्रातःकाल उठते ही अपने लाड़ले बच्चों को पब्लिक स्कूलों में पढ़ने के लिए भेजते हैं। उनके इस दोगले व्यवहार ने निर्धन व्यक्तियों को भी उसी मार्ग पर चलने के लिए विवश कर दिया है।

तीसरा मुख्य बिन्दु है उन संस्थाओं का जो कहलाती हैं हिन्दी सेवी अथवा हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए कार्य करने वाली और इसी निमित्त केन्द्रीय और राज्य सरकारों से भारी अनुदान भी उन्हें हाथ लगता है-किन्तु जब कभी उनके कार्यक्रम होते हैं तो उन्हें अपने आंग्ल आकाओं के अनुसार ही कार्य करना होता है। नाम पट्ट अँग्रेजी में, कार्यक्रम अँग्रेजी में और सम्पूर्ण प्रचार सामग्री अँग्रेजी में। अगर ये अपनी सम्पूर्ण प्रचार सामग्री हिन्दी में कर दें तो इनको अनुदान मिलना ही स्थगित हो जायगा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम उन हिन्दी सेवी संस्थाओं और हिन्दी सेवियों का बहिष्कार करें जो हिन्दी के नाम पर प्राप्त हुए अनुदानित द्रव्य को अपने अंग्रेजी भक्त आकाओं को प्रसन्न करने में व्यय करते हों। अच्छा तो यह होगा कि हम तब तक सरकारी अनुदान लें ही नहीं जब तक कि राष्ट्रभाषा को अपना स्थान नहीं मिल जाता।

इसी प्रकार राजभाषा-विभाग में ऐसे सफेद हाथी भरे पड़े हैं जिनका काम अन्य भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद करना है-किन्तु यह काम कम दुःख का विषय नहीं है कि आज तक अरबों रुपये व्यय हो जाने के बाद भी अपेक्षित लाभ नहीं मिल सका। हाँ, इस विभाग में भाई-भतीजों और अंग्रेजीदांओं को लाभ अवश्य मिल गया। इस बहाने दूसरे देशों की भाषा व्यवस्था देखने के लिए भी कुछ सरकारी साहित्यकारों को अवसर मिल गया विदेशों में घूमने का।

प्रतिवर्ष देश में अन्य त्यौहारों के समान सरकारी आदेशों से 'हिन्दी दिवस' मनाया जाता है। इसके अन्तर्गत कभी 'हिन्दी सप्ताह', 'हिन्दी पखवाड़ा' आदि भी आयोजित होते हैं-इसमें लाखों रुपये व्यय होते हैं किन्तु हिन्दी की स्थिति-जस की तस बनी रहती है-क्योंकि इन कार्यक्रमों में खुलकर अँग्रेजी का प्रयोग होता है। इस प्रकार हिन्दी सेवियों को मूर्ख बनाने के लिए ये सरकारी आयोजन चलते रहते हैं। इसके स्थान पर मनाना चाहिए था 'अँग्रेजी हटाओ दिवस'।

बहुत से सरकारी साहित्यकार, 'अँग्रेजी हटाओ' शीर्षक को नकारात्मक मानते हैं। किन्तु जब उनसे पूछा जाता है कि हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में जब 'अँग्रेजों-भारत छोड़ो' का उद्घोष उचित था तो आज अंग्रेजी भारत छोड़ो अनुचित क्यों है ? स्पष्ट है, उस समय प्रखर राष्ट्रीयता विद्यमान थी। आज तो कोई भी व्यक्ति अपने स्वार्थ के अतिरिक्त कुछ नहीं सोचता। आज देश सर्वोपरि नहीं-स्वार्थ सर्वोपरि है। सरकारी साहित्यकार तो अपनी कुर्सी बचाये रखने के लिए निश्चित ही 'अँग्रेजी हटाओ' आन्दोलन का विरोध करेंगे। हमें उनसे सतर्क रहना है और राष्ट्रभाषा हिन्दी की पुनर्स्थापना के लिए भरसक तथा अनवरत प्रयत्न करना है।

आज दूरदर्शन के कार्यक्रमों में जबरन अँग्रेजी ठूँसी जा रही है। हिन्दी प्रसारण के साथ अँग्रेजी शब्दों का बाहुल्य भारी पीड़ादायक है। इसका पर्याप्त विरोध होने के बावजूद सरकार अपनी रीति-नीति में

कोई परिवर्तन नहीं कर रही है।

केन्द्रीय परीक्षाओं का माध्यम अँग्रेजी है। इसके साथ ही हिन्दी माध्यम से भी परीक्षाएँ देने के लिए बड़े-बड़े आन्दोलन हुए हैं-किन्तु सरकार अँग्रेजी की पूँछ पकड़े बैठी है। इससे भारतीय भाषाओं में निष्णात व्यक्ति केन्द्रीय परीक्षाओं से वंचित रह जाते हैं, हमें इसके लिए किये जाने वाले आन्दोलन को और तेज करना होगा।

हिन्दी की स्थिति कमजोर करने के लिए सरकार ने कई प्रकार के अन्य हथकण्डे भी अपनाये हैं। क्षेत्रीय भाषाओं के आन्दोलनों को हवा दी गई है। इससे सारे देश में भाषा के मसले में क्षेत्रीयता का तूफान उठा है-किन्तु हिन्दी सेवी इसका भी पूरी मुस्तैदी से मुकाबला कर रहे हैं।

कई राज्य सरकारों ने प्राथमिक विद्यालयों से हटाई हुई अँग्रेजी को पुनः पहली कक्षा से प्रारंभ कर दी है-इससे हिन्दी की स्थिति तो दुर्बल हुई है-मातृभाषाओं के शिक्षण में भी न्यूनता उत्पन्न होगी। इसका भी डटकर मुकाबला करना होगा।

एक आश्चर्य की बात यह हुई है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने भी पाश्चात्य संस्कृति के आधार पर संचालित पब्लिक स्कूलों के स्थान पर भारतीय संस्कृति की रीति-नीति पर पब्लिक स्कूल चलाने की घोषणा की है। यह तर्क ही हास्यास्पद हैं कि विदेशी अँग्रेजी के स्थान पर भारतीय अँग्रेजी चलाएँ। भारतीयता की रक्षा करने की डींग हाँकने वालों को तो इस स्थिति से बचना चाहिए।

अन्तिम बात यह है कि आज सभी हिन्दी सेवी बिखरे हुए हैं और हिन्दी सेवी संस्थाएँ भी। इससे उनके द्वारा समय-समय पर अलग-अलग कार्यक्रमों की घोषणा होती रहती है-जिनका प्रारंभ होते ही अन्त हो जाता है। स्पष्ट है कि विभाजित रहने से आज कोई सफल नहीं हो सकता। राष्ट्रभाषा हिन्दी की पुनर्स्थापना के लिए हमें एकजुट होना पड़ेगा और बिखरे हुए हिन्दी सेवियों को एक होकर अपना आन्दोलन चलाना होगा, तभी विजय निश्चित है। एक जुट लोगों से टकराव मोल लेना इस सरकार के वश का सौदा ही नहीं है। यदि हम सब सम्मिलित होकर संघर्ष करें तो वह दिन दूर नहीं है जब हम हिन्दी को देश के राष्ट्रभाषा सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने में अवश्य सफल होंगे।

उपर्युक्त सभी बिन्दुओं पर सम्यक् विचार करते हुए यह निश्चय करना आवश्यक प्रतीत हुआ कि हिन्दी के साथ-साथ देश की सभी भाषाओं की संरक्षा हेतु भी एक ऐसा आन्दोलन प्रारंभ किया जाय जिसे देश के विभिन्न प्रान्तों के साहित्यकारों का समुचित समर्थन प्राप्त हो। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के माननीय प्रधानमंत्री श्री श्रीधरजी शास्त्री ने भी इस संस्था के तत्वावधान में ऐसा ही एक आयोजन रखने की स्वीकृति प्रदान करते हुए एक परिपत्र सम्पूर्ण देश में प्रेषित कर दिया। परिणामतः इस वर्ष दिनांक १२,१३,१४ सितम्बर को भारतीय भाषा संरक्षा सम्मेलन साहित्य-मण्डल में आयोजित किया जा रहा है। विश्वास है इस सम्मेलन में सामूहिक रूप से ऐसे निर्णय लिये जायेंगे जिससे केन्द्रीय एवं प्रादेशिक सरकारों में बैठे हुए अंग्रेजी परस्त नेता, अंग्रेजी के व्यामोह से मुक्त होकर भारतीय भोषाओं का सम्मान करने के लिए बाध्य किये जा सकें।

जय हिन्दी-जय भारती *जय भारत-जय भारती*

अंग्रेजी हटाओ दिवस

१४.०६.२००२

❑ भगवतीप्रसाद देवपुरा

* * *

हर सिंगार

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री का विनम्र निवेदन

यह सिर्फ भाषा का प्रश्न नहीं है। समस्त राष्ट्रीय अस्मिता बंधक हो गयी है।

आज भारत गणतंत्र के प्रायः सभी राज्यों में प्रायमरी कक्षा से अंग्रेजी भाषा की शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी है अथवा करने का कुचक्र रचा जा रहा है। इसी सन्दर्भ में विनम्र निवेदन है; कृपा–पूर्वक; सम्मेलन की इस अपील पर आप भी विचार करें।

भारत, भारतीयता और भारत की भाषाएँ

महात्मा गांधी ने स्वतन्त्रता संग्राम के संचालन के समय समान महत्ता समाज सुधार और रचनात्मक कार्यक्रम को दी, जिसकी ही अंग राष्ट्रभाषा का अभिवर्धन था।

तद्नुसार, संविधान में स्थापित हुआ : "संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।"

हिन्दी भाषा की समृद्धि के लिए भारत सरकार और राज्यों की सरकारों की ओर से स्वतंत्रता के आरम्भिक पांच दशकों में जो प्रयत्न हुए, उतने संसार में किसी भाषा के लिए इतनी अवधि में नहीं हुए थे, और इस समय वास्तव में स्थिति यह है कि हिन्दी जीवन की सभी गतिविधियों, समस्त शासनिक कार्यों, सब प्रकार के शिक्षण एवं उच्चतम शोध–अन्वेषण और सचमुच "भारत की सामासिक संस्कृतिके सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम" बनने के योग्य और समर्थ है, और संविधानानुसार "संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी" दोनों में कोई बाधा नहीं है।

बाधा इस षड्यंत्र के कारण आयी है "हम भारत के लोग भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने" से रोके गये, और जो सत्ता इसमें नियोजित होनी थी, उसे चन्द लोगों ने बीच में हड़प लिया–और इसका सर्वशक्तिशाली साधन अंग्रेजी को बनाया गया। हिन्दी जहां संघ की राजभाषा होनी थी, और जिससे ही शासन लोकतंत्रात्मक हो सकता था, अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों से वंचित रखी गयी, और परतंत्रता की भाषा अंग्रेजी का आधिपत्य बढ़ाया गया। सरकारों ने हिन्दी के लिए संविधान की औपचारिकताओं का परिपालन किया, परन्तु उसकी आत्मिक हत्या की, जिसमें यह शामिल है कि देश की अन्य भाषाओं की भी ऐसी ही दुर्गति की गयी।

भारत में लोकतंत्रात्मक भावना, कार्यकलाप, शासन, सामाजिक गतिविधि सबल नहीं हो, और जिनका इन तत्वों पर अधिकार हो गया है उनका चंगुल कसता रहे इस प्रयत्न में इन सभी क्षेत्रों में अंग्रेजी का वर्चस्व, एकाधिकार, सबल किया गया है। जिस तरह राजभाषा संविधान का एक अंग है, उसी प्रकार से भाषा का एकाधिकार तभी सक्रिय और सफल होता है जब उसका प्रसार उपर्युक्त सभी तत्वों में होता है। आज अंग्रेजी में केन्द्र का और राज्यों का शासन ही नहीं चलाया जा रहा, निजी और सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों पर भी अंग्रेजी का आधिपत्य है।

यह निरा भाषागत परतन्त्रता का प्रश्न नहीं है। जब शासन और जीवन के सब अंग परभाषा में संचालित होंगे, चिन्तन, विकास और व्यवहार के सब अंग भी उसी भाषा की संस्कृति से संचालित होंगे। भारत में भारत की स्वतन्त्रता के बाद भारत के चिन्तन और व्यवहार पर अंग्रेजी का आधिपत्य ऐसा रहा है कि सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया विकृत हो गयी है, समस्त गतिविधि उन्हीं के हित में चल रही हैं जिन्होंने अंग्रेजी से अपने को बांध रखा है। यह शासनिक दुरभिसन्धि सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षणिक ही नहीं, आत्मिक दुर्दशा ले आयी है। देश को इससे मुक्त करना एक प्रकार से दूसरा स्वतन्त्रता संग्राम हो गया है। पिछला स्वतन्त्रता संग्राम अंग्रेजों के खिलाफ था, अब देश को अंग्रेजी के विरूद्ध एकजुट होना है–

हर सिंगार

भारत और भारतवासियों कीआकांक्षाएं और आवश्यकताएं उसके संविधान के अनुसार परिपूरित हो इसके लिए यह अनिवार्य है।

लक्ष्य में प्राथमिक रूप में शासन को रखकर, जीवन के जो अंग हैं, उनकी स्वायतत्ता और सशक्तता के लिए आवश्यक है कि अंग्रेजी का एकाधिकार हर जगह समाप्त किया जाए। हिन्दी की दोहरी स्थिति है। यह देश के मध्य के बड़े भाग की अपनी भाषा है और यह राजभाषा–राष्ट्रभाषा है। इसके अनुसार इसके लिए हिन्दी के क्षेत्र में दोहरा प्रयत्न करना होगा। उसमें सफलता तभी मिलेगी जब भारत की अन्य भारतीय भाषाएं भी मुक्ति एवं महत्व प्राप्त करेंगी, और उनका वर्चस्व उनके क्षेत्र में शासन एवं जीवन के सभी अंगों में ऐसा स्थापित होगा कि भारत में पर–भाषा अंग्रेजी का उपयोग केवल अनिवार्य और पूर्व निर्धारित प्रयोजनों तक सीमित हो जाएगा।

भाषा की समस्या उसकी समग्रता को आत्मसात करने से ही सुलझेगी, जब इसका एहसास होगा कि स्वतन्त्रता, उसके सब अवसर तथा अधिकार सब "हम भारत के लोग" को तभी प्राप्त होंगे जब जीवन के सब अंगों का, समस्त शासन का, संचालन भारत की भाषाओं से होगा। भाषा शासन, संस्कृति, समुन्नति की साधक बन गयी है। भारत में भारत की भाषा रहेगी तभी भारत की स्वतन्त्रता और समुन्नति होगी, जब तक ऐसा नहीं होता तब तक भारत, भारतीयता, भारत का गणराज्य अंग्रेजी और अंग्रेजी ज्ञाताओं का बंधक बना रहेगा।

जो प्राकृतिक क्रम है–व्यक्ति, परिवार, समाज, शासन उसी के अनुसार अंग्रेजी को अपदस्थ किया जाना है, और अपनी भाषा का उपयोग इसी क्रम से संकल्पबद्ध करना है। अंग्रेजी का हर अक्षर लिखते समय विवेक यह रहना चाहिए कि क्या इसकी अनिवार्यता है ? क्या यह हमारी अस्मिता के अनुरूप है ? अंग्रेजी भयावह है, भारत में भारत की भाषाओं के पुष्प खिलने पर ही यह संसार सम्मानित वाटिका अपनी वास्तविक रंगत में आएगी।

जो इन पंक्तियों को पढ़ रहे हैं उन्हें स्वयं सोचना है कि भारत की भाषागत मुक्ति के लिए उन्हें क्या करना है। इसके साथ ही, हर स्तर, स्थान, संस्थान में अंग्रेजी के बहिष्कार का प्रयत्न और प्रबन्ध होना चाहिए, इसके लिए इसी के अनुरूप आन्दोलन अंग्रेजी का जहाँ अनधिकृत, अनावश्यक, अनुचित उपयोग हो, उसमें असहयोग किया जाना चाहिए और राष्ट्रभाषा एवं क्षेत्रीय भाषा की अभिवृद्धि के लिए हर प्रकार का पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिए। इसमें संदेह नहीं है कि भारत में भारतीय भाषाओं की अभिवृद्धि और स्थापना के बिना भारत का भारतवासियों के हित में विकास संभव ही नहीं है।

किन्तु; जब तक भारत शासन में हिन्दी को उसका स्थान नहीं मिलेगा और अंग्रेजी का बोलबाला रहेगा, अंग्रेजी में अपने बच्चे को सशक्त करना हर अभिभावक के लिए स्वाभाविक रहेगा।

कुल मिलाकर यह भारत की भाषाओं के रचनाकारों और प्रतिनिधियों की दुरावस्था है कि उनकी उठती पीढ़ी पर उनके होते हुए अंग्रेजी थोपी जा रही है।

इसी सन्दर्भ में सम्मेलन निवेदन करता चला आ रहा है; आज आवश्यकता है, राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं प्रान्तीय भाषाओं की सुरक्षा के लिए भारतीय मानस को जाग्रत और प्रेरित करने के लिए सभी प्रदेशों के विद्वान सम्मेलन को अपनी आत्माभिव्यक्ति प्रदान करें। एक साथ मिल बैठकर भारतीय भाषाओं की श्रीवृद्धि के लिए रचनात्मक उपायों की तलाश करें।

विश्वास है, सम्मेलन के निवेदन पर आप सदिच्छा के साथ, सहृदयता के साथ विचार करेंगे और सम्मेलन को अपना सद्भाव प्रदान करेंगे।

–श्रीधर शास्त्री, प्रधानमंत्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

अंग्रेजी हटाओ

✍ सुनहरी लाल शुक्ल

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ, को पूर्णतया अपनाना है।
ABCD को पीट पीट, भारत से दूर भगाना है।।

अंग्रेजी थोपी गयी यहाँ, तब शासन तंत्र चलाने को।
सभ्यता विदेशी लाये थे, अपना व्यापार बढ़ाने को।।
धन ऐंठ–ऐंठ वह चले गये, अब अपना नया जमाना है।
ABCD को पीट पीट, भारत से दूर भगाना है।। १।।

पर रमी यहाँ पर अंग्रेजी, भारत में पैंठ गयी ऐसी।
सब ओर जमाये पैर यहाँ, हिन्दी की कर ऐसी–तैसी।।
अब उस को तो झाड़ू मारो, हिन्दी का पैर जमाना है।
ABCD को पीट पीट, भारत से दूर भगाना है।।२।।

हिन्दी भाषा की ही बहनें, कुछ क्षेत्रों में विकसाती हैं।
वह भी आहत अंग्रेजी से, अपना अस्तित्व घटाती हैं।।
सर्वत्र हटाओ अंग्रेजी, निज भाषा व्यूह रचाना है।
ABCD को पीट पीट, भारत से दूर भगाना है।।३।।

जो यहाँ राष्ट्र पर हावी है, उस इंगलिश की टागें खींचो।
जितनी भी देशी भाषाएँ, अनवरत जड़ें उन की सींचो।।
अंग्रेज रफूचक्कर जैसे, वैसे इंगलिश करवाना है।
ABCD को पीट पीट, भारत से दूर भगाना है।।४।।

दो अंग्रेजी को धूल चटा, देशी भाषा में हुंकारो।
साहित्य मनीषी राष्ट्रीय, अब नाग पौनियां फुंकारो।।
दो इंगलिश रग–रग से निचोड़, अस्मिता "शुक्ल" बचवाना है।
ABCD को पीट पीट, भारत से दूर भगाना है।।५।।

—४६८, संजय नगर, एटा (उ.प्र.)

हिन्दी के माथे पर बिन्दी

✍ डा. हरिसिंह 'हरीश'

हिन्दी के माथे पर बिन्दी कोई सुघर लगायें।
सारे भारतवासी मिलकर हिन्दी दिवस मनायें।

*

नई कल्पनाओं का हमको करना है अभिनन्दन।
भव्य–भारती के माथे पर लगा केसरी चन्दन।
मन्द–मन्द मुसकानों से हम जीवन सफल बनायें।
सारे भारतवासी मिलकर हिन्दी दिवस मनायें।

*

अपनी भूलों को हम फिर से दुहराना ना सीखें।
आडम्बर को दूर भगायें, सादा बनकर दीखें।
सारे जग को पहले जैसा हम फिर पाठ पढ़ायें।
सारे भारतवासी मिलकर हिन्दी दिवस मनायें।

*

अपनी निजता का वह गौरव फिर से लाना होगा।
वही पुराना 'चिड़िया वाला' फिर दुहराना होगा।
'सोन–चिड़िया' हम जग को फिर से बन दिखलायें।
सारे भारतवासी मिलकर हिन्दी दिवस मनायें।

*

अपनी हिन्दी, अपनी भाषा, अपनी बोली बोलें।
अपने मन के बन्द कपाटों को हम फिर से खोलें।
हिन्दी सीखें और सिखायें, यह नारा दुहरायें।
सारे भारतवासी मिलकर हिन्दी दिवस मनायें।

*

तुलसी, सूर, कबीर, केशव के पद चिन्हों को छूलें।
मीरा, महादेवी, चौहान से हम प्रसन्न हो झूलें।
पूज्य मैथिली, पंत निराला की श्रेणी सरसायें।
सारे भारतवासी मिलकर, हिन्दी दिवस मनायें।

— जाह्नवी से साभार

हर सिंगार

हिन्दी है सबसे महान्

✍ रामलखन पटेल

गूंजे जग में जयगान, कहे सारा हिन्दुस्तान।
लिये मन में अभिमान–हिन्दी है सबसे महान् !
हिन्दी जन–जन की भाषा, यही हिन्द की परिभाषा
सन्त–ऋषियों की बानी, देवताओं की अभिलाषा।
उर्दू–सिन्धी–गुजराती, तमिल–कन्नड़–मराठी
इसकी बहनें समान–हिन्दी है सबसे महान् !
इसकी लिपि बोधगम्य, इसका व्याकरण सुगम्य
कला–दर्शन–विज्ञान, रूप–रचना सुरम्य।
कितना विस्तृत वितान, जैसे नीला आसमान
ढंके सारा जहान–हिन्दी है सबसे महान् ।
कितनी प्यारी है हिन्दी, माँ के माथे की बिन्दी
यही उसका शृंगार, यही चूनर सतरंगी ।
यही हिन्द की मर्यादा, यही मीरा, यही राधा
यही मुरली की तान–हिन्दी है सबसे महान् !
जब-जब संकट गहराया, राष्ट्रधर्म को निभाया
बाँध एकता की डोर, हमको मिटने से बचाया
यही उन्नति का मूल, अपनी संस्कृति न भूल
ये है जीत का निशान–हिन्दी है सबसे महान्!
नाता हिन्दी से जोड़ें, अंगरेजी को छोड़ें
मातृ-भाषा अपनायें, राष्ट्र–धारा को मोड़ें
नहीं देखें अपमान, करे गौरव प्रदान ।
यही अपना अभियान–हिन्दी है सबसे महान् !

साभार - राष्ट्रभाषा सन्देश (३० नव.२०००)

अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी में काम करने में शर्म किस बात की है ? यह तो गर्व की बात है।

हिन्दी वंदना

✍ सावित्री शर्मा

जय हिन्दी, जय हिन्द जयति जय
वीणापाणि मातु कल्याणी !
एक ब्रह्म, ब्रह्माण्ड एक है
इन सबसे भी ओउम् बड़ा है।
वेद, पुराण पढ़ो तो लगता
अक्षर–अक्षर रत्न जड़ा है।।
देवनागरी नाम पडा तो
होगी यह देवों की वाणी ! जय हिन्दी
हैं विस्तृत इसकी सीमायें
सागर-सी असीम गहराई।
राग–विराग, जोग जप साधे
युग–युग का दर्पण कहलाई।।
कोमल कान्त पदावलि वाली
है सबकी जानी–पहचानी ! जय हिन्दी
शब्दों के जादुई नगर में
अर्थभरी मुसकाये हिन्दी।
लगती है सौभाग्य चिह्नसी
भारत–भाल चमकती बिन्दी।।
गुणवंती सारी भाषायें
किन्तु न इसकी कोई सानी। जय हिन्दी
धर्म कर्म के परिपालन में
जब जन–मन दिग्भ्रमित दिखा था।
कलम उठाकर तब तुलसी ने
मानस में शुचि राम लिखा था।।
गूँज रही अब तक जन–जन में
संतों की वह पावन वाणी !
जय हिन्दी, जय हिन्द जयति जय
वीणा-पाणि मातु कल्याणी।।

हर सिंगार

करें हिन्दी से प्यार

✍ डॉ. केवलकृष्ण 'पाठक'

हम भारत के वासी,
भारत अपना देश,
सदा हमें इस पर गर्व,
जीवन मिला विशेष,
इसकी अपनी संस्कृति,
सरल मधुर व्यवहार।
भाषा बोली प्यारी है,
सब को इस से प्यार।।
राष्ट्र भाषा हिन्दी यहाँ,
लिपि नागरी रूप,
जननी इसकी संस्कृत,
मीठी मधुर अनूप,
छोड़ मोह अंग्रेज़ी का,
करें हिन्दी से प्यार,
देश सेवा ही लक्ष्य है,
जीवन का आधार।।

सम्पादक– रवीन्द्र ज्योति, जीन्द (हरियाणा)

वाक् मे आस्ये अस्तु !

मेरे मुँह में होवे वाणी।
जब अन्याय कहीं होता हो,
पीड़ित अश्रु बहा रोता हो,
तब मैं चुप न रहूं क्षण भर भी,
दूं ललकार विश्व कल्याणी।
मेरी वाणी सत्य, सरल हो,
पर उसमें वह शक्ति प्रबल हो,
जो चाहे तो आग लगा दे,
चाहे तो बरसा, दे पानी।
झुके अन्य, तो झुक चट जाये,
अड़े शत्रु, तो यह डट जाये;
गले लगे प्रेमी से, लेकिन। ठुकरा दे रिपु को अभिमानी।

हिन्दी, भारत माँ की बिन्दी

✍ राधेश्याम 'आर्य'

हिन्दी है भारत की वाणी,
हिन्दी है जन–जन की भाषा।
हिन्दी रही संजोए शाश्वत–
सत्यं–शिवम्–सुन्दर अभिलाषा।
हिन्दी है भारत का गौरव,
हिन्दी भारत का सुमधुर स्वर।
हिन्दी है अस्मिता राष्ट्र की;
हिन्दी बढ़ती जाती सत्वर।
हिन्दी भारत मां की बिन्दी,
हिन्दी पर अभिमान करें हम।
ज्योतिर्मय पथ करती है यह,
हिन्दी का सम्मान करें हम।
स्वतन्त्रता के आन्दोलन की,
हिन्दी है व्यापक ललकार।
हिन्दी ने ही किया विदेशी–
सत्ता प्रति भीषण हुंकार।
हिन्दी है नव ज्योतिदायिनी,
नभ में ज्योतित ज्योतिष्मान्।
रही जगाती अन्तस्तल में,
अनुपम त्याग तथा बलिदान।
देशभक्ति की है प्रेरक यह,
इसकी महिमा अमित अपार।
हिन्दी ने है दिया सहर्षित,
भारत के जन–जन को प्यार।
हिन्दी की रक्षा में कोटिक,
हाथ रहा करते सन्नद्ध।
हिन्दी का हम मान बढ़ाएँ,
संकल्पों से हम आबद्ध।
सर्वोत्तम भारत की भाषा,
उतारें इसकी आरती।
अवनी–अम्बर में गूंजे यह।
जय हिन्दी, जय भारती।।

–सुल्तानपुर (उ.प्र.)

पराई जबान में दिल की बात कैसे कहें ?

✍ आचार्य चन्द्रप्रकाश

हाय इस दिन को रात कैसे कहें,
इस सचाई की जजबात कैसे कहें
हम हैं ना समझ, समझदारों, बतादो इतना
पराई जुबान में दिल की बात कैसे कहें।।१।।

सच पूछो तो चोरों की भाषा है,
कालों की नहीं, गोरों की भाषा है।
'अंग्रेजी विश्व भाषा है', शायद होगी
यहाँ तो बस, हरामखोरों की भाषा है।।२।।

जा भाषा में, हरि ने मांगी ही माखन रोटी,
वा भाषा में, बोलि, सान इनकी होय खोटी।
बिन दामन के ब्रजी लुटै, वृन्दावन देखौ,
ठाड़ी बोली बाँचत, कथा पुरानन देखौ।।३।।

अंग्रेजी के पुट बिना, समझै कौन विद्वत्ता
फारि रहे निर्लज्ज, ब्रजी के लत्ता–पत्ता।
हे ब्रज भाषा चौं अपनौं, अपमान करावै
सूरदास के पास चली तू चौ नहिं जावै।।४।।

ये अंग्रेजों के मानस पुत्र कहते हैं कि अंग्रेजी हट जायेगी तो देश में न वैज्ञानिक होंगे, न इंजीनियर, न डाक्टर, न कम्प्यूटर होंगे। हम कहते हैं कि अतीत में क्या भारत में ये सब न था? क्या आज धरती पर ऐसे देश नहीं हैं जहाँ बिना अंग्रेजी के काम चल रहा हो। क्या ऐसे इतर राष्ट्र है जहाँ अंग्रेजी में ही प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा हो रही हो। ऐसे इम्पोर्टैड महानुभावों से एक अनुरोध, उनकी एक झलक–

गांधी औ तिलक गोखले पै धूरि डार दई।
मार दई भावना स्वदेशी की, स्वदेश की।
माल इम्पोरटेड के पुजारी भये नेता गण
खोय दई आन बान सान निज देस की।
बासन बसन औ असन इम्पोरटेड धारी
चाल, ढाल, गीत, ताल, सज्जा मूंछ केस की।
इनकौ बस चलै 'चन्द्र' तौ खाल हू विदेसी धरै।
बेटा–बेटी–बाप औ मैया हू विदेस की।।
अस्तु– भारत भाल की बिन्दी हिन्दी।
पूत हो सच्चे, तो बोलो हिन्दी।।
जय हिन्दी – जय भारत

– मण्डी रामदास, मथुरा

रहे हिन्द में हिन्दी भाषा

✍ चतुर्भुज, चतुर्वेदी "मस्त"

सब देशों की अपनी बोली, अपनी संसकृति की अभिलाषा।
आज हटाओ अंगरेज़ी को, रहे हिंद में हिंदी भाषा।।
भूले अपनी गौरव गाथा, भूले संसकृति की परिभाषा।
निज स्वरुप को भूल गये हो, करते हो गैरों से आशा।।
तुम उधार की बोली लेकर, अपने मन में नहीं लजाते।
सोचो समझो और विचारो, तुम में जागे ज्ञान पिपाशा।।
आज हटाओ ....

हिंदी का साहित्य अमर है, हिंदी का लालित्य अजर है।
हिंदी विद्वानों की बोली, इस हिंदी में ओज प्रखर है।।
अखिल विश्व अब मान रहा है, इसका कर सम्मान रहा है।
बड़ी प्रबल पर बड़ी सरल है, किंतु नहीं ये कठिन डगर है।
स्वाभिमान यदि रखना तुम को, अपनाओ अब छोड़ निराशा।।
आज हटाओ ....

वस्तु विदेशी, वस्त्र विदेशी, अंगरेजी ही जिनको भाती।
आज विदेशी भोजन करते, अपनी संसकृति नहीं सुहाती।।
बना पिता को डैड और, माताजी को यह ममी बताती।
मिलते हाइ हाइ करते, जो जाते बाई इन्हें चढ़ जाती।।
यहां ज्ञान की गंगा बहती, क्यों रहता तू इसमें प्यासा।।
आज हटाओ. ....

अब भी छोड़ो तुम नादानी, बहुत दिनों कर ली नादानी।
आधारित विज्ञान बनी ये, तुमने इसकी कदर न जानी।।
क्यों करते मानसिक गुलामी, तर्क तुम्हारे हैं बेमानी।
नहीं उपेक्षित और रहेगी, भारतीय जन ने अब ठानी।।
आज देश के लिये जरूरी, शब्दकोष है इसका खासा।
कहो एक स्वर में सब मिलकर, रहे हिंद में हिंदी भाषा।।

– महोली की पौर, मथुरा

और लिपि है नागरी

✍ डॉ. व्यास नारायण दुबे

हिन्दी में बंगला का वैभव है, गुजराती का संजीवन है,
मराठी का चुहल है, कनाड़ी की मधुरता है, और
संस्कृत का अजस्र स्रोत है।
प्राकृत ने इसका शृंगार किया है, और
उर्दू ने इसके हाथों में मेहंदी लगाई है।
यह आर्यों के स्वर में गाती है और
अनार्यों के ताल में नाचती है।
हिन्दी हमारी 'राष्ट्रभाषा' और लिपि है 'नागरी'।।

–पं. शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर

हर सिंगार

मैं हिन्दी हूँ

✍ झलक निगम

हाँ, मैं हिन्दी हूँ
मैं वह
जिसे दुनिया अपने पास बुलाती
ओ बिठाती सम्मान देती
अपने देश में, अपने घर में
लोग विमाता समझ
निठुर व्यवहार करते
दूर-दूर रखते
मैं उन्हें गले लगाती
फिर भी बुरी हूँ। हाँ, मैं हिन्दी हूँ।
मैं वह जो पूर्व का पूर्वीपन।
पश्चिम की पश्चिमी बन।
उत्तर की मैं उत्तरा
दक्षिण का रखती मन।
घुल-मिल जाती। हिल-मिल जाती
खलनायिका सी बुरी हूँ–हाँ, मैं हिन्दी हूँ।
मैं वह
जो कि वर्षों से नहीं, सदियों से
लोगों के गले बसी हूँ
जिसने जैसा चाहा वैसा मुझे बनाया
गद्य-पद्य से सजाया–फिर जो चली
चंदर की डिंगल
अमीर की खड़ी बोली
विद्यापति की अमराई में गूँजती
धनानन्द की सुजान
कबीर का फक्कड़ी बाना पहन
तुलसी की मर्यादा में बंध
सूर की वृजांगना में
मीरा के राजस्थानी वेश में
रसखान की रसवन्ती में बहती
जायसी की पद्मा
रहीम की पहेली बन
केशव के अलंकार पहन
बिहारी की नायिका
देव, मतिराम के नखशिख वाली
भूषण की प्रचण्डिका
इंशा की कहानी में बस गई
भारतेन्दु ने मुझे रोका
बक्षी ने मुझे टोका
चली तो फिर रहस्यवाद में खो गई
प्रसाद की कामायनी
पंत के कोमल गीतों में बसी
जूही की कली सी
महादेवी का दर्द बन गई
पर दर्द
देश दर्द दिनकर का हुंकार उठा
श्याम का तिरंगा प्यारा
सारे जहां से अच्छा
वंदे मातरम् संगीत सच्चा
जन-गण-मन राष्ट्रगीत बन गया।
गीतकारों की लय
बच्चन की मय
प्रगतिवाद/प्रयोगवाद
तो चलते पर
बीच में बैधडक का हास्य फूट पड़ा
तो बेढ़ब व्यंग्य में बोल पड़ा
तो अज्ञेय ने मोड़ दिया
नवगीत/नई कविता आ गई
और भी नये प्रयोग आए
पर हाय
अब विवाद बढ़ गया
मेरे घर ये विवाद है
दुनिया में अनूठी मिसाल है
सब सहती
कुछ ना कहती
मैं हिन्दी हूँ । हाँ, मैं हिन्दी हूँ।

–एम-३३,कालिदास नगर, उज्जैन

आंकड़ो का खेल

✍ श्रीमती यू.डी.शर्मा

हिन्दी का यह खेल है देखो
आकड़ों का सब मेल है देखो
१००/पत्राचार के लक्ष्य को देखो
अर्जुनसा तुम लक्ष्य को बेधो
रिपोर्ट पर फिर निशाना साधो
आंकड़ों के आगे मत झांको
आंकड़ों के पीछे मत झांको
वरना हो जायेंगे ये वाकडे
राजभाषा का लक्ष्य पूरा करना है धर्म
आकड़ों को भरना है कर्म
चाहे पत्र लिखे कोई एक
लग जाते आगे उसके जीरो अनेक
सब करते हैं बस लक्ष्य को पूरा देखो
आकड़ों का यह मेल है देखो
आंकड़ों का यह खेल है देखो

–म.प्र. (पूर्व-२) कार्यालय

इस देश की भाषा हिन्दी है

तकरार की भाषा अंग्रेजी, मनुहार की भाषा हिन्दी है।
है धौंस की भाषा अंग्रेजी, पर प्यार की भाषा हिन्दी है।
अंग्रेजी रोष की भाषा है, सन्तोष की भाषा हिन्दी है।
कौओं की भाषा अंग्रेजी, कोयल की भाषा हिन्दी है।
अंग्रेजी कर्कश कोलाहल, संगीत की भाषा हिन्दी है।
है शक्ति की भाषा अंग्रेजी, पर भक्ति की भाषा हिन्दी है।
सत्ता की भाषा अंग्रेजी, जनता की भाषा हिन्दी है।
अंग्रेजी भूत की भाषा है, भावी की भाषा हिन्दी है।
अंग्रेजी है जाते कल की, आते की भाषा हिन्दी है।
अंग्रेजी है मद–मदिरा सी, शरबत सी भाषा हिन्दी है।
अंग्रेजी परदेसी भाषा, इस देश की भाषा हिन्दी है।
अभिमान की भाषा अंग्रेजी, मुस्कान की भाषा हिन्दी है।
अंग्रेजी भाषा धनपति की, सन्मति की भाषा हिन्दी है।
अंग्रेजी कोर्ट कचहरी की, मन्दिर की भाषा हिन्दी है।
अंग्रेजी अन्धी भाग दौड़, सुख शान्ति की भाषा हिन्दी है।
अंग्रेजी याद गुलामी की, स्वातंत्र्य की भाषा हिन्दी है।
सुख भोग का साधन अंग्रेजी, कल्याण की भाषा हिन्दी है।
दुर्भाग्य देश का अंग्रेजी, सौभाग्य की बिन्दी हिन्दी है।

- साभार आर्य जगत, दिल्ली

जयति जय-जय भारती के गूंजते हैं गान !

✍ **माणकचन्द रामपुरिया**

जयति जय–जय भारती कें गूँजते हैं गान।
गा रही है गीत सागर की लहरियां लोल।
शब्द कल-कल बेग चंचल ताल लय अनमोल।।
बढ़ रहे है प्राण अपने लक्ष्य तक अनजान।
जयति जय–जय भारती के गूंजते हैं गान।। १
भूमि पर कितनी सुहानी वायु बहती मन्द।
मधु–सुरभि ले मत्त भौंरे गा रहे नव छन्द।।
गा रहा है रात में शशि, दिवस में दिनमान।
जयति जय–जय भारती के गूंजते हैं गान।।
इस धरा पर है न कोई आज अब उद्भ्रंत।
हर हृदय का तार करता हर हृदय को शांत।।
आज पूरा हो रहा है मानिनी का मान।।
जयति जय–जय भारती के गूँजते हैं गान।।
दर्द से दृग जो कभी थे बह रहे उद्दाम।
लक्ष्य लगती आ रही है भावना अविराम।।
है इसे सामर्थ अपनी, दृढ़–अटल अभिमान।
जयति जय–जय भारती के गूँजते हैं गान।।
सत्य पथ पर एक क्षण भी है न कांपा पांव,
आज सर्वस है समर्पित प्रेम के हो दांव।
इस धरा पर प्राप्त इसका है नहीं उपमान।
जयति जय–जय भारती के गूँजते हैं गान।।

- कोलकाता

हर सिंगार

हिन्दी है माथे की बिंदी

✍ वीरेन्द्र शर्मा ''कौशिक''

१. हिन्दी है बिंदी
भारतीय भाषाओं
के माथे पर।

२. बढ़ाओ इसे
जगमगाओ उसे
चमके माथा।

३. हम सबको
जग भर में हिंदी
ही हिंदी दिखै।

४. फैले पूरब
पश्चिम उत्तर
औ दक्षिण में।

५. हिंदी प्रकाश
में हम हरदम
जगमगायें।

६. हिंदी उजाला
सर्वत्र निरंतर
दमदमाए।

७. चमचमाए
मग–मग में हिंदी
माथे की बिंदी।

–मऊरानीपुर (झांसी)

हम अपने और पराये की,
पहचान नहीं कर पाये हैं।
तुलसी, सूर, मीरा, कबीरा,
का मान नहीं कर पाये हैं।।
अपने ही घर में अपनों से,
अपमानित होती हैं हिन्दी।
हम कालजयी जनभाषा का,
सम्मान नहीं कर पाये हैं।।

– पं. नरेन्द्र मिश्र

हिन्दी पखवाड़ा

✍ सुरेन्द्र पीहरे

कार्यालय से थका–हारा
जैसे ही घर दौड़ा
प्रसन्न मुद्रा से
श्रीमतीजी ने व्यंग्यबाण छोड़ा।
क्योंजी कैसा रहा
आपका हिन्दी पखवाड़ा ?
सुनकर उनके शब्द, मन खिन्न हो गया
कार्यालय का चित्र
तब सामने आया
और खुद को बड़ा ही विवश पाया।
सोचा, राजभाषा कक्ष की स्थिति
किसी उपवर कन्या के पिता सम है
जो सभी के सामने गिड़गिड़ाता है
मदद की याचना करता है
किसी को दहेज तो किसी को दावत का
प्रलोभन देता है
और दूल्हों की भीड़ जुटाता है–
दूल्हे भी शायद यही सोचकर आते हैं
कि, कुछ ही दिनों की तो बात है
दुल्हन विधिपूर्वक घर लाएँगे
चन्द दिन रखकर
फिर साल भर जलाएँगे।
अगला वर्ष तो फिर आएगा
नई दुल्हनियाँ फिर लाएगा
फिर होगा कोई नया वधूपिता
फिर होगी वही अभागी दुल्हन
सब–कुछ दोहराया जाएगा
'हिन्दी पखवाड़ा' मनाया जाएगा।

(भारत में हिन्दी का प्रचार–प्रसार एक मनोरंजन का साधन बनकर रह गया है। स्थिति यह है कि प्रति वर्ष मनाये जाने वाले 'हिन्दी दिवस' को उसका श्राद्ध दिवस कहा जाने लगा है। इस भूमिका में कवि की उपर्युक्त पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं। सं.)

साभार - नया साहित्य

भारत की बात चले तो हिन्दी सामने आये

✍ युसुफ खान

भारत की बात चले तो, हिन्दी सामने आये ।
हिन्दी सबको भाये, भारत की भाषा कहलाये।।
राष्ट्रभाषा हिन्दी,
हिन्दी केवल हिन्दी-हिन्दी ही हिन्दी,
यूं तो सभी भाषायें हैं अच्छी,
बड़ी बहन ये हिन्दी है सबसे अच्छी,
पचास वर्षों से हक मांगती है हिन्दी,
अन्याय को झेलती है हिन्दी, अब कैसे मुस्कायें ?
अंग्रेजी ने हमें दी गुलामी,
अंग्रेजी से हमें आजाद होना है,
आज भी अंग्रेजी के अक्षरों से भरा कोना-कोना है,
अंग्रेजी कौन भगाये, हमें मुक्ति कौन दिलाये ?
कौन बलिहारी हिन्दी का झण्डा फहराये ?
ज्ञान भी है हिन्दी में, विज्ञान भी है हिन्दी में,
एकता और अखण्डता की जान भी है हिन्दी में।
भारत की शान है हिन्दी,
संविधान का सम्मान है हिन्दी
क्यूं न हम अंग्रेजी बदलें, हिन्दी को अपनायें......
राष्ट्रभाषा............
हिन्दी को हम अपनी पहचान बना दें, दुनियां को हम इसकी शान दिखा दें,
हिन्दी बोल-बोल कर अंग्रेजी को भगा दें ।
अंग्रेजी को भगा कर हम सब हिन्दी ध्वज लहरायें
राष्ट्रभाषा..................
जय है.............................

- मुम्बई

हिन्दी का हंस तो उड़ता ही रहेगा।

✍ कान्ति बोड़ा

हिन्दी का हंस तो उड़ता रहेगा।
सहज सरल सुंदर उड़ान लिये
हिन्दी का हंस तो उड़ता रहेगा।
गंगा यमुना एवं सरस्वती
हिन्दी की त्रिवेणी बहती रहे,
केरल से कश्मीर तक चहकी
हिन्दी जनमानस में रमती रहे,
अनेक भाषाओं का साथ लिये
हिन्दी का रथ तो बढ़ता रहेगा।
घर, गाँव, शहर या पगडंडी,
अभिव्यक्ति हिन्दी में मुखरती रहे,
मधुरिम ममता की खड़ी बोली
शिक्षा का माध्यम बनती रहे,
दूरदर्शन विज्ञापन राजकाज लिये
हिन्दी का रूप तो संवरता रहेगा।
अंग्रेज तो गये अब ये अंग्रेजी
दूर हटेगी, न रहेगी, मशाल जलती रहे,
हम पढ़ें–लिखें–बोलें सिर्फ हिन्दी
कांति लोकप्रियता है बढ़ती रहे,
अंग्रेजी हटाने का शंखनाद लिये
हिन्दी का युद्ध तो चलता रहेगा।
सहज सरल सुंदर उड़ान लिये
हिन्दी का हंस तो उड़ता रहेगा।।

-मदन मंजिल, वीर मोहल्ला, जोधपुर

राजभाषा के लिए हिन्दी सर्वथा सशक्त एवं समर्थ है

भगवतीप्रसाद देवपुरा

भारत एक विशाल देश है। यहाँ के निवासियों में–चाहे रहन–सहन हो या आचार–विचार, चाहे रीति–रिवाज हो या बोलचाल सभी में वैविध्य के दर्शन होते हैं। यहाँ विभिन्न मत–मतान्तर तथा विभिन्न धर्मो के अनुयायी भी रहते हैं। अतः इस देश में विविध भाषाओं का प्रयोग होना भी स्वाभाविक है। किन्तु, इन भाषाओं में परस्पर बहुत भेद हैं। कुछ आर्य भाषाएँ हैं, कुछ द्रविड़ और कुछ चीनी–तिब्बती भाषाओं से सम्बन्धित हैं।

इस देश के मूल निवासी आर्य और द्रविड़ दोनों हैं। आर्य जो भाषा बोलते थे उसका एक रूप ऋग्वेद में सुरक्षित है–बाद में यही भाषा परिमार्जित होकर संस्कृत के रूप में प्रचलित हुई। संस्कृत संसार की सबसे सुव्यवस्थित भाषा अवश्य बनी, किन्तु इसके व्याकरण के नियम बड़े कठिन होने से सामान्य जनता उनका परिपालन न कर सकी। फलतः इस मूल आर्य भाषा के विभिन्न अपभ्रंश रूप प्रकट होते गये। दसवीं शताब्दी के आसपास यह आर्य भाषा देशी भाषाओं के रूप में विकसित हुई। इसी प्रकार द्रविड़ परिवार की भाषाएँ, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ तथा देश के उत्तरी–पूर्वी सीमा प्रदेश की भाषाएँ बंगला, असमी, उड़िया आदि भी अपने–अपने प्रान्तों में विकसित हुईं। उत्तरी भाग में कश्मीरी और पंजाबी ने भी अपना स्थान बना लिया।

ये सब भाषाएँ अपने–अपने प्रान्त में विकसित हुईं, किन्तु पारस्परिक सम्पर्क के लिए संस्कृत भाषा ही प्रचलित रही। जब मुसलमानों ने इस देश पर आधिपत्य स्थापित किया तो उन्होंने संस्कृत के स्थान पर फारसी का प्रचलन प्रारम्भ किया। इनकी सत्ता समाप्त होने के पश्चात् अँग्रेज आए। उन्होंने अपनी संस्कृति और सभ्यता के साथ भारतीय जनता पर अंग्रेजी को भी थोप दिया।

इसके पूर्व हम पन्द्रहवीं शताब्दी पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होगा कि तत्कालीन धार्मिक आन्दोलनों ने कई सन्त, महात्माओं और उच्चकोटि के कवियों को उत्पन्न किया। तुलसीदास, सूरदास, कबीर, जायसी, नानक आदि उनमें प्रमुख थे। उस समय उत्तरी भारत में ब्रज और अवधी का भरपूर प्रचलन हुआ, किन्तु अठारहवीं शताब्दी में मेरठ के समीपस्थ बोली जाने वाली खड़ी बोली का अधिक प्रचार हुआ, वही भाषा विकसित होते–होते हिन्दी के रूप में प्रचलित हुई। धीरे–धीरे सभी प्रान्तों में इसका विकास हुआ। इसकी उन्नति उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, दिल्ली, पंजाब, मध्यप्रदेश, हरियाणा, गुजरात आदि प्रदेशों में तो हुई ही, बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्र, केरल, कर्नाटक आदि प्रान्तों में भी इसका पर्याप्त विकास हुआ। हिन्दी इतनी सरल और सुबोध है कि देश के सभी प्रान्तों के लोग इसे भली प्रकार समझ सकते हैं, बोल सकते हैं और व्यवहार में ला सकते हैं। यह सुबोध और सरल ही नहीं, स्पष्ट भी है तथा स्वाभाविक रूप में बोली जाती है। अतः आज देश का कोई प्रान्त ऐसा नहीं है जहाँ इसका पूर्ण प्रभाव न हो और इसमें साहित्य रचना नहीं की जा रही हो। आज देश की एक अरब की आबादी में लगभग ६०–७० करोड़ लोग हिन्दी का व्यवहार करते हैं। जो तीर्थयात्री सारे देश के तीर्थों में भ्रमण करते हैं, उन्हें भाषा को लेकर कहीं कष्ट नहीं होता।

राजनेताओं तथा काले अँग्रेजों ने इसके विकास को अवरुद्ध करने के लिए सैकड़ों अड़ंगे लगाये, किन्तु जो भाषा जनभाषा बन जाती है उसकी उन्नति

रोकना संभव नहीं होता। जनभाषा हिन्दी अनेक अवरोधों को पार करती आगे बढ़ती गई।

संस्कृत की उत्तराधिकारिणी होने के कारण हिन्दी के पास संस्कृत शब्दकोशों के अपार शब्द हैं, जिनके आधार पर अब तक सैकड़ों शब्दकोश निर्मित हो चुके हैं। हिन्दी में शब्दों के बनने की प्रक्रिया इतनी तीव्र है कि आज एक अद्यतन शब्दकोश तैयार होता है और कल वह पुराना पड़ जाता है। प्रान्तीय भाषाओं के सम्पूर्ण सहयोग से भी सहस्रों शब्द हिन्दी में प्रतिदिन समाविष्ट हो रहे हैं। हिन्दी की प्रकृति अन्य प्रान्तीय भाषाओं से ही नहीं, विदेशी भाषाओं से भी शब्द ग्रहण करने की है, अतः इसका निरन्तर विकास होना ही था। शब्दों की संख्या दृष्टि से आज यह एक सक्षम भाषा दृष्टिगोचर होती है।

आज हिन्दी में विश्वकोश, पारिभाषिक कोश, सन्दर्भ ग्रंथ, औद्योगिक और वैज्ञानिक कोश, तकनीकी साहित्य आदि सैकड़ों ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनसे हिन्दी का प्रभुत्व सिद्ध होता है।

हिन्दी का व्याकरण भी संस्कृत की तरह जटिल नहीं है तथा भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी हिन्दी व्यवस्थित भाषा है। यह जैसी लिखी जाती है वैसी ही बोली जाती है, अतः सभी प्रदेश इसे हृदय से प्यार करते हैं। जिन प्रान्तों में राजनेताओं ने षड्यन्त्र कर हिन्दी की हत्या करने के प्रयत्न किये व भाषायी साम्राज्यवाद की बांग लगाई, वे प्रान्त भी आज हिन्दी को अपनाते जा रहे हैं–यह हिन्दी की सशक्तता का ही परिचायक है।

हिन्दी–उर्दू का झगड़ा भी उठाया गया, किन्तु अन्त में उर्दू हिन्दी की एक शैली मान ली गई, क्योंकि उर्दू के आज इतने अधिक शब्दों को हिन्दी ने आत्मसात कर लिया है कि उन्हें विलग किया ही नहीं जा सकता।

इसी प्रकार अँग्रेजी के अन्धभक्तों ने, जिनकी संख्या इस देश में दो प्रतिशत से अधिक नहीं है, हिन्दी के विरुद्ध, आजादी के पश्चात् पर्याप्त विष वमन किया, किन्तु नई पीढ़ी के लोग अब अँग्रेजी में न उतने निष्णात हैं जितने उनके आका थे और न वे अँग्रेजी के बल पर अब जनमानस को मूर्ख बना सकते हैं, अतः उन्हें भी धीरे–धीरे हिन्दी के समीप होना पड़ रहा है। वह दिन दूर नहीं है कि हिन्दी देश के सभी लोगों के गले का हार होगी।

वर्तमान शासन आज भी, मरी बन्दरिया जैसे अपने मृत बच्चे को छाती से चिपटाये रहती है, वैसे ही अँग्रेजी को छाती से चिपटाये हुए हैं। किन्तु वह दिन दूर नहीं है कि हिन्दी परीक्षाओं में भी अपना वर्चस्व स्थापित करेगी और शासन को झक मारकर केन्द्रीय परीक्षाओं का माध्यम हिन्दी करना होगा। आज चाहे लोग अपने घर–बार बेचकर अपने बच्चों को अँग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में भले ही भेज रहे हों, उन्हें किसी दिन पश्चाताप करते हुए हिन्दी के समक्ष घुटने टेकने होंगे।

जो लोग कहते हैं कि दक्षिण में हिन्दी का विरोध है, वे शायद नशे में हैं। दक्षिण में आज लोगों को हिन्दी से अत्यधिक लगाव है और सैंकड़ों साहित्यकार हिन्दी कहानी, कविता, निबन्ध, उपन्यास के सृजन में लगे हुए हैं। ढेर सारी उच्चकोटि की हिन्दी पत्र–पत्रिकाएँ भी वहाँ से प्रकाशित हो रही हैं। यह हिन्दी की सक्षमता का ही उदाहरण है। दक्षिण में हिन्दी विरोध का एक मात्र कारण है उर्दू–फारसी शब्दों का भाषा में अत्यधिक प्रयोग। यदि संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रचलन होगा तो कोई विरोध वहाँ नहीं होगा, क्योंकि उनकी भाषाएँ संस्कृत के अधिक निकट हैं, उर्दू के नहीं। दक्षिण वालों को उत्तर वालों का वहाँ जाकर अँग्रेजी में बोलना बहुत खटकता है, क्योंकि जिनके जिम्मे हिन्दी के विकास का उत्तरदायित्व है, वे ही उसकी उपेक्षा करें तो क्या

अच्छा लगता है ? निशचित ही हिन्दी ने दक्षिण में भी अपनी सक्षमता सिद्ध की है।

राजनेताओं ने देश की सभी भारतीय भाषाओं को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने की बातें करते हुए हिन्दी को तबाह करने का प्रयत्न भी किया, किन्तु हिन्दी ने इन भाषाओं का सम्मान करते हुए देश में अपने को प्रतिष्ठापित करने का ही प्रयत्न किया, जिससे भाषा को लेकर कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ और सभी प्रदेशों में हिन्दी पूरी तरह से व्यवहृत होने लगी। हिन्दी की प्रकृति जोड़ने की रही है, तोड़ने की नहीं–इससे इसकी सक्षमता ही दृष्टिगोचर होती है।

वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री वाजपेयी जी ने अभी हाल ही में एक आदेश सभी केन्द्रीय सचिवालयों को दिया है कि दूसरे प्रान्तों से आने वाले सभी पत्रों के प्रत्युत्तर हिन्दी में ही भेजे जाएँ। आवश्यकतानुसार उस प्रान्त की भाषा अथवा अँग्रेजी में उसका अनुवाद भी साथ में भेजा जा सकता है। इस आदेश का किसी प्रान्त ने विरोध नहीं किया। इससे स्पष्ट है कि राजकार्य में भी हिन्दी ने अपनी समर्थता दर्शा दी है।

देश की भाषा वही सक्षम होती है जो भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत हो, जिससे सम्पूर्ण साँस्कृतिक परम्पराओं का निर्वहण हो और जो सम्पूर्ण विश्व में हमारी सभ्यता तथा संस्कृति का सांगोपांग सन्देश उजागर करती हो। इस रूप में भी हिन्दी ही इसके योग्य सिद्ध होती है।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता के साथ भारतीय महापुरुषों के उदात्त चरित्रों का जिसमें निरूपण हो, जिसमें उनके अलौकिक चरित्रों का सांगोपांग वर्णन हो तथा जिनकी शिक्षा–दीक्षाओं को भारतीय जनजीवन ने आत्मसात किया हो–ऐसी भाषा यदि कोई है, तो वह हिन्दी ही है।

हिन्दी का साहित्य, संस्कृत के पश्चात्, सर्वोपरि और सुविस्तृत है। देश के सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ, महाकाव्य, खण्ड काव्य और मुक्तक काव्य इसमें हैं। रामचरितमानस, साकेत, प्रिय–प्रवास, कामायनी, कुरुक्षेत्र आदि महान् काव्य ग्रंथों के साथ प्रेमाश्रम, रंगभूमि, तितली, दिव्या, महासमर जैसे उपन्यास, रक्षाबन्धन, राजमुकुट, प्रताप–प्रतिज्ञा जैसे नाटक और सैकड़ों–सहस्रों की संख्या में सुन्दर कहानियाँ एवं निबन्ध, समीक्षाएँ आदि जिसमें हैं, वह भाषा हिन्दी ही है।

तुलसी, सूर, जायसी, कबीर, मीराँ, नानक, दादू, चिन्तामणि, देव, भूषण, बिहारी, रसखान, ग्वाल, ठाकुर, केशव, घनानन्द आदि ने जिसमें अपने काव्यग्रंथों का प्रणयन किया हो–वह हिन्दी वस्तुतः एक सक्षम भाषा है।

हिन्दी चित्रपटों ने हिन्दी भाषी क्षेत्रों में ही नहीं, विश्व प्रांगण में भी प्रतिष्ठा प्राप्त की है तथा सामाजिक, साँस्कृतिक, शैक्षिक, कला और शिल्प की दृष्टि से जो सम्मान उन्होंने अर्जित किया है, वह हमारे गौरव का विषय है।

देश में आज हिन्दी में सर्वाधिक पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। अहिन्दी क्षेत्रों में भी ऐसे दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक पत्र हैं जिससे वहाँ हिन्दी की प्रतिष्ठा बढ़ी है। यों हिन्दी में प्रकाशित सरस्वती, माधुरी, सुधा, विशाल भारत, विश्वमित्र, नया समाज, कल्याण, माध्यम, अवन्तिका, अजन्ता, अवनिका, कल्पना, चाँद, बालक, बाल सखा, चम्पक, बाल विनोद, मनमोहन आदि सहस्रों पत्रिकाओं ने हिन्दी के विकास में अमूल्य योगदान दिया है। आज भी वीणा, साहित्य अमृत, कल्याण अपनी सुगंधी सर्वत्र फैला रहे हैं।

हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र में भी आज धड़ल्ले से हिन्दी साहित्य प्रकाशित हो रहा है। श्री कृष्णचन्द्रजी बेरी जैसे प्रकाशक आज भी विद्यमान हैं जो नाम मात्र के मूल्य में सहस्रों पृष्ठों के ग्रंथ हिन्दी संसार

को भेंट कर रहे हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, राजभाषा प्रचार समिति, नागरी प्रचारिणी सभा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, प्रकाशन विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, साहित्य–मण्डल, मध्यभारत हिन्दी प्रचार सभा, कई प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि संस्थाएँ हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अहर्निश कार्यरत हैं।

हिन्दी परीक्षाओं में, जिनमें प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा (साहित्य रत्न), विदुषी, प्रभाकर, रत्न, एम.ए. (हिन्दी) प्रमुख हैं, सारे देश में सहस्रों परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं।

दूरभाष, आकाशवाणी आदि के कार्यक्रमों में हिन्दी का भरपूर प्रयोग होता है। दूरभाष हिन्दी का सूचना माध्यम है। डाकघरों से हिन्दी के करोड़ों पत्र एवं पत्रिकाएँ प्रतिदिन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक भेजे जाते हैं। अनेक बैंकों, राजकीय प्रतिष्ठानों तथ विभागों में भी अधिकांश कार्य हिन्दी में सम्पादित होने लगा है।

देश के कार्यालयों में करोड़ों लोग काम कर रहे हैं, उन्होंने अपनी टिप्पणियाँ हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया है। निश्चित ही वे जानते हैं कि हिन्दी में टिप्पणी लिखना अत्यन्त सरल और सुबाध है। उनके विचारों को जनता के समक्ष भी सरलता से प्रदर्शित किया जा सकता है।

हिन्दी के पक्ष में एक बात यह भी है कि उसी के माध्यम से देश में भावात्मक एकता स्थापित हुई है। यह कहा जाता है कि वही भाषा भावात्मक एकता स्थापित करने में समर्थ होती है जो राष्ट्रीय भावों और विचारों को वहन एवं अभिव्यक्त करने में समर्थ हो। इस दृष्टि से भी हिन्दी ही एक समर्थ भाषा है, क्योंकि इसके विकास में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। क्या तुलसी और सूर ही हिन्दी के हैं ? नहीं–ताज, रसखान, रहीम, नजीर, नानक आदि भी हिन्दी के हैं। ईसाई पादरियों ने भी इसे काफी परिमार्जित और परिष्कृत किया है। इनके कारण ही हिन्दी में अँग्रेजी, अरबी, फारसी, डच, पुर्तगाली आदि भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं।

एक प्रमुख कारण हिन्दी के साथ और लगा हुआ है और वह है हिन्दी अपनी सुप्रसिद्ध देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। यह विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। इसमें जैसा लिखा जाता है वैसा ही बोला जाता है। देश की सभी भाषाएँ भी इसी लिपि में लिखी जा सकती हैं। यह देवनागरी लिपि की ही कृपा है कि एक–दो मास में ही कोई व्यक्ति हिन्दी में लिखना–पढ़ना सीख सकता है।

ज्ञान–विज्ञान से सम्बद्ध नये से नये उपकरण भी आज देश में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। हिन्दी के कम्प्यूटर और साफ्टवेयर भी प्रभूत मात्रा में उपयोग में लिये जा रहे हैं।

उपर्युक्त तथ्य स्पष्ट करते हैं कि 'हिन्दी ही देश की राजभाषा के लिए सर्वथा सक्षम और समर्थ है।'

उपर्युक्त विवेचन के साथ मैं यह निःसंकोच कहना चाहूँगा कि हम माँ भारती की सक्षमता के लिए कितने ही प्रमाण प्रस्तुत करें, कितने ही मंच बनाएँ और कितनी ही गोष्ठियाँ आयोजित कर उसे केन्द्रीय सरकार की राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने का अनुनय–विनय करें, जब तक काले अँग्रेज अपने पदों पर प्रतिष्ठित हैं और जब तक उनकी धौंस में हमारे प्रधानमंत्री हैं, जिनकी कथनी और करनी में अन्तर है, तब तक हिन्दी की सक्षमता का हम कितना ही ढिंढोरा पीटें, वह किसी भी केन्द्रीय परीक्षा का माध्यम नहीं बन सकेगी और न राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होगी।

-प्रधानमन्त्री

साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

हर सिंगार

भारत माता के भाल की बिन्दी, प्यारी भाषा हिन्दी

✍ प्रभु चौधरी

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा ही नहीं वरन् एक पहचान भी बने। जिस राष्ट्र की भाषा में विदेशी मंचों पर अपनी बात कही जाती है तो राष्ट्र का प्रत्येक जन गौरवान्वित होता है, इसलिए कहा गया है कि भारतीय राष्ट्रभाषा अंग्रेजी की दास नहीं स्वामिनी है। श्रद्धेय श्री लखनलालजी गुप्त की कविता से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी ही भारतमाता की भाल की बिन्दी है, कविता की कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं:–

"कोटि-कोटि लोगों की हिन्दी बिन्दी भारत भाल की,
क्रूर दृष्टि मत पड़े कदाचित, इस पर निर्दय काल की,
देवनागरी गुणागरी यह संस्कृत की प्रिय कन्या है,
समझी जाती भारत भर में सरलाकर्षक धन्या है,
जैसा लिखो पढ़ो वैसा ही, बात नहीं जंजाल की।।
दयानंद, गांधी, सुभाष ने इसको ही अपनाया था,
योग्य राष्ट्रभाषा के हैं यह , कह सबको समझाया था।।

भारत के अनुरूप इतने विभिन्न सम्प्रदाय, धर्म, जातियाँ, भाषाएँ एवं बोलियाँ अन्य किसी देश में नहीं हैं। यहाँ विभिन्न धर्मो एवं भाषाओं का अद्भुत संगम है, जिससे किसी भी समय मजहब, भाषा, धर्म, जाति या किसी अन्य भेंट के कारण हिंसा की ज्वालाएँ फूट सकती हैं। किन्तु इन सबको यदि राष्ट्रीय भावनात्मक एकता के सूत्र में बाँधकर भारत रूपी माला में नहीं गूँथेंगे तो यह धर्म, ये भाषाएँ विविध जातिगत स्वरूप और यह लोग अलग–अलग हो जायेंगे। ऐसी स्थिति में इन सबको एक राष्ट्रभाषा के नीचे ला सकते हैं। किसी एक विचार का नहीं बना सकते। फलस्वरूप सम्पूर्ण भारतवासियों को ही सौ करोड़ मणियों की मालाओं के रूप में हम राष्ट्रभाषा हिन्दी के सूत्र के द्वारा रूपांकित कर सकते हैं।

इसी प्रकार विनोबाजी हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में और देवनागरी लिपि को राष्ट्रलिपि की तरह प्रतिष्ठित करने के पक्षपाती थे। राष्ट्रभाषा, राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान की तरह राष्ट्रलिपि "नागरी" भी हमारी आवश्यकता है। भाषा से व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र जुड़ता है, इसलिए भारतीय भाषाओं में भी हिन्दी का राष्ट्रभाषा होना आवश्यक है । इसी क्रम में पं. जवाहरलाल नेहरू मानते थे कि भाषा एक बहुत ही नाजुक यंत्र है, ऊँचे क्षेत्रों में उसका विकास बहुत ही ऊँचे उठे हुए दिमागों के द्वारा होता है और आम जनता के द्वारा किए हुए उपयोग से उसकी ताकत बढ़ती है, वह एक फूल की तरह खिलता है और अगर बाहर से दबाव डाला गया तो उसका खिलना रुक जाता है या फिर वह गलत दिशा में मुड़ जाती है। नागरी प्रचारिणी सभा के १६०५ के सम्मेलन में बाल गंगाधर तिलक ने यह घोषणा की थी कि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है, क्योंकि हिन्दी के आवेदनों को सरकार ने स्वीकृति प्रदान की है।

हिन्दी देश को जोड़ने वाली भाषा है, इसकी सहायता से सम्पूर्ण राष्ट्र में विचार विनिमय कर सकते हैं। भारत की सभी भाषाएँ तो हिन्दी की बहनें हैं, केवल आज आवश्यकता है कि हम हिन्दी तथा सभी भारतीय भाषाओं की प्रगति तथा तालमेल के लिये प्रयत्नशील रहें लेकिन पीड़ादायक तथ्य यह है कि पाश्चात्य सभ्यता के अंधे मोहजाल ने हमें न केवल लोक संस्कृति एवं परम्पराओं से विमुख किया बल्कि भाषा के क्षेत्र में भी हमें छला है। अंग्रेजी के कुचक्र में उलझकर हम भारतीय भाषाओं की उपेक्षा को सहन करने के आदी हो गए हैं जबकि भारतीय भाषा में आत्मा, अस्मिता एवं स्वाभिमान तथा गौरव छुपा हुआ है। आज फिर आवश्यकता है, भाषायी

–शेष पृष्ठ २७ पर

हर सिंगार

हिन्दी ही क्यों ?

डा. माला मिश्र

स्वाधीन भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा ही नहीं बनाया गया था बल्कि हिन्दी के प्रयोग को गौरव का विषय समझना भी अपेक्षित था। पर लगता है कि दासता के अभिशाप से देश अभी तक मुक्त नहीं हुआ है। हमें स्वतन्त्र हुए ५५ वर्ष हो चुके हैं, किन्तु हिन्दी को उसका सही स्थान अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। इससे अधिक लज्जास्पद बात क्या हो सकती है कि एक विदेशी भाषा अंग्रेजी हमारे जीवन के सभी क्रिया–कलापों में हावी है।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा का पद यों ही नहीं दे दिया गया। ऐसा करते समय किसी अन्य भारतीय भाषा के प्रति अन्याय भी नहीं किया गया। पहले संस्कृत और बाद में प्राकृत, देश की सम्पर्क भाषा थी। वह स्थान अब हिन्दी ने ले लिया है।

अब हम उन कारणों पर प्रकाश डालेंगे, जिनके कारण हिन्दी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा की पदवी प्रदान की गई, जिससे वामपंथी विचारधारा के उन प्रगतिशील तत्त्वों का भ्रम दूर हो जाएगा, जो अभी भी इस मुगालते में है कि हिन्दी में राष्ट्रभाषा और राजभाषा होने की पात्रता नहीं है।

हिन्दी हमारी स्वाधीनता के स्वर की संवाहिका है–पराधीन भारत में अरबी, फारसी और फिर अंग्रेजी का प्रभुत्व था। ये हमारी अपनी भाषाएँ नहीं थीं बल्कि अन्य देशीय आक्रान्ताओं द्वारा हम पर बलात् थोपी गई भाषाएँ थीं। अतः जनमानस में उनके प्रति आत्मीयता की भावना का सर्वथा अभाव था। दूसरी ओर हिन्दी हमारी अपनी भाषा है। वह देश की मिट्टी से उपजी भाषा है, उसमें अपनापन है। वह विदेशी भाषा नहीं है। कोई भी स्वतन्त्र देश विदेशी भाषा को राष्ट्रभाषा और राजभाषा के पद पर आसीन नहीं कर सकता। फिर हमारा राष्ट्र तो सदा से ही सुसभ्य, सुसंस्कृत और सर्वथा सम्पन्न राष्ट्र रहा है।

संस्कृत से निस्सृत

यों तो सभी भारतीय भाषाएँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संस्कृत से ही निकली हैं, किन्तु हिन्दी की संस्कृत से समीपता तो स्वयं सिद्ध है। हिन्दी का सम्पूर्ण अस्तित्व ही संस्कृत पर निर्भर है, चाहे शब्दावली की बात हो या व्याकरण की बात हो। जिस भाषा को संस्कृत जैसी सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषा का सम्बल प्राप्त है, वह भाषा (हिन्दी) भारत की राष्ट्रभाषा और राजभाषा होने की पूर्ण अधिकारिणी है।

सरल भाषा

जहाँ हिन्दी को यह गौरव प्राप्त है कि वह संस्कृत की सम्यक् उत्तराधिकारिणी है, वहीं उसमें यह खूबी है कि वह बहुत सरल भाषा है। अनेक क्षेत्रों में उसने संस्कृत की तथाकथित क्लिष्टता को त्याग दिया है और अपना सहज विकास मार्ग अपनाया है, चाहे लिंगविधान का क्षेत्र हो, सर्वनामों और क्रियाओं के प्रयोग की बात हो या वचन का विषय हो, सर्वत्र लचीलापन अपनाया है हिन्दी ने। अतः कोई भी अहिन्दी भाषी अपेक्षाकृत अल्प समय में ही हिन्दी समझ और सीख सकता है।

सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि

संस्कृत, नेपाली, मराठी के समान ही हिन्दी की लिपि भी देवनागरी है, जो विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। आधुनिक विचारकों–विद्वानों/वैज्ञानिकों ने देवनागरी लिपि को कम्प्यूटर में प्रयोग हेतु अंगीकृत किए जाने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त लिपि माना है। देवनागरी लिपि की इस विशेषता से वस्तुतः सभी लोग बखूबी वाकिफ हैं कि इसमें जैसा लिखा जाता है, वैसा ही पढ़ा जाता है, जबकि अरबी और

रोमन आदि लिपियों में ऐसा नहीं है। उदाहरणार्थ, देवनागरी में 'अ' की आवाज के लिए 'अ' स्वर है, जबकि अरबी और रोमन लिपियों में 'अ' के प्रतीक क्रमशः 'अलिफ' 'अल्फा' या 'ए' बोले जाते हैं।

सार्वदेशिक छवि

हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा और राजभाषा बनाने का सबसे बड़ा कारण है उसका सार्वदेशिक स्वरूप। पूर्व में संस्कृत और प्राकृत के पश्चात्, अब हिन्दी ही ऐसी भाषा है जो समस्त भारत में बोली और समझी जाती है। अन्य भारतीय भाषाएँ समृद्ध तो हैं किन्तु उनका क्षेत्र सीमित है, जबकि हिन्दी का प्रभाव क्षेत्र अखिल भारत है।

देश की आधी से अधिक जनसंख्या हिन्दी भाषी है। इस समय देश की जनसंख्या एक अरब (१०० करोड़) से अधिक है और इसकी अर्द्धाधिक जनसंख्या हिन्दी भाषी है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, चण्डीगढ़, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली पूर्णतः हिन्दी भाषी हैं, जबकि जम्मू–कश्मीर का जम्मू अंचल हिन्दी भाषी है। महाराष्ट्र में नागपुर व समीपवर्ती क्षेत्र प्रायः हिन्दी भाषी हैं। इसके अतिरिक्त देश का ऐसा कोई भाग नहीं है जहाँ हिन्दी भाषी पर्याप्त संख्या में नहीं हैं। फिर देश के सभी प्रदेशों के तीर्थ–स्थान देश के सभी कोनों से तीर्थ–यात्रियों के अनवरत आवागमन के कारण अतीत में हिन्दी–संस्कृतमय हो चुके हैं। पंजाबी तो वस्तुतः हिन्दी के विशाल परिवार की एक सबल सदस्य ही है। अतः पंजाब को अहिन्दी भाषी कहना उचित नहीं होगा।

हिन्दी सन्तों की भाषा है–गुरु नानक देव, सन्त तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास आदि की रचनाओं ने, जो हिन्दी में ही हैं, सम्पूर्ण देश के जनमानस को झंकृत किया है। 'रामचरितमानस' और 'सूरसागर' ने तो लोगों को 'राममय' और 'कृष्णमय' ही कर दिया है। सन्त सेनापति श्री गुरु गोविन्दसिंह ने तो अपनी कृतियों और कार्यों से इस सुप्त समाज को जाग्रत ही नहीं किया बल्कि अपने एक–एक शिष्य को सौ–सौ आतताइयों से जूझने में समर्थ भी बनाया।

संस्कृति की भाषा

हिन्दी हमारी अस्मिता और संस्कृति की भाषा है। इसी के माध्यम से देश में सांस्कृतिक–नव जागरण की लहर आई है। अन्यत्र से आए आक्रमणकारियों की अधीनता में लगभग एक हजार वर्षों की लम्बी अवधि तक रहने के कारण हम अपने प्राचीन गौरव, सांस्कृतिक मूल्य आदि सब कुछ भूल चूके थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मुंशी प्रेमचंद, हरिवंशराय बच्चन, सुभद्रा कुमारी चौहान एवं महादेवी वर्मा सदृश हिन्दी के साहित्यकारों की रचनाओं ने लोगों के अन्तर्तम को स्पंदित कर दिया और लोगों में सांस्कृतिक चेतना का पुनरोदय हुआ।

सक्षम भाषा

कुछ लोग अज्ञानतावश यह आरोप लगाते हैं कि हिन्दी सक्षम भाषा नहीं है। उसमें विभिन्न बातों को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त शब्दावली नहीं हैं। यह आरोप पूर्वाग्रह ग्रस्त है। हिन्दी स्वयं समर्थ तो है ही। दूसरे, इसे संस्कृत सम्पूर्ण शब्दकोष और **सभी भगिनी स्वरूप भारतीय भाषाओं की शब्दावली** का सहयोग एवं सहायता प्राप्त है। फिर अक्षमता की बात का क्या अर्थ ? स्वयं इसकी शब्दावली सक्षम है, इसका व्याकरण सक्षम है, क्योंकि यह संस्कृत पोषित भाषा है। अतः इसे नए शब्द गढ़ने में भी कठिनाई नहीं है। उदाहरण के लिए डा. रघुवीर के 'बृहद् शब्द कोष' को ले सकते हैं। डा. रघुवीर भारत के अनन्य विद्वान् थे। उन्होंने अपने अथक् परिश्रम से लोगों को दिखा दिया कि संस्कृत, हिन्दी आदि भारतीय भाषाएँ पूर्ण रूपेण सक्षम भाषाएँ हैं। उन्हें किसी बाहरी वैसाखी की जरूरत नहीं है।

सम्पर्क भाषा

हिन्दी सम्पूर्ण भारत की सम्पर्क भाषा है। यह देश के विभिन्न प्रान्तों के लोगों को एक–दूसरे से जोड़ती है। अहिन्दी भाषी बंगाली बन्धु भी जब अपने

तमिलभाषी भाई से संभाषण करेगा तो वह हिन्दी में ही करेगा। ऐसी है हिन्दी की सर्वग्राह्यता।

भारतीय भाषाओं से सजीव सम्बन्ध

कुछ लोग हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच कृत्रिम विरोध दर्शाते हैं, वस्तुतः तथ्य तो यह है कि संस्कृत सभी भारतीय भाषाओं की जननी है और ये भाषाएँ एक–दूसरे की 'बहिन' हैं। कुछ बड़ी बहिनें तो कुछ छोटी बहिनें। इस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृत हमारी नानी हुई, हिन्दी हमारी माता और अन्य भारतीय भाषाएँ हमारी मौसी (कोई बड़ी मौसी तो कोई छोटी मौसी) इस प्रकार सभी भारतीय भाषाएँ एक दूसरे की पूरक हैं, भेदक नहीं।

हिन्दी समाज के हर वर्ग की भाषा है–सेठ हो या श्रमिक, ब्राह्मण हो श्रमण, मालिक हो या मजदूर, नेता हो या अभिनेता, हिन्दी सबकी चहेती भाषा है। यह सबको जोड़ती है, तोड़ती नहीं। वस्तुतः हर दिल की धड़कन है हिन्दी।

हिन्दी सर्व सम्प्रदायों की भाषा है–शैव हो या शाक्त, जैन हो या बौद्ध, आर्य समाजी हो या ब्रह्म समाजी, वैष्णव हो या कापालिक, ईसाई हो या इस्लामी, नास्तिक हो या 'आस्तिक, हिन्दी सभी को गले से लगाती है। हिन्दी न तो कोई वर्ग भेद करती है और न कोई सम्प्रदाय भेद। वह सर्व समावेशकारी भाषा है।

उर्दू हिन्दी की छोटी सहोदरी है

कुछ राजनैतिक स्वार्थ से प्रेरित लोग हिन्दी और उर्दू के बीच विरोध और वैमनस्य की स्थिति पैदा करने का प्रयास करते हैं। यह सर्वथा अनुचित है। वस्तुतः उर्दू हिन्दी की छोटी बहिन ही है। हिन्दी का उर्दू के प्रति सदा वात्सल्य भाव रहा है। हिन्दी ने अपनी 'क्रिया' उर्दू को दी हैं, अपनी विभक्तियां उर्दू को दी हैं तथा अपने सर्वनाम और संख्याएँ भी उर्दू को दी हैं। उर्दू को यदि देवनागरी में लिखा जाए तो हिन्दी और उर्दू में अन्तर करना कठिन हो जाएगा।

हिन्दी प्रारूपण में समर्थ

मूल प्रारूपण चाहे वह किसी विषय से सम्बन्धित हो, हिन्दी में बहुत ही सुन्दरता से किया जा सकता है। अंग्रेजी प्रारूपण में दोहरे अर्थ और क्लिष्टता की गुंजाइश हो सकती है, किन्तु हिन्दी प्रारूपण, स्पष्ट और सरल होता है। मध्यकालीन भारत में अनेक मुगल/मराठा आदि शासकों के लेख हिन्दी में उपलब्ध हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी प्रारूपण की भी एक सशक्त भाषा है।

हिन्दी अस्मिता और आत्मीयता की भाषा है

हिन्दी स्वाभिमान और गौरव की भाषा है। यह 'स्वकीया' है, अंग्रेजी की तरह 'परकीया' नहीं। यह अपनत्व की, प्रेम–स्नेह की, सामंजस्य और समरसता की भाषा है। यह स्वभाषा है, सरल भाषा है, सम्पन्न भाषा है, राजभाषा है, राष्ट्रभाषा है। यह संस्कृत की पुत्री स्वरूपा है। राष्ट्रीय स्तर पर हर भारतवासी की माता है। इसे प्रेम दीजिये, स्नेह दीजिए और दीजिए समुचित सम्मान। यह न तो नफरत से पैदा हुई है और न नफरत पैदा ही करती है।

आज राष्ट्रभाषा हिन्दी का मानक रूप संस्कृत और अन्य सभी भारतीय भाषाओं के सम्पर्क और समागम से सर्जित और सुसंस्कृत, सर्वसमावेशकारी रूप है। यह मात्र क्षेत्रीय या प्रादेशिक खड़ी बोली, अवधी या ब्रज या भोजपुरी या मगधी नहीं है। राष्ट्रभाषा हिन्दी इन सब से पुष्ट और परिष्कृत होकर समर्थ और सम्पन्न होकर स्वाभिमान और स्वगौरव की भाषा के रूप में सामने आई है। वैसे यह अपने विशाल वक्ष में सभी प्राचीन और अर्वाचीन भारतीय भाषाओं उर्दू समेत और कुछ विदेश भाषाओं के, अनेक शब्दों को भी स्नेहपूर्वक समाहित किए हुए है। अतः इसे अपनाएं और राष्ट्र को सम्पन्न, समृद्ध और समुन्नत बनाएँ। किसी कवि ने ठीक ही कहा है:–

हमारी हिन्दी में क्या–क्या नहीं,
वह तो भाषा ही है एक सही।

– साभार जाह्नवी, अक्टूबर २००१

हर सिंगार

"राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रीय एकता

डा. शंकरराव कप्पीकेरी

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रधान सूत्रधार एवं राष्ट्रपिता गांधीजी, स्वाधीन भारत के लोकप्रिय प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, स्वतंत्रता संग्राम के महान नेताजी सुभाषचंद्र बोस, भारतीय गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसादजी, आजाद हिन्दुस्तान के प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल श्री राजगोपालाचार्यजी, स्वाधीनता संग्राम के फौलादी पुरुष एवं प्रथम उप प्रधानमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल, भारतीय संविधान के पितामह डा. भीमराव आम्बेडकर, वंदेमातरम् के मूल रचयिता बंकिमचंद्रजी, जन–गण–मन के अमर गायक कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोरजी, महान समाज सुधारक राजाराममोहनराय, आजादी के मंत्र उद्घोषक बाल गंगाधर तिलकजी, तमिल के राष्ट्रीय गीतकार सुब्रह्मण्यम भारती आदि स्वाधीनता संग्राम के प्रमुख राष्ट्र नायकों ने राष्ट्रीय स्वाभिमान, राष्ट्रीय अखण्डता, राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीय एकात्मकता, राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत, राष्ट्रीय जन मानस, राष्ट्रीय समभाव, राष्ट्रीय सौहार्द्र, राष्ट्रीय संस्कृति, राष्ट्रीय आत्मा आदि महान राष्ट्रीय मुद्दों को दृष्टि में रखते हुए ही हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा, राजभाषा और जनभाषा के रूप में स्वीकारा था। राष्ट्रीय जीवनधारा को जोड़ने वाली सक्षम और सबल भाषा माना जाता था। भारत की विभिन्न राष्ट्रीय भाषाओं को जोड़ने वाली सम्पर्क भाषा के रूप में सर्वानुपात से मान्यता प्रदान की थी।

राष्ट्रपिता गांधीजी ने अपने राष्ट्र की रचनात्मक कार्यक्रमों में हिन्दी को ही राष्ट्रीय स्थान प्रदान किया था। राष्ट्रीय एकता का बहुत ही जबरदस्त माध्यम माना था। राष्ट्र की समस्त जनता को अपने ही राष्ट्र की अधिकांश जनता द्वारा बोली और समझी जाने वाली भाषा हिन्दी के लिखने और पढने के लिये आह्वान किया था। दक्षिण भारत की जनता को हिन्दी लिखने और पढ़ने का राष्ट्रीय परामर्श दिया था। योग्यता प्राप्त कराने के राष्ट्रीय उद्देश्य से ही मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना की थी। अपने ही पुत्र देवदास गांधी को दक्षिण भारत का प्रथम प्रचारक बनाकर मद्रास भेजा था। सभी प्रदेशों की विभिन्न भाषा–भाषी जनता को हिन्दी के माध्यम से ही स्वतंत्रता का महामंत्र दिया था। आपकी मातृभाषा तो गुजराती थी।

समूचे राष्ट्र को अंग्रेजों की गुलामी से आजादी दिलाने वाले राष्ट्रपिता गांधीजी ने प्रादेशिक भाषाओं को अपने–अपने प्रदेशों की राष्ट्र भाषा व राज भाषा माना था। इसी की अंतिम घड़ियों तक जबरदस्त पैरवी करते रहे। राष्ट्र–पिता के हत्यारे नाथूराम गोड़से की पिस्तौल की गोलियों से घायल होकर दम तोड़ते समय भी आप के मुख से यही शब्द निकले "हे राम"। यही ध्वनि गूंजती रही। यह आवाज गांधीजी के हृदय की ही प्रतिध्वनि थी।

राष्ट्र के मुक्तिदाता गांधीजी तथा राष्ट्र नायकों ने हिन्दी को ही प्रदेशों की भाषाओं को जोड़ने वाली सम्पर्क भाषा मुक्तकंठ से स्वीकार किया था। सारे राज्यों तथा प्रदेशों को एक ही सूत्र में बांधने के लिए हिन्दी को ही सबल, समर्थ और शक्तिशाली बतलाया था। सांस्कृतिक तथा भावात्मक एकता में ही राष्ट्र की एकता के होने की जबरदस्त साक्ष दी थी। देश के ऋषियों, मुनियों, मनीषियों, साधुओं, तपस्वियों, भक्तों, संतों और सूफियों ने अपनी अपार साधनाओं

हर सिंगार

के माध्यम से आध्यात्मिक चेतना के साथ–साथ सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया है। वैदिक काल से भावात्मक एकता और मानव एकता का बोधामृत का पान कराया है।

भारत के सभी राजनैतिक दलों ने राष्ट्र को जोड़ने के लिये हिन्दी को ही पूर्ण समर्थ तथा सक्षम स्वीकार किया है। यह भारतीय गणतंत्र को सफल बनाने की गणतंत्रीय भाषा है। यह राष्ट्र की सबल वाणी है। राष्ट्र की आवाज़ को बुलंद करने वाली भाषा है। राज्यों की जनता को एकता के सूत्र में बांधनेवाली जबरदस्त कड़ी है। भाषाओं के आधार पर राज्यों की पुनर्रचना करने के बावजूद राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने में हिन्दी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय भूमिका निबाह रही है। हिन्दी की ही सहायता से भावात्मक एकता स्थापित की जा सकती है। राष्ट्रीयता का प्रतीक बनकर हिन्दी अपना दायित्व निबाह रही है।

राष्ट्र के जन नेताओं ने साधारण जनता को सार्वकालीन और सार्वजनीय संदेश दिया है कि हिन्दी ही राष्ट्रीय एकात्मकता का प्रतीक है। बहु भाषा भाषी भारतीयों के आदान–प्रदान की समर्थ भाषा हिन्दी ही है। हिन्दी अपनी क्षमता, शक्ति, ताकत और सम्पदा से आगे बढ़ने का प्रयास कर रही है। राजनेताओं की मानसिकता के कारण तेजी के साथ हिन्दी को राष्ट्रीय जीवन में न्यायोचित स्थान नहीं मिल पा रहा है। राजनैतिक दलों की स्वार्थांधता की वजह से हिन्दी की भारी उपेक्षा होती नजर आ रही है। राष्ट्र की सर्वतोन्मुखी उन्नति में हिन्दी को सबल माध्यम बनाने के प्रयत्न संतोषजनक नहीं हैं। हिन्दी की आत्मा ही राष्ट्र की आत्मा है। हिन्दी की पुकार राष्ट्र की पुकार है। अहिन्दी भाषी जनता को गुमराह बनाया जा रहा है। हिन्दी की आवाज़ भारतीय जन मानस की आवाज़ है। हिन्दी का संदेश राष्ट्र का संदेश है। राष्ट्र की एकता सर्वोपरि व सर्वश्रेष्ठ है। साम्प्रदायिकता की जगह राष्ट्रीयता का प्रबल वाहन हिन्दी ही है।

संविधान निर्माताओं तथा मानव उद्धारकों ने राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिये हिन्दी भाषा को एक सर्वोत्तम साधन माना है। हिन्दी ही भारत के बहुसंख्यक लोगों द्वारा बोली, समझी और लिखी जाने वाली जनभाषा है। देश की सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकता को हिन्दी ही मजबूत बनाने में सक्षम है। राष्ट्रनायकों का स्पष्ट विचार है कि हिन्दी राष्ट्र की एकता व स्वतंत्रता की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ है। साम्प्रदायिकता और जातीय भावना का निर्मूलन करने में जनतंत्रीय भाषा हिन्दी सक्षम है। अलगाववाद की विरोधी है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सबल व सक्षम माध्यम द्वारा सर्वधर्म समभाव का महान दृष्टिकोण उत्पन्न करना सम्भव है। हिन्दी प्रेम, समता, स्नेह, सत्य और सहिष्णुता के प्रचार व प्रसार का माध्यम है। एकता के सूत्र में बांधने का कार्य कर सकती है। क्षेत्रीयता की भावना के स्थान पर राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने की ताकत रखती है। देश में सिर उठा रही अलगाववादी ताकतों तथा प्रवृत्तियों का दमन करने की ताकत रखती है। पृथकवादिता और क्षेत्रीयता के स्थान पर एकता और अखण्डता की भावना को जागृत करना ही राष्ट्र भाषा हिन्दी का राष्ट्रीय कार्य है। समाज के अनेक वर्गों और फिरकों के बीच पाये जाने वाले द्वेष और संघर्ष को दूर करने में हिन्दी ही सशक्त साधन बन सकती है। आपस में सद्भावना और सौहार्द्र का मधुर वातावरण उत्पन्न करने का सक्षम माध्यम बन सकती है। भविष्य ही इसका साक्ष्य देगा।

स्वाधीन और लोकतंत्रीय भारत को आत्म–निर्भर व शक्तिशाली राष्ट्र, बनाने में हिन्दी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। पावन एवं मंगलमय मानव संस्कृति के विकास का सशक्त माध्यम बन सकती है। वैदिककाल से ही महान और पुनीत आत्माओं ने

अपने त्याग, तपस्या, कुर्बानी और बलिदान द्वारा राष्ट्र की एकता, अखण्डता, अस्मिता और समग्रता को अक्षुण्ण रखा है। भारत बहुधर्मी, बहुपंथी, बहुजाति, बहुसम्प्रदायी और बहुभाषी राष्ट्र है।

सारा संसार यह जानता है कि राष्ट्रपिता गांधीजी ने घोषणा की थी कि "अगर हिन्दुस्तान को हमें एक राष्ट्र बनाना है तो हमें राष्ट्रभाषा हिन्दी को अपनाना होगा।" राष्ट्रीय जीवन में हिन्दी को व्यवहार में लाना राष्ट्र की एकता और उन्नति के लिये परमावश्यक है। राष्ट्रीयता का तात्पर्य राष्ट्र की अखण्डता व एकता से है। राष्ट्रीयता अर्थात् राष्ट्र के प्रति प्रेमभाव। समर्पण की भावना ही राष्ट्र प्रेम है।

राष्ट्रीय एकता, समग्रता व अखण्डता के बिना कोई भी स्वतंत्र राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। जिन देशप्रेमियों तथा स्वातंत्र्य प्रेमियों में राष्ट्रीयता और देश प्रेम की भावना जीवित है, वही देश समुन्नत और समृद्धशाली है। वही स्वतंत्र राष्ट्र सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। राष्ट्रप्रेमियों को राष्ट्र के कण–कण से असीम तथा अटूट प्यार होता है। हिन्दी से प्रेम करना ही राष्ट्र के साथ प्रेम भाव प्रदर्शित करना है। हिन्दी ही राष्ट्रीयता का चिन्ह है।

राष्ट्रभाषा–राजभाषा–जनभाषा हिन्दी को सांविधानिक स्थान दिलाने के लिये भीष्म प्रतिज्ञा और भगीरथ प्रयत्न करना होगा। राजनैतिक स्वार्थों की परम सिद्धि के लिये भारतीय संविधान और राजभाषा हिन्दी के साथ खिलवाड़ करना अविलम्ब बंद कराने के लिये सच्चे भारतीयों को दृढ़ संकल्प करना अनिवार्य है, तभी हिन्दी को हिन्द की बिंदी बना सकते हैं।

– पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
गुलबर्गा विश्वविद्यालय, गुलबर्गा

पृष्ठ २१ का शेषांश

स्वाभिमान जगाने की, अपनी संस्कृति से जुड़ने की और भारतीय परिवेश तथा वातावरण में पली हुई प्रतिभा की प्रतिष्ठा करने की । साहित्यकार सेठ श्री गोविन्ददास जी ने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन १९४८ को अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि देश के स्वतंत्र होने तक स्वतंत्रता हमारा प्रथम लक्ष्य था, अब हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा और देवनागरी राष्ट्रलिपि घोषित होना चाहिए। नागरी में लिखी जाने वाली भारती हमारे देश की राष्ट्रभाषा निश्चित की जाए। देशवासी और राष्ट्रभाषा के प्रेमी राजर्षि टंडन के विचार हैं कि हिन्दी और राष्ट्रलिपि के संदर्भ में मेरा विश्वास है कि एक दिन संयुक्त राष्ट्रसंघ में अवश्य ही हिन्दी को मान्यता मिलेगी और यदि चीन देश को राष्ट्रलिपि देवनागरी भेंट की जाए तो वह एशिया की लिपि बन ही जाएगी। इसी प्रकार महात्मा गांधी के विचार थे कि हिन्दी उस भाषा का नाम है जिसे हिन्दू और मुसलमान कुदरती तौर पर बगैर कोशिश के बोलते हैं। हिन्दुस्तानी और उर्दू में कोई फर्क नहीं है, देवनागरी लिखावट में लिखी जाने पर वह हिन्दी और अरबी में लिखी जाने पर उर्दू कही जाती है।

देश में अंग्रेजी के प्रति नौकरशाही का व्यवहार देखकर ऐसा लगता है कि लार्ड मेकाले जीत गया और हम आज भी गुलाम हैं। सवाल अंग्रेजी के विरोध का नहीं है, सवाल तो अंग्रेजियत के प्रति मोह का है। अपने ही भाइयों पर अंग्रेजी के सहारे हुकूमत करने वाले, अंग्रेजी में ही सोचने वाले, काले अंग्रेजों को पैदा करने वाले मेकाले की शिक्षा नीति भारत पर इसलिए थोपी गई थी कि यह अंग्रेजों के मानस पुत्र भारत की संस्कृति को नष्ट करेंगे। अंग्रेजी देश में एकता नहीं लाती, देश का विभाजन करना सिखाती है। आज हिन्दी, हिन्दी दिवस समारोह को मोहताज हो गई है। प्रशासन और राजकाज में अंग्रेजी का बोलबाला है। राजकीय कार्यों, भर्ती तथा शिक्षण प्रशिक्षण की भाषा के रूप में हिन्दी की स्थापना, प्रतिष्ठा तथा प्रसार की वृद्धि करना आवश्यक एवं उचित रहेगा।

– महिदपुर रोड़, जिला उज्जैन (म.प्र.)

हर सिंगार

राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रीय एकता

डा. अनुजप्रताप सिंह

किसी भी राष्ट्र के लिए ३ तत्त्वों की प्रतिष्ठा अपरिहार्य होती है ; ये अखण्डता, एकता और राष्ट्रीयता के प्रतीक होते हैं–

१. राष्ट्रध्वज २. राष्ट्रगान ३. राष्ट्रभाषा।

इनमें से दो तो प्रतिष्ठित हैं, पर राष्ट्रभाषा की समस्या अद्यावधि उलझी हुई है। यद्यपि इसको भारतीय संविधान के अनुच्देद ३४३–३५१ में राष्ट्रभाषा का पूर्ण पद प्राप्त है, परन्तु व्यवहार रूप में वैसा नहीं हो सका है। राष्ट्रभाषा को ही, राजभाषा तथा सम्पर्क भाषा भी होना चाहिए, परन्तु व्यवहार रूप में अंग्रेजी ही आज राजभाषा तथा सम्पर्क भाषा बनी हुई है–यह देश के लिए दुर्भाग्य की बात है। यह भारतीय भाषा समुदाय की भाषा नहीं है। इसमें विलायती और दासता की बू भी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त हिन्दी खड़ी बोली को राष्ट्रभाषा और राजभाषा का पद मिला। भारतीय संविधान के चरितार्थ होने की तिथि २६ जनवरी १९५० ई. से १५ वर्ष तक के लिए अंग्रेजी को राजभाषा पद पर रहने के लिए सुझाव दिया गया। परन्तु आज तक वही राजभाषा है। जहाँ हिन्दी में काम होता है–वहाँ भी यह रहती है। यह राष्ट्रीयता, अखण्डता और एकता के लिए दुःख की बात है। कोई भी देश तब तक पूर्ण स्वतन्त्र नहीं हो सकता है जब तक कि वह दूसरी भाषा में अपना कामकाज चलाता हो। आज देश के सारे महत्त्वपूर्ण कार्य वित्त, न्याय और राजस्व के भी कार्य अंग्रेजी में होते हैं–जिसको जानने वाले मात्र दो प्रतिशत हैं। विचार करने की बात है कि देश की जनता को किस तरह से गुमराह किया जा रहा है। अंग्रेजी के माध्यम से आज भी देश में अंग्रेजियत का आधिपत्य है। इसी से अंग्रेजी की शिक्षा–दीक्षा का भी महत्त्व है। देश में अंग्रेजी विद्यालयों की संख्या अंग्रेजीकाल से बहुत अधिक बढ़ रही है। राष्ट्रीयता की दृष्टि से अंग्रेजी माध्यम से पठन–पाठन इसका सभ्य विरोध है। इससे बड़ी दुर्भाग्य की बात और क्या हो सकती है कि अहिन्दी भाषी अंग्रेजी के बराबर भी इसको महत्त्व नहीं दे रहे हैं। जितना समय देश को अंग्रेजी सीखने में लग रहा है–उससे बहुत कम समय में ही हिन्दी को समझ लिया जा सकता है। अब तक यह पूरे देश की भाषा हो गयी होती। फिर आज लोग अपनी–अपनी ढपली और अपना–अपना राग न अलापते। एक राग और तान में पूरा देश झूमता।

आज देश की आन्तरिक स्थिति बेलाग, डांवाडोल है। राष्ट्रीयता और मानवता की यह दुर्दशा सदैव गर्हित कही जायेगी। इसी क्रम में राष्ट्रभाषा की समस्या प्रबल है। पहले इस तरह की कोई समस्या नहीं थी। पूरा देश हिन्दी माध्यम से स्वतन्त्रता संग्राम में भाग ले चुका है। आज भी दक्षिणी भारत तथा अन्य अहिन्दी भाषी प्रान्तों के नेता हिन्दी जानते हैं, पर राष्ट्रभाषा के नाम पर इसका विरोध करते हैं–यह संकुचित और अराष्ट्रीय कर्म है। प्रजातन्त्र में राष्ट्रीयता सबसे बड़ी चीज होती है–उसके लिए निजत्व का पूर्ण विलयन ही शोभनीय होता है। हिन्दी के अनेक विद्वान् तथा राष्ट्रीय नेता अहिन्दी भाषी प्रान्त के हुए हैं–बंगाल और महाराष्ट्र के विशेष रूप से। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गुजरात घूमते हुए हिन्दी में ही भाषण दिये थे। उन्होंने कबीर के १०० पदों का अनुवाद भी किया है। आचार्य क्षितिमोहन सेन का कबीर ज्ञान सराहनीय है। डा.सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की भाषा–सेवा अविस्मरणीय है। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने बंगवासियों से हिन्दी सीखने के लिए निवेदन किया था। स्वयं हिन्दी के भीतर बंगला के अनेक प्रभाव स्पष्ट हैं। इसी तरह मराठी की बात भी है। छत्रपति शिवाजी से लेकर १८५६ ई. के स्वतन्त्रता संग्राम तक के महाराष्ट्र के योद्धा अच्छी हिन्दी जानते थे। हिन्दी और मराठी का बड़ा सगा सम्बन्ध है। इसके अनेक सन्तों, विचारकों तथा कवियों और लेखकों का हिन्दी के विकास में बड़ा योगदान

रहा है। इस सन्दर्भ में आचार्य, विनय मोहन शर्मा की पुस्तक "हिन्दी को 'मराठी सन्तों' की देन" द्रष्टव्य है। मराठी की वर्णनात्मकता का प्रभाव हिन्दी के महावीर प्रसाद द्विवेदी काल तक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसी प्रकार गुजराती भाषी गाँधी ने अफ्रिका में हिन्दी की प्रतिष्ठा की तथा स्वंतन्त्रता संग्राम संचालन की भाषा हिन्दी को ही बनाया। दूसरे गुजराती भाषी स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी का अलख पूरे देश में जगाया। १८६५ ई. में उन्होंने हिन्दी खड़ी बोली को इस देश की राष्ट्रभाषा बनाने के लिए कहा था। अंग्रेजों की कूटनीति के पूर्व मुसलमानों ने भी इसका सम्मान किया है। शेरशाह शूरी के समय तक शाही सिक्कों पर श्री हम्मीर, श्री अमीर आदि का उल्लेख मिलता है। अनेक मुसलमान सन्त होकर हिन्दी को अपार सम्पदा भेंट कर गए हैं। अनेक भक्त और वैष्णव होकर इसमें रचना कर गए हैं–जैसे–रसखान। रसखान की चर्चा २५२ वैष्णवों की वार्त्ता में भी है। ऐसे ही मुसलमानों के लिए भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने कहा है कि "इन मुसलमान हरिजननपै कोटिन हिन्दू वारिये।" इसकी महत्ता को देखकर बादशाह अकबर तक ब्रजभाषा में रचना करता था। रहीम दोहा रचते थे। अकबर अष्टछापियों का सम्मान करता तथा ब्रज में निवास करता था। अनेक संस्कृत ग्रंथों का उसने हिन्दी में अनुवाद कराया था। जहाँगीर का हिन्दी कविता प्रेम सराहनीय है। कहने का आशय यह कि जिस मुसलमान वर्ग को आज भाषा के नाम पर गुमराह किया जा रहा है और उर्दू के लिए उसे आवाज उठाने के लिए समय–समय पर भड़काया जा रहा है–उसके पूर्वजों को हिन्दी से कोई विरोध नहीं रहा है। न उर्दू भाषा कोई अलग भाषा हैं–वह तो हिन्दी की ही एक शैली है–जो नास्तालीक लिपि में लिखी जाती है। अंग्रेजों की कुटिल नीति ने इसको अलग किया। यह केवल लिपि पर जिन्दा है। कचहरियों में इसका महत्त्व इसलिए बढ़ गया था कि जिस फारसी ने इस देश पर ६०० वर्षो तक राजभाषा पद से राज्य किया था, उसी लिपि में यह भी लिखी जाती है। देश के बंटवारे में इसका बहुत बड़ा योगदान रहा है। आज इसको जातीय तथा साम्प्रदायिक भाषा का रूप दिया जाता है, जबकि मुसलमानों का कोई धार्मिक ग्रन्थ इसमें नहीं है। स्वयं सभी मुसलमान उर्दू नहीं जानते हैं। आज भी उर्दू किताबों के हिन्दी अनुवाद अधिक बिकते हैं। जब ख्वाजा हसन निज़ामी ने कुर्आन का हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि में अनुवाद किया तो हिन्दुओं से अधिक मुसलमान प्रसन्न हुए थे। यही नहीं अन्य अहिन्दी ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद आज अधिक बिक रहे हैं। दक्षिणी भारत में हिन्दी फिल्में अधिक चल रही हैं।

एकता और अखण्डता हमारे देश की पारम्परिक सम्पदा है। "भारत के किसी भी कोने में जाकर देखो, उसके संकल्प को सुनो, उसके अभिषेक को देखो, उसकी धाम यात्रा के विवरण को पढ़ो और फिर कहो तो सही भारत की एकता कितनी पुरानी और उसकी भारती कितनी सजीव है, "यही संगच्द्धध्वं संवदध्वं" का पाठ गूँजता रहा है। अशोक, समुद्रगुप्त, महावीर, बुद्ध, शंकर और गोरक्षनाथ से बड़ा कौन इसका पुजारी हो सकता है? एकता अखण्डता के निमित्त इस देश में समय–समय पर आन्दोलन चलते रहे हैं। ऋषियों ने इसको संस्कृत भाषा से चलाया, जैनियों ने प्राकृत से, बौद्धों ने पालि से, और चारणों ने अपभ्रंश या प्राचीन हिन्दी से और नाथों तथा सन्तों ने हिन्दी से। आज भी यह काम हिन्दी से ही हो सकता है। वक्ताओं की दृष्टि से संसार में प्रथम स्थान अंग्रेजी, द्वितीय पर चीनी तथा तृतीय पर हिन्दी ही है। स्वयं भारत में इसके वक्ता सर्वाधिक हैं। यहाँ मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि हिन्दी से आशय मात्र खड़ी बोली से नहीं है, परन्तु लगभग उन १६ बोलियों से हैं–जिसको भाषाविदों ने इस प्रकार से वर्गीकृत किया है–

१. पूर्वी हिन्दी अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी
२. पश्चिमी हिन्दी ब्रज बाँगरू या जाटू खड़ी बोली, कनौजी, बुन्देली।
३. राजस्थानी मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी (पश्चिमी हिन्दी से सम्बद्ध)
४. बिहारी भोजपुरी, मगही, मैथिली (पूर्वी हिन्दी से सम्बद्ध)
५. पहाड़ी – नेपाली, कुमाऊँनी, गढ़वाली, जौनसारी आदि

वक्ताओं की दृष्टि से देशीय भाषानुपात में यह इस प्रकार है।

(१) हिन्दी १४ करोड़ (२) बंगला ५ करोड़, (३) तेलुगू सवा दो करोड़, (४) मराठी ३ करोड़, (५) कन्नड़ २ करोड़, (६) तमिल २ करोड़ (६) उड़िया एक करोड़ (७) गुजराती २ करोड़,। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा बिहार प्रान्तों की भाषा हिन्दी है। इस दृष्टि से भी यह सबसे अधिक लोगों से जुड़ती है।

हिन्दी का मूल स्वरूप ही एकता और अखण्डता का पक्षधर है। हमें इसका प्राथमिक स्वरूप सिद्धों की रचनाओं के माध्यम से प्राप्त होता है। सिद्धों ने अखण्ड भारत के अन्तिम शासक हर्ष के बाद (७ वीं शताब्दी) की संक्रमण की स्थिति में भी तिब्बत से लंका तक, नेपाल से अफगानिस्तान तक अपनी हठ यौगिक साधना और अलख निरंजन की चिन्तन धारा को प्रवाहित किया है रहे। ये सिद्धों और फिर नाथों ने भी जन–भाषा में देश के निजत्व के लिए अविस्मरणीय कार्य किये हैं। इनकी संध्याभाषा, सहजभाषा, पंचमेल खिचड़ी, मिश्रित भाषा, सधुक्कड़ी भाषा ने एकता तथा हिन्दी के विकास के लिए सराहनीय कार्य किया । इन लोगों की मिली–जुली भाषा ने सर्वाधिक लोगों को एकता में बाँधा । कालान्तर में यही कार्य भक्तों ने किया। इसी से हिन्दी का भक्तिकाल (सन्त+भक्त) हिन्दी का स्वर्णकाल हो सका। जिस तरह सारे भेदभावों को छोड़कर सन्तों और भक्तों ने ईश्वर की आराधना की उसी तरह आज हमें सारे भेदभावों को छोड़कर राष्ट्रीयता और राष्ट्रभाषा को प्रतिष्ठित करना चाहिए। सन्तों और भक्तों ने यही किया था–जिसके परिणाम में कश्मीर के लल्लेश्वरी, पंजाब के भनक, उत्तर प्रदेश के कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, रहीम, रसखान, आलम, बिहार के विद्यापति, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु, असम के शंकरदेव, माधवदेव, उड़ीसा के सारलादास, बलरामदास, राजस्थान के रैदास, रज्जव, मीरा, गुजरात के नरसी, महाराष्ट्र के एकनाथ, रामदास, कर्नाटक के पम्प, एरन, तमिलनाडु के कम्बर या कम्बन, केरल के एड्डुर ये सब सन्त भक्त और कवि थे। इससे बड़ी एकता और कहाँ मिलेगी। रामानन्द और कबीर, रैदास और मीरा, अकबर और बीरबल, तुलसी और रहीम, विट्ठल और रसखान का सम्बन्ध आज के लिए आदर्श है।

भारतेन्दु काल में भक्ति की तीन धाराएँ प्रवाहित हुईं– (१) कृष्ण भक्ति, (२) राजभक्ति एवं (३) राष्ट्रभक्ति । इसमें से राष्ट्रीयता की धारा प्रबल रूप से इसी समय प्रवहमान हुई।

ऊपर के उल्लेखों से यह स्पष्ट हुआ कि राष्ट्रभाषा हिन्दी ही राष्ट्रीय एकता की सुरक्षा कर सकती है। आज देश ही नहीं विदेशों में भी इसकी प्रतिष्ठा बढ़ रही है। इसमें राष्ट्रसंघ में लोग बोल चुके हैं। यह बात दूसरी है कि राष्ट्र भाषा हिन्दी को और अधिक सम्पन्न होने की आवश्यकता है–जिससे यह राजभाषा का कार्य सरलता से कर सके। इस पर प्रान्तीयता का प्रभाव नहीं रहना चाहिए। वह प्रान्त नहीं राष्ट्र का प्रतीक है। सभी भाषाओं से कुछ न कुछ गुण लेना चाहिये। साथ ही वहाँ की संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, धर्म, संस्कार, परम्परा आदि को समाविष्ट करना चाहिए। राष्ट्रभाषा का स्वरूप संगममय होना चाहिए तभी तिरंगे के नीचे एक स्वर से राष्ट्रगान को गा सकेंगे । विश्व की सारी विकसित भाषाओं ने इसी प्रकार का संग्रह किया है। मुहावरा, कहावत, लोकोक्ति तथा शासन के शब्द भी लेने चाहिए। इसके साथ ही अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं से भी बहुत कुछ लेना चाहिए। राष्ट्रभाषा के साथ–साथ इसको विश्व में भी प्रतिष्ठित करना है–इस क्रम में हम बहुत कुछ सफल भी हैं। आज ३० देशों तथा शताधिक विश्वविद्यालयों में यह पढ़ाई जाती है। इनमें २३ मात्र अमेरिका में हैं। इनके अतिरिक्त अनेक विदेशी संस्थानों में यह प्रतिष्ठित है। यूनेस्को की यह भाषा बन चुकी है। मारीसश की भाषा भोजपुरी के बहुत निकट है। वहाँ ५०० से अधिक हिन्दी विद्यालय चल रहे हैं। अतः हिन्दी के माध्यम से राष्ट्रीयता और एकता की रक्षा की जा सकती है। यह राष्ट्रीय स्पन्दन है। उदारता के साथ इसका विकास होना चाहिए।

–उपाचार्य, हिन्दी-विभाग, रणवीर रणन्जय स्नातकोत्तर महाविद्यालय-अमेठी, सुल्तानपुर

१. पं. चन्द्रावली पाण्डेय : राष्ट्रभाषा पर विचार पृष्ठ १

हर सिंगार

बीसवीं सदी की उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ राष्ट्रभाषा हिन्दी के संदर्भ में

✍ प्रो. महेन्द्र रायजादा

भारतवर्ष के लिये बीसवीं सदी की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि १५ अगस्त, १६४७ को उसे स्वाधीनता प्राप्त हुई। एक दीर्घकालीन संघर्ष के बाद यह आजादी भारतवासियों को मिली। देश के हजारों लाखों देशभक्त सपूतों ने आजादी के संघर्ष में अपने प्राणों की आहुतियाँ दी हैं। दूसरी बड़ी उपलब्धि है–राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगीत तथा राष्ट्रभाषा का सर्वसम्मत निर्णय लिया जाना।

१४ सितम्बर, १६४६ को हिन्दी को राजभाषा/ राष्ट्रभाषा के रूप में संविधान सभा द्वारा स्वीकारा गया। संविधान के अनुच्छेद ३४३ के अनुसार हिन्दी को तथा देवनागरी लिपि को देश की राजभाषा के रूप में स्वीकृति प्रदान की गई, किन्तु इस अनुच्छेद में इतने किन्तु, परन्तु लगा दिये गये कि आज भी हिन्दी को सम्पूर्ण देश में राष्ट्रभाषा के रूप में व्यवहार में लाया नहीं जा रहा है और भ्रांतियाँ उत्पन्न की जा रही हैं।

यह सर्वविदित है कि सर्वप्रथम अहिन्दी भाषा–भाषी चिंतकों एवं महापुरुषों ने हिन्दी भाषा को देश की राष्ट्रभाषा बनाने की बात की थी। बंगाल के केशवचन्द सेन, राजाराममोहन राय तथा नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि ने हिन्दी को भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा बनाने का सुझाव दिया था। नेताजी की आजाद हिन्द फौज की भाषा का माध्यम हिन्दी था। महात्मा गांधी, स्वामी दयानन्द सरस्वती गुजराती भाषाभाषी थे, किन्तु उन्होंने सारे देश में हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिये महान् योगदान दिया। गांधीजी ने १६१८ में मद्रास (अब चेन्नई) में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना की थी। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रंथ 'सत्यार्थ–प्रकाश' आदि हिन्दी में लिखे और सम्पूर्ण भारत में हिन्दी भाषा में आर्य समाज का प्रचार–प्रसार किया। महाराष्ट्र के बालगंगाधर तिलक तथा विनोबा भावे आदि देशभक्त मनीषियों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकारा और इस सम्बन्ध में लेख भी लिखे। दक्षिण भारत के श्री राजगोपालाचारी और तमिल के राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्यम् भारती ने हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा (हिन्दी) के रूप में स्वीकारा था।

दक्षिण भारत में आज तमिलनाडु को छोड़कर कहीं भी हिन्दी का विरोध नहीं है। यद्यपि तमिलनाडु में हिन्दी राष्ट्रभाषा का प्रचार तो हो रहा है, किंतु वहाँ राजनैतिक कारणों से हिन्दी का विरोध किया जाता है। आन्ध्र प्रदेश और केरल के गाँवों तक हिन्दी भाषा पहुँच गई है। कर्नाटक प्रदेश में हिन्दी की स्थिति संतोषप्रद है। देश को एकता के सूत्र में बाँधने में हिन्दी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वाधीनता संघर्ष में हिन्दी भाषा का योगदान सर्वोपरि रहा है। हिन्दी हमारे राष्ट्र के स्वाभिमान एवं अस्मिता की प्रतीक है और उसकी उपलब्धियाँ अनन्त हैं।

हम इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश कर चुके हैं, किन्तु आजादी के पचपन वर्ष बाद भी अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी को हम उसका वह स्थान नहीं दे पाये हैं, जिसकी वह अधिकारिणी है। आज भी अनेक चुनौतियाँ राष्ट्रभाषा हिन्दी के सामने हैं। हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती है–अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजियत की। भारतवर्ष के नगरों और कस्बों की गली–गली में अंग्रेजी माध्यम के कान्वेंट स्कूलों का जाल बिछाया जा रहा है। देश के बच्चे, किशोर और किशोरियाँ इन स्कूलों में पढ़कर अपनी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा से दूर होते जा रहे हैं। इन विद्यालयों में उन्हें अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजियत का पाठ पढ़ाया जाता है। आज हिन्दी और अहिन्दी प्रदेशों में अन्य भारतीय भाषाभाषी विद्यालयों में अध्ययन करने वाले छात्र–छात्राओं को

हेय दृष्टि से देखा जाता है और उन्हें तथा उनके स्वाभिमान को ठेस पहुंचाई जाती है।

हमारे देश की सर्वोच्च राजनैतिक संस्थाओं संसद तथा विधान सभाओं में आज अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व रहता है। जो सांसद हिन्दी राष्ट्रभाषा में कुशलतापूर्वक अपने विचार प्रकट कर सकते हैं, वे अधिकतर अंग्रेजी भाषा में बोलते हैं। कभी–कभी तो ऐसा लगता है कि हमारी संसद इंग्लैण्ड की पार्लियामैंट है, जहां अंग्रेजी भाषा में ही विचार विनिमय होता है। विधान सभाओं में भी बहुधा ऐसे दृष्य देखने को मिल जाते हैं। स्वाधीन देशों के नागरिकों में स्वभाषा के प्रति जो प्रेम और स्वाभिमान पाया जाता है उसका हमारे देशवासियों में अभाव दृष्टिगोचर होता है। अंग्रेजी में बोलना बड़प्पन की निशानी नहीं है और न इसमें कोई शान है, अपितु यह हीनभावना की परिचायक है। जिस प्रकार राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगीत हमारे स्वाभिमान के द्योतक हैं उसी प्रकार हमारी राष्ट्रभाषा भी राष्ट्र के सम्मान की द्योतक है। आजादी के पचपन वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी अंग्रेजी की मानसिक दासता से हम मुक्त नही हो पाये हैं, यह लज्जा और खेद का विषय है।

वर्तमान समय में वैश्वीकरण, आयातित संस्कृति और इन्टरनेट आदि तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भी हमारी राष्ट्रभाषा के लिये चुनौतियाँ हैं क्योंकि उनमें धड़ल्ले से अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता है और राष्ट्रभाषा की उपेक्षा की जाती है।

एक चिन्तनीय स्थिति यह भी है कि वर्तमान केन्द्रीय सरकार तथा प्रशासन अपनी राजनैतिक विषमताओं के कारण राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को उनका सही स्थान दिलाने में असमर्थ एवं उदासीन बनी हुई है आज समाज में मूल्यहीनता, अपसंस्कृति, चारित्रिक पतन और भोगवादी दृष्टि विद्यमान है। इसका कारण अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजियत के प्रति हमारे देशवासियों का बढ़ता हुआ मोह है। अंग्रेजी भाषा के व्यामोह से जब तक हमारे देशवासी पूरी तरह मुक्त नहीं होंगे तब तक अपनी राष्ट्रभाषा के प्रति सच्चा स्वाभिमान जागृत नहीं होगा। विश्व के अनेक छोटे–छोटे देशों के स्वतंत्र होते ही उन्होंने तत्काल स्वभाषा को अपनी राष्ट्रभाषा बनाया है। इजराइल देश उसका एक उदाहरण है। आज पूरी इच्छा शक्ति से राजभाषा हिन्दी को अपनाये जाने की आवश्यकता है।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने कहा था, 'राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रश्न सांस्कृतिक ही नहीं, संवैधानिक भी है। एक बार मंदिर में प्राण प्रतिष्ठा कर देने के पश्चात् मूर्ति को खण्डित कर देना समस्त राष्ट्र की आस्था को खण्डित कर देना है । वास्तव में किसी भी आस्थावान के लिये आस्था का खण्डित होना पीड़ादायक होता है। आज वही पीड़ा हमारे अन्तर–मन को कचौटती है। आज से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व १८७७ में भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने कहा थाः–

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।

आज हिन्दी राष्ट्रभाषा का प्रचार–प्रसार विश्व के अनेक देशों में तेजी से हो रहा है और हिन्दी का अध्ययन–अध्यापन निरंतर बढ़ रहा है। हिन्दी एक दिन अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का गौरव प्राप्त करेगी। हिन्दी ने हमारी संस्कृति को आत्मसात किया है, इस भाषा में देश की अस्मिता विद्यमान है। आज विदेशों में हिन्दी की बढ़ती लोकप्रियता एक उपलब्धि है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम वर्तमान चुनौतियों को स्वीकारते हुए उनके निराकरण के लिये प्रयत्नशील हों। इस बात की भी महती आवश्यकता है कि हम अंग्रेजी की मानसिक दासता को त्यागकर राष्ट्रभाषा हिन्दी को पूर्णतः अपनायें। अपने दैनिक कार्यो तथा नित्य के व्यवहार, बोलचाल में तथा पत्र–व्यवहार में अपनी मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा का ही प्रयोग करें। जब तक देशवासियों के अन्तर में निज भाषा के प्रति सच्चा लगाव एवं सम्मान का भाव नहीं होगा, तब तक हमारा देश सम्पन्न एवं गौरवशाली होते हुए भी भाषा की दृष्टि से दरिद्र ही कहलायेगा।

५-ख-२०,जवाहरनगर,
जयपुर (राजस्थान)

इक्कीसवीं सदी में हिन्दी और दक्षिण भारत

राज केसरवानी

सम्पूर्ण विश्व भारतीय प्रतिभा और भारतीय मनीषा से परिचित और प्रभावित है।

जीवन का कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, देश की प्रतिभाओं ने समूची दुनिया को चमत्कृत किया है। इस दुनिया के तमाम देशों की राजनीति और कूटनीति कुछ भी क्यों न चल रही हो, भारतीय प्रतिभाएँ अपना जौहर दिखा रही हैं।

भारत का गौरवशाली इतिहास, प्राचीन संस्कृति, धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, संगीत, आयुर्वेद, ज्योतिष, चिकित्सा आदि अनेक क्षेत्रों में हमारी सनातन चिन्तनधारा और अटूट परम्पराएँ है, विश्वस्तरीय विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं। यह हमारा सशक्त आधार है।

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि आज जिस अमेरिका को दुनिया का सिरमौर समझा जाता है, उसी अमेरिका में ३२.२ लाख भारतीय हैं। वहाँ ३८ प्रतिशत चिकित्सक भारतीय हैं और वहीं १२ प्रतिशत वैज्ञानिक भारतीय हैं। ३६ प्रतिशत नासा कर्मचारी भारतीय है, ३४ प्रतिशत माइक्रोसॉफ्ट कर्मचारी भारतीय हैं। १७ प्रतिशत इन्टेल कर्मचारी भारतीय हैं और १३ प्रतिशत जेरॉक्स कर्मचारी भी भारतीय हैं। अमेरिका और जापान को छोड़कर, देशी सुपर कम्प्यूटर बनाने वाला, भारत ही एकमात्र देश है। अपना अन्तरिक्ष कार्यक्रम और उपगृहों को रखने वाला भारत, दुनिया के कुछ प्रमुख देशों में एक है, पेंटियम चिप का आविष्कार भी एक भारतीय ने ही किया है। भारत में दुनिया के वैज्ञानिकों और इंजीनियरों का दूसरा विशालतम समूह है।

हमें यह भी बराबर स्मरण रखना चाहिए कि हमने बगैर हिंसा के आजादी पाई है। अपने विगत हजारों वर्षो के इतिहास में, भारत ने कभी किसी भी देश पर आक्रमण नहीं किया और, भारत, विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है।

हम सभी इस तथ्य से भलीभाँति अवगत हैं कि हमारे देश में हिन्दी भाषा जानने वालों की संख्या सर्वाधिक है। मंगलूर (कर्नाटक) के डा. जयंतीप्रसाद नौटियाल ने अपने शोध के आधार पर यह बतलाया है कि भारत में ६३.३१ प्रतिशत हिन्दी जानने वाले हैं। उनका तो यहाँ तक कहना है कि विश्व में चीनी भाषा जानने वाले मात्र ०.१२ प्रतिशत है, तथा हिन्दी भाषा जानने वाले सर्वाधिक अर्थात् १८.६ प्रतिशत है। डा. नौटियाल के शोध निष्कर्ष के अनुसार हिन्दी, विश्व में प्रथम स्थान पर है।

हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा है, राजभाषा है, यह हमारे देश की जनभाषा है, चतुर्दिक और व्यापक एक सम्पर्क भाषा है, फिर भी इसके व्यापक प्रसार के निमित्त, सरकारी प्रयासों के साथ–साथ देश की असंख्य स्वयंसेवी संस्थाएँ प्रयत्नशील हैं। कोई भी भाषा अपने प्रसार के लिए किसी सरकारी या गैर सरकारी संस्थाओं की मोहताज नहीं होती। भाषाओं के विकास में जनता की एक अहम् भूमिका होती है, जो व्रह बड़े ही असरकारी ढंग से निर्वाह करती है और भाषा तो एक नदी की तरह होती है, जो सतत और निरन्तर प्रवाहमान होती है।

हमारे देश की सभी भाषाएँ महत्त्वपूर्ण हैं, सभी का अपना इतिहास है, सभी का अपना साहित्य है जिनमें जनमानस का सुख–दुःख है, लोक संस्कृति की छटाएँ हैं, आचार–विचार, लोक व्यवहार है, जनभावनाएँ मुखरित हैं।

हमारे इस विशाल भारत में किसी भी भाषा का किसी भी अन्य भाषा से कोई विवाद नहीं है। हमारे समाज में हर स्तर पर भाषायी सद्भाव मौजूद है और हम हर समय मिल-जुलकर रहने और परस्पर सहयोग करने के आदी हैं।

अपनी भाषा से हर किसी को प्यार होता है, होना भी चाहिए। हर किसी को अपनी भाषा प्रिय होती है, हमें अपनी भाषा पर गर्व होना चाहिए, जिस तरह हमें एक भारतीय होने पर गर्व होना चाहिए, उसी तरह हमें अपनी भारतीय भाषाओं पर भी गर्व होना चाहिए। क्योंकि ये सभी हमारी अपनी भाषाएँ हैं, इन सभी में अपनापन है। इन सभी से हमारा एक गहरा नाता है, इन सभी में हमारी जीवनदायिनी परंपराएँ और हमारा सम्पूर्ण जीवन दर्शन ही विद्यमान है।

इन सभी महत्त्वपूर्ण तथ्यों के रहते, हमें अपने कैरियर के लिए, अपनी उच्च शिक्षा के लिये, अपने व्यापार –कारोबार के लिए, एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना–आना होता है, हमें अपने क्षेत्र को छोड़कर दूसरे क्षेत्र में बसना होता है, हमें जगह–जगह विचरण करना होता है, हमें एक जगह बैठे–बैठे, देश के अनेक क्षेत्रों के अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क करना होता है, संदेशों का आदान–प्रदान करना होता है, अपनी भाषा से इतर अन्य भाषा–भाषियों से बातचीत करनी होती हैं, विचार–विमर्श करना होता है, जानकारी लेनी–देनी होती है, पत्राचार भी करना होता है, तब हमें एक सम्पर्क भाषा की महती आवश्यकता होती है और हम सभी भलीभांति जानते हैं कि एक सशक्त सम्पर्क भाषा का दायित्व हिन्दी बखूबी निभा रही है।

दक्षिण भारत के असंख्य लोग, उत्तर भारत में हैं, उच्च अध्ययन के लिए, नौकरी के कारण या अपने रोजगार– धंधे की वजह से, इसी तरह उत्तर भारत के लोग दक्षिण भारत में काफी संख्या में मौजूद हैं। यह हमारे स्वभाव में है, हम जहाँ जाते हैं, वहाँ का रहन–सहन, आचार–विचार, खान–पान अपना लेते हैं और फिर भाषा का तो एकमात्र लक्ष्य और कार्य जोड़ने का ही है।

सम्पूर्ण देश में हिन्दी के प्रसार के लिए हो रहे प्रयासों की कड़ी में, दक्षिण भारत में प्रारम्भ से ही न केवल प्रयत्न किए गए हैं, अपितु विगत २२–२५ वर्षो में अनेक ठोस कार्य किए गए हैं। तमाम कोशिशों के साथ–साथ, अनेक सक्रिय और महत्त्वपूर्ण स्वयंसेवी संस्थाओं ने बहुत कार्य किया है, बहुत कार्य किया जा रहा है। निरन्तरता के इस क्रम में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा टी.नगर, चैन्नई, दक्षिण भारत हिन्दी प्रतिष्ठान, गाँधी भवन, हैदराबाद, भाषा संगम–तमिल–हिन्दी तुलनात्मक अध्ययन केन्द्र टी. नगर चैन्नै, सूर स्मारक मंडल शाखा, तमिलनाडु, टी. नगर चैन्नै, कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा धारवाड़, कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति चामराजपेठ बैंगलूर, मैसूर हिन्दी प्रचार सभा तिरूवनंतपुरम, केरल हिन्दी परिषद, कालिकट और आंध्रप्रदेश हिन्दी प्रचार सभा, कारवां, हैदराबाद आदि अनेक प्रमुख स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्य उल्लेखनीय है।

हमें पूरी उम्मीद है कि हिन्दी के लिए चल रहे तमाम सरकारी, गैरसरकारी और असरकारी स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रयासों से, परस्पर एक जुट प्रयत्नों से, प्रेम, सहयोग और सद्भाव से निश्चित ही इक्कीसवीं सदी हिन्दी की होगी, लेकिन इस सम्पूर्ण अभियान में दक्षिण भारत का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अमूल्य योगदान होगा।

महासचिव
राष्ट्रीय हिन्दी सेवी महासंघ, इन्दौर

हर सिंगार

अक्षराणामकारोऽस्मि

✍ आचार्य डा. सुरेश पाण्डेय

भगवान् श्रीकृष्ण जिस शास्त्र के स्वयं प्रवक्ता हों, जिसका ग्रंथ प्रणयन कृष्णद्वैपायन भगवान् वेदव्यासजी ने किया हो, और जिसको लिपिबद्ध विघ्नेश्वर भगवान श्रीगणेश ने किया हो, उस जैसा एकमात्र श्रीमद्भगवद्गीता शास्त्र ही हो सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता अपौरुषेय समरस्त श्रुतियों का सार है। कहा गया है–

"एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेको देवो देवकीपुत्र एव। एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा। "

श्रीमद्भगवद्गीता के सम्यकरूपेण अवलम्बन से, अन्य किसी अवलम्बन की अध्यात्म पथ पर आवश्यकता नहीं रह जाती। वेद तथा गीता भगवान की वाणी है, अतः प्रमाण हैं। भगवान श्रीकृष्ण गीता में स्वयं कहते हैं, "अक्षराणाम्कारोऽस्मि द्वंद्वः सामासिकस्य च"। (श्रीमद्भगवद्गीता अ.१० श्लोक ३३) अर्थात् अक्षरों में अकार और समूहों में द्वन्द्व समास मैं हूँ"।

जो कभी नष्ट नहीं हो और सभी वर्णो में व्याप्त हो, उसे "अक्षर" कहते हैं। **यह लक्षण देवनागरी लिपि में लिखी गयी वर्णमाला में ही घटता है, अन्य भाषाओं की वर्णमाला तो देखते-देखते विकृत हो जाती है, जिनके वर्ण न तो अविनाशी हैं और न व्यापक** । देवनागरी वर्णमाला के वर्ण उक्त लक्षणों से युक्त हैं। इनमें अकार सभी स्वरों एवं व्यंजनों में व्याप्त होने के कारण श्रेष्ठ माना गया है। अकार की सहायता लिये बिना किसी भी वर्ण का उच्चारण और लेखन सम्भव नहीं है। इसीलिये भगवान श्रीकृष्ण ने उसे अपनी दिव्य विभूतियों में गिना है। अव्ययीभाव समास का पूर्व पदार्थ प्रधान होता है, तत्पुरुष समास में उत्तरपदार्थ प्रधान होता है और बहुब्रीहि समास में अन्यपदार्थ प्रधान होता है, किन्तु द्वन्द्व समास में समस्यमान समस्त पदों के अर्थ प्रधान ही रहते हैं अर्थात् समास के लिये विग्रह किये गये वाक्य में जितने पद होते हैं, उन सभी पदों के अर्थ समास के बाद भी ज्यों के त्यों बने रहते हैं। इसीलिये भगवान श्रीकृष्ण ने द्वन्द्व समास को अपनी दिव्य विभूतियों में गिनाया है।

मंत्रों की संघटना, वर्णो के द्वारा ही सम्पन्न होती है। प्रयोगक्रमदीपिका तंत्र की प्रपंचसारतंत्रटीका के तृतीय पटल में कहा गया है–"सर्वेऽपि वर्णाः केवलाः संयुक्ताः समुदिता अपि सर्वार्थसाधका मंत्रा एवेति"। अर्थात् वर्ण पृथक् रूप से, वर्णमाला अपने समुदित रूप में, मंत्रस्वरूप ही हैं।

मनुष्य की आकृति अथवा शरीर नामक संस्था में जन्म से ही वर्णों की सूक्ष्म संस्थिति रहती है। इन वर्णो–आहत ध्वनियों के समाहारक नाद अथवा प्रणव का सतत घोष भी वहीं होता रहता है। ये समस्त वर्ण उसी एकाक्षर रवि रूप अव्याकृत वाक् से क्षरित होते हैं। यह अव्याकृत वाक् पराची अपर प्रणव रूप है। यह गतिशील जीवन स्पन्दन है।

प्रत्येक वर्ण का अपना रंग, रूप, आयुध, वाहन, शक्ति, ऋषि, छन्द आदि होते हैं। वर्णो की आकृति का विस्तार सहस्रों–करोड़ों योजनों की सीमा में पाया जाता है। यह विस्तार अतिरंजित तथा काल्पनिक नहीं है। वर्ण के अन्तराल में अवस्थित पुरुष अथवा देवता, उसका पिण्ड अथवा मूर्त्ति तथा मण्डल सम्बन्धी विस्तृत सीमा का योजनों में आकलन विज्ञान सम्मत है। ऐसे शक्तिशाली देवनागरी वर्ण भट्टारकों तथा उनसे संघटित हिन्दी के ऐश्वर्य के प्रति अनास्था अज्ञानमूलक है।

ब्रह्म के दो रूप हैं– एक शब्द ब्रह्म तथा दूसरा अर्थ ब्रह्म। अपनी चरम अवस्था में ये एक अखण्डरूप में वर्तमान रहते है। शक्ति और शक्तिमान के सदृश इनमें अविनाभाव सम्बन्ध है। शब्दब्रह्म को अपरप्रणव और अर्थब्रह्म को परप्रणव कहा जाता है।

बामकेश्वर तंत्रान्तर्गत "योगिनीहृदय" में कहा गया है–

"शून्याकाराद्विसर्गान्ताद्बिन्दुप्रस्पन्दसंविदः। प्रकाशपरमार्थत्वात् स्फुरत्तालहरीयुता त प्रसृतं विश्वलहरी स्थानं मातृत्रयात्मकम्"–अर्थात् शून्याकार–शून्यमात्रस्वरूप विसर्गान्त अथवा षोडशस्वरान्त्य से बिन्दुविशेष की उत्पत्ति होती है। विसर्ग अव्यक्त हकार के सदृश है, अतः उसमें अकार भी सन्निविष्ट है। यहाँ शून्याकार शब्द से अकार और हकार ही निर्दिष्ट हुए हैं। निराकार न कह कर अकार की एक बिन्दुरूपता और विसर्ग रूप हकार का दो बिन्दुमय स्वरूप ध्वनित होता है।

स्वयं भू ब्रह्मा ने परतत्व से जिज्ञासा की–"हम समस्त देवगण नित्य हैं अथवा अनित्य, हमारा स्वरूप क्या है ? हम लोगों का उपादान क्या है ? किस व्यापार के लिए हम उत्पन्न हुए हैं ?" सम्पूर्ण प्रश्नों के उत्तर में परज्योति परमेश्वर ने कहा कि तुम लोग "प्रमिताक्षर" प्रकृति, पुरुष, काल तथा हकार "इनके समुदित रूप अक्षर तत्त्व से उत्पन्न हुए हो। सृष्टि, स्थिति और अन्त ही तुम्हारा कार्य है। प्रकृति आदि से तुम्हारी उत्पत्ति एवं उन्हीं में लय होता है। "ह्रीं" अथवा प्रणवात्मक मूलवर्ण तथा उसकी स्वरात्मक विकृतियाँ, स्वर रूप विकारों की भी "क" से लेकर "क्ष" पर्यन्त विक्रियायें उन वर्णो से निष्पन्न अनेक मन्त्र तथा वैदिक और तांत्रिक नानाविध प्रयोग में "ह" इस वर्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं। "ह" यह वर्ण अकार और हकारात्मक है। प्रत्याहार की रीति से "अ" और "ह" इन आदिम और अन्त्य "अह" स्वरूप दोनों वर्णो में नाद और अकार, बुद्धि तथा प्राण, ज्ञान तथा क्रियात्मक शक्ति, प्रकाश और विमर्श, चित् और आनन्द रूप से सम्पूर्ण वर्णों का अनुगमन होने से समस्त शब्दार्थ–समष्ट्यात्मक परावाग् रूपता सिद्ध है। वस्तुतः हकार वर्णमात्र नहीं है, वह सम्पूर्ण मातृका ही है। यही वर्णान्तरों से हकार की विशेषता है और यही परावाक् भी है।

सामान्यतया वर्णों को पृथक्–पृथक् तथा वर्णमाला को समुदित रूप में मातृका के नाम से कहा जाता है। परशुरामकल्पसूत्र के दशम खण्ड के २१वें श्लोक में कहा गया है–"श्रीकण्ठादिक्षान्ताः सर्वे वर्णाः बिन्दुसहिताः मातृका सर्वज्ञातकरी विद्या"–अर्थात्, अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त बिन्दुयुक्त मातृका को सर्वज्ञताकरी विद्या कहते हैं।

मुनिवर्य सौभरि ने अपने "मातृकानाममाला" नामक ग्रन्थ में सर्वप्रथम अकारादि षोडश स्वरों, क्ष पर्यन्त व्यंजनों एवं मात्राओं की पुरःस्थापना करके वर्णो की पृथक्–पृथक् व्याख्या की थी। मातृकाओं का प्रचलित क्रम तब से निरन्तर उसी रूप में चला आ रहा है। श्री जीव गोस्वामी ने "हरिनामामृत" नामक वैष्णव व्याकरण में इस क्रम को नारायण से उद्भूत माना है।

मातृकाओं की संख्या प्रायः पचास है। सुप्रसिद्ध तान्त्रिक योगी भास्कर राय ने ललितासहस्रनाम के "पंचाशत्पीठरूपिणी" की व्याख्या करते हुए पचास को इक्यावन का उपलक्षक बताया है। अपनी मान्यता को प्रमाणित करने के लिये उन्होंने दृढ़ तर्क उपस्थित किये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि शरीर के अन्तर्गत इक्यावन शक्तिपीठ हैं और मातृका न्यास भी तदनुरूप होना चाहिए । वर्णमाला को स्थूल मातृका कहते हैं। यही वैखरी वाक् है।

अनुत्तररूप अकार और आनन्दरूप आकार को इकारात्मक इच्छाशक्ति से जोड़ने पर बीजत्रय के संघट्ट से एकारात्मक जन्माधाररूप एकादशम बीज का उदय होता है, जिसे त्रिकोण कहा जाता है। यह

परमानन्दमय स्थान है, इसी से आज भी जगत की उत्पत्ति देखी जाती है। ज्ञानरूपी रत्नों का पिटारा, सम्पूर्ण सुखों का आलय, एकार के आकृतिरूप यह गुप्त त्रिकोण मातृका का ही प्रसार है। "अ", "आ",और "इ" के संयोग से जनित उत्कृष्ट आधारात्मक यह परापरा शक्ति, अ क च ट त प य–शात्मक वर्गमयी तथा शिर, शिखा, ललाट, हृदय आदि प्रदेशों में रहने वाली है। यह अकार और हकारान्त समस्त वर्णों का प्रत्याहार रूप अहन्ता है। अनुत्तर और विसर्गात्मक ककार और सकार की प्रत्याहार–क्षकाररूपिणी होते हुए भी यह अक्षय है।

वाग्देवता के अंग वर्णमय हैं, इसीलिये उसको "वर्णतनु" कहते हैं। भिन्न–भिन्न अंग, वर्णो की महिमा या प्रसार मात्र हैं। वर्णमयी मातृका देवी, 'बहिर्मातृका' के नाम से सुख्यात हैं। यही कारण है कि साधकगण तत्तत् अंगों के अन्तराल में, निगूढ़ शक्ति को उद्‌बुद्ध करने के लिये, बहिर्मातृका न्यास का अनुष्ठान करते हैं जिसके अनुसार वर्णो के अंग हैं–

अ–लालट, आ–मुख, इ–दक्षिण नेत्र, ई–वाम नेत्र, उ–दक्षिण कर्ण, ऊ–वाम कर्ण, ऋ–दक्षनासा, ॠ–वामनासा, लृ–दक्षिण कपोल, लृ–बाम कपोल, ए–अधर ऐ–ओष्ठ, ओ–अधोदन्त, औ–ऊर्ध्व दन्त, अं–जिह्वा, अः–ग्रीवा, क–दक्षिण बाहुमूल, ख–दक्षिण कूर्पर (केहुनी), ग–दक्षिण मणिबंध, घ–दक्षिण अंगुलिमूल, ङ–दक्षिण अंगुल्यग्र, च–वाम बाहुमूल, छ–वाम कूर्पर, ज–वाम मणिबंध, झ–वाम अंगुलिमूल, ञ–अंगुल्यग्र, ट–दक्षिण, ऊरूमूल, ठ–जानु, द–गुल्फ, ध–अंगुलिमूल, न–अंगुल्यग्र प–दक्षिणकुक्षि, फ–वामकुक्षि, ब–पृष्ठ, भ–नाभि, म–उदर, य–हृदय, र–दक्षिण स्कन्ध, ल–वाम स्कन्ध, व–तालु, श–हृदय से दक्षिण हस्त तक, ष–हृदय से वाम हस्त तक, स–हृदय से दक्षिण पाद तक, ह–हृदय से वाम पाद तक तथा क्ष–ब्रह्मरन्ध्र।

"अ" से "क्ष" पर्यन्त समस्त वर्ण, अमृतमय होने के कारण अत्यन्त निर्मल हैं। वर्णो के रंगों–रूपों के विषय में लक्ष्मीधर ने "सुभगोदय" की व्याख्या "चन्द्रकला" में विस्तृत वर्णन किया है। वहाँ सनतकुमारसंहिता के एतत्संबंधी वर्णन को ही उन्होंने मान्यता दी है। अकारादि स्वरों का रंग–वर्ण "धूम्र" है। "क" से लेकर "ट" तक सभी वर्ण सिन्दूराभ हैं। "ड" से "फ" तक वर्णो का रंग गौर है। पांच "व" आदि अरुण वर्ण एवं लकारादि पँाच स्वर्ण वर्ण हैं। "ह" और "क्ष" ये तड़िग रंग के हैं–यह सनत्कुमार संहिता का मत है। कामधेनुतंत्र, शारदातिलक तंत्र आदि आगम ग्रंथों में भी इस विषय का विस्तृत निरूपण किया गया है।

अकार का महिमामण्डल अस्सीलाख योजन तथा आकार का उससे द्विगुण है, इकार का नब्बे लाख योजन तथा ईकार का उससे द्विगुण, उकार का कोटि योजन तथा ऊकार का उससे द्विगुण, ऋ का पचास लाख योजन तथा ॠ का उससे द्विगुण, लृ–लृह का उससे द्विगुण, एकार को डेढ कोटि योजन, ऐ और औ एकार के समान, बिन्दु और विसर्ग–अकार से द्विगुण, तथा व्यंजन शक्तियों की महिमा अकार के मण्डल की अर्द्ध मानी जाती है। स्वर–वर्ण सौम्य तथा व्यंजन सौर एवं आग्नेय हैं।

वर्णो के साथ ग्रह, नक्षत्र एवं राशियों का भी व्यापक सम्बन्ध है। वर्णमाला के प्रत्येक वर्ण का एक–एक ग्रह अधिष्ठाता है–स्वरवर्ग का सूर्य, कवर्ग का मंगल, चवर्ग का शुक्र, टबर्ग का बुध, तवर्ग का वृहस्पति, पवर्ग का शनैश्चर तथा यवर्ग का सोम अधिष्ठाता है। अ, आ, इ, ई की मेष राशि, उ,ऊ,ऋ की वृष राशि, ॠ, लृ, लृ की मिथुन, ए,ऐ की कर्क, ओ औ की सिंह, अं, अः, शवर्ग, ल की कन्या, क, ख, ग, घ, ङ की तुला च, छ, ज, झ,ञ की वृश्चिक, ट, ठ, ड, ढ, ण की धनु, त, थ,द,ध, न की मकर, प, फ, ब, भ, म की कुम्भ तथा य, र, ल, व, क्ष की मीन राशि है। इस सम्बन्ध में तन्त्रराज की टीका प्रमाणमंजरी में किंचित्

–शेष पृष्ठ ४२ पर

हिन्दी लाओ, देश बचाओ

✍ रामेश्वरदयाल गोयल

प्यारे देशवासियों,

भारत को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाने के लिये गाँधीजी ने सम्पूर्ण भारत में विदेशी वस्तुओं की होली जलाने का आन्दोलन चलाया था और कहा था कि **''विदेशी वस्तुओं में मोह रखना गुलामी को बरकरार रखना है।''** परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विदेशों में पढ़े पं. जवाहर लाल नेहरू ने गाँधीजी की इस बात को भुला दिया और अपने आराम के कारण १५ वर्षों के लिये देश के राज–काज हेतु अंग्रेजी को रोक लिया। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि आज सम्पूर्ण भारत अंग्रेजी और विदेशी वस्तुओं के मोह में फँस गया है। पहले हम शरीर से गुलाम थे, अब मानसिक तौर से विदेशियों के गुलाम हो गये हैं।

देश का प्रत्येक अभिभावक चाहता है कि उसका बच्चा डॉक्टर अथवा वैज्ञानिक बनें। चूँकि इन विषयों की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है, अतः वह अपने बच्चों को प्रारम्भ से ही अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में दाखिल कराता है। विश्व व्यापार संगठन का सदस्य होने के कारण अब शीघ्र ही भारत में विदेशी विश्वविद्यालयों के तकनीकी तथा व्यावसायिक संस्थान तथा महाविद्यालय स्थापित होने की सम्भावना है। इन शिक्षण संस्थाओं में पढ़े विद्यार्थियों को विदेशी विश्व-विद्यालयों की डिग्रियाँ दी जायेंगी और उन्हें विदेशी कम्पनियों तथा विदेशों में जाकर नौकरी प्राप्त करने के अच्छे अवसर भी दिये जायेंगे और भारत में उनकी भाषा का शासन पूर्ण रूप से स्थापित हो जायेगा। जिससे देश में गरीबी, अशिक्षा, गुण्डागर्दी और आत्महत्याएँ बढ़ेंगी।

यदि हमने इन विदेशी शिक्षण संस्थाओं को भारत में आने से नहीं रोका और शिक्षा के क्षेत्र में भी विदेशियों के प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया, तो वह दिन दूर नहीं जब अंग्रेजी की शिक्षा द्वारा यह देश विदेशियों का निवेश बन कर रह जायेगा। यहां की संसद में भारतीय नागरिक होंगे, परन्तु देश पर प्रभुत्व विदेशियों का होगा अर्थात् राजा भारत के होंगे और शासन विदेशियों का होगा।

भविष्य में आने वाले इस भयंकर तूफान को रोकने के लिये अब यह अति आवश्यक हो गया है कि देश के समस्त राष्ट्रभक्त एवं हिन्दी सेवी व्यक्ति मिल कर एक छत के नीचे आ जायें और एक राष्ट्रव्यापी हिन्दी आन्दोलन का आवाहन करें। जब तक देश की समस्त हिन्दी सेवी संस्थायें तथा देश भक्त व्यक्ति मिल कर देश की जनता को राष्ट्रव्यापी आन्दोलन द्वारा अंग्रेजी के मोह से मुक्ति नहीं दिलायेंगे, तब तक यह देश अंग्रेजी के जाल में फँसता चला जायेगा और देश विदेशियों की गुलामी की ओर बढ़ता जायेगा। हिन्दी के साथ–साथ देश की अन्य भाषायें भी पिछड़ेंगी। देश गूंगा, बहरा और पंगु हो जायेगा। यह विदेशियों की बैसाखी के सहारे चलेगा।

राष्ट्र की अस्मिता और स्वतन्त्रता को बचाने के लिये अब यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि देश में तकनीकी तथा वैज्ञानिक शिक्षा माध्यम हिन्दी को बनाया जाये। इसके लिये हमें देश में वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक विषयों की पुस्तकों तथा पत्रिकाओं को हिन्दी में प्रचुर मात्रा में प्रकाशित कराना होगा और सभी विषयों की शिक्षा का माध्यम स्थानीय भाषाओं तथा हिन्दी को बनाना होगा। इस कार्य के लिये एक देशव्यापी संगठन की आवश्यकता है। जिसमें देश की समस्त जनता को सहयोग देना होगा और **''अंग्रेजी ! भारत छोड़ो''** का आन्दोलन चलाना होगा। यदि समय रहते हम नहीं जागे और अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को नहीं लाये तो यह देश अंग्रेजी द्वारा विदेशियों का गुलाम बन जायेगा तथा गांधीजी, सुभाष व भगतसिंह जैसे देश भक्तों की आत्मायें देशवासियों को धिक्कारेंगी और रोयेंगी। देश की भावी पीढ़ी नेहरू जी के साथ–साथ हमें भी धिक्कारेगी।

संस्थापक
अखिल भारतीय भाषा प्रतिष्ठान परिषद्,
करनाल (हरियाणा)

हर सिंगार

अंग्रेज़ी हटाओ और हिन्दी लाओ

✍ अनन्तलाल राठी

स्वामी विवेकानन्द एक भव्य निर्माणधीन मन्दिर से हो कर जा रहे थे। कारीगरों, मज़दूरों के कार्यो में उन्हें एक विशेष भावभंगिमा दिखाई पड़ी। उत्तर पाने की जिज्ञासा प्रबल होने से काम कर रहे एक मज़दूर से स्वामी जी ने पूछा–'भाई क्या कर रहे हो?' मजदूर ने कठोर और झल्लाये स्वर में उत्तर दिया–देखते नहीं हो, पत्थर तोड़ रहा हूँ।

दक्षता की साधना

कुछ आगे बढ़ कर स्वामी जी ने दूसरे मज़दूर से यही प्रश्न किया। उस मज़दूर ने उत्तर दिया–पेट भरने के लिए अपने काम में कुशलता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा हूं। इसके उत्तर में थोड़ी विवशता झांकती दिखाई पड़ रही थी। पर उज्ज्वल भविष्य की कल्पना के कारण उसके कार्य में उत्साह दिखाई पड़ा।

आगे चल कर स्वामी जी ने तीसरे श्रमिक से यही प्रश्न किया। उस मज़दूर के चेहरे पर आनन्द की दीप्ति नाच रही थी। कार्य करने की तत्परता एवं तन्मयता देखते बनती थी। कार्य करते उसकी आंखों में आह्लाद की चमक थी। उस मज़दूर ने हाथ का काम बिना रोके मुस्कराते हुए उत्तर दियाः–'यहां भगवान् का मन्दिर बन रहा है। उसके निर्माण के पुरुषार्थ में मैं भी अपनी सेवाएँ अर्पित कर रहा हूँ।' भावों के आरोपण से एक ही कार्य किसी के लिए बोझ, किसी के लिए अपनी दक्षता बढ़ाने का साधन तथा किसी के लिए कर्मयोग बन जाता है।

भारत में शासक निकम्मे हैं

भारत में शासक वर्ग राष्ट्रभाषा हिन्दी को बोझ समझता है। हिन्दी प्रचार को कर्मयोग नहीं समझता। दूरदर्शन पर अनेक उपयोगी चर्चाएँ, मंत्रियों के भाषण, प्रधानमंत्री अटलबिहारी जी के आपरेशन के पश्चात् की कुशलता जनता जानना चाहती थी। इस तरह के कार्यक्रम अति उपयोगी होने पर भी मजबूरन अंग्रेज़ी भाषा में ही होते दिखाई देते हैं। अंग्रेजी जानने वाले कम और हिन्दी जानने वाले लोग बहुसंख्या में होने पर भी हमारे मंत्री अंग्रेज़ी में भाषण करते हैं। हिन्दी समाचार सुनाते वक्त नेताओं के अंग्रेज़ी में बोलने पर उसका हिन्दी अनुवाद लिखा हुआ पलक झपकने तक ही दिखाते हैं।

हिन्दी का उपहास

वैष्णव देवी के दर्शन हेतु दिल्ली से रात्रि १० बजे जम्मू । तवी मेल से रवाना हुए। शहर की रोशनी में जगमगाते प्रकाश के लट्टू तेज़ी के साथ पीछे छूटते जा रहे थे। मेरी दृष्टि सामने बैठे यात्रियों पर पड़ी। उनमें एक हिन्दी प्रेमी श्री दुबे जी थे। एक बंगाली सज्जन और एक ईसाई परिवार दुबेजी से चर्चा में उलझ पड़े। इन दोनों की हिन्दी भाषा से जैसे पुरानी दुश्मनी चली आ रही है। दुबेजी हिन्दी के पक्ष में युक्तियुक्त तर्क दे रहे थे। पर वे लोग हिन्दी के प्रति इतने दुराग्रह से प्रेरित थे कि हिन्दी भाषा की आलोचना का अम्बार लगाते हुए अनाप–शनाप प्रश्न करने लगे। सिगरेट, सिग्नल, टिकिट, रेलवे स्टेशन आदि को हिन्दी में क्या कहते हैं ? बहस जोश का स्वरूप ग्रहण कर रही थी, किन्तु किसी स्टेशन के निकट आने से गाड़ी धीमी होती जा रही थी। स्टेशन पर दुबेजी उतर गए । चर्चा बन्द हो गई। पर मेरा मस्तिष्क अनेक प्रश्नों से चकराने लगा। निद्रादेवी की गोद में जाने को मस्तिष्क नकार रहा था। हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी अपने ही घर में, गृहस्वामिनी होते

हुए भी, अनाथ होकर कब तक अपमान का घूंट पीती रहेगी ? ऐसे काले अंग्रेज़ों के दिल में अंग्रेज़ी का मोह और गुलामी की यह मानसिकता आख़िर कब तक बनी रहेगी ?

भाषा चरित्र गढ़ती है।

हिन्दी की उपेक्षा के परिणामस्वरूप परिवारों में उच्छृंखलता आ रही है। मर्यादा विहीनता पनप रही है। आचार–विचार, खानपान आदि में भारी परिवर्तन हो रहा है। पहनावे में नग्नता आ रही है। माताजी, पिताजी, बहनजी, ताऊजी, ताईजी आदि में तो समादर और अपनत्व का स्नेह झलकता है। उल्टा मम, डैड, सिस्टर, अंकल, आन्टी आदि कहकर हिन्दी के मान–मर्दन के साथ माता–पिता की भी अन्त्येष्टि करने में कब तक गौरव अनुभव करते रहेंगे ? हसबैंड और वाइफ कह देने से क्या सात जन्मों के बन्धन बंध पायेंगे ? न धर्मपत्नी इस मर्म को समझ पायेगी कि पति सेवा से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है। मोहनदास राठी नाम इतना सुन्दर होने पर भी उसको पूरे की बजाय ऐम. डी. लिख कर पागलखाना जाने का मार्ग साफ़ कर रहे हैं। शुभ प्रभात, शुभरात्रि परस्पर नमन करने में क्या व्यक्तित्व नहीं झलकता ? जो मैकाले की शिक्षा पद्धति से 'गुड मार्निंग' से, 'गुड नाइट' तक सोने वाला कब कुम्भकर्णी नींद से जागेगा ? योगेश्वर श्रीकृष्ण, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, सती अनुसूया, ब्रह्मर्षि वशिष्ठ को दूर करके संत एन्थोनी, मरियम आदि की जानकारी दी है, इस राक्षसी पश्चिमी संस्कृति ने।

दिग्भ्रान्त युवा वर्ग

आज का युवा दिग्भ्रान्त हो गया है। उसके जीवन का कोई आदर्श नहीं है। डिस्को संगीत पर बेशर्म होकर थिरकते हुए वह भूल गया कि भारतीय कला, संगीत, नृत्य, लोक गीतों की गरिमा आज भी विश्व में शिखर पर है। प्राचीन कला का दर्शन कोणार्क, खजुराहो, सांची, कुशीनगर आदि अनेक स्थानों में कर सकते हैं। दिग्भ्रान्त युवा सिर्फ विलासिता, मद्यपान, नशीली वस्तुओं के सेवन में आकंठ डूबता जा रहा है।

थोथा दिखावा

विवाह संस्कार, मुंडन संस्कार, नामकरण संस्कार, गृह प्रवेश आदि अनेक धार्मिक व सांस्कृतिक संस्कारों के निमंत्रण–पत्र अंग्रेज़ी भाषा में छपवाने में गर्व करने वाले काले अंग्रेज़ क्यों नहीं सोचते कि उनके मां–बाप या जिसे निमंत्रण दे रहे हैं, वे क्या अंग्रेज़ी पढ़ सकते हैं ? अंग्रेज़ी में छपवा कर समाज में या लोगों में परिवार की शान बढ़ेगी अथवा रौब पड़ेगा, यह सोचना पूर्णतया मूर्खता है। व्यापारिक प्रतिष्ठान, दुकानदार अपने प्रतिष्ठान के नामपट्ट अंग्रेजी में लिखवाना अपनी शान समझते हैं। अनेक देशों में क्रान्तिकारी पुरुषों के नाम पर मार्ग या नगर बनाये हैं पर अंग्रेज़ी के गुलामों ने इन मार्गों के नामों को दूषित कर दिया है। जैसे तात्यां टोपे का टी.टी. नगर, रामकृष्णपुरम् का आर. के.पुरम., महात्मा गांधी रोड़ का ऐम.जी. रोड़ करके महापुरुषों का घोर अपमान कर दिया है। संतों के नाम पर विद्यालयों का नाम सेंट कर दिया है। जैसे दिल्ली और गाजियाबाद में सेंट विवेकानन्द स्कूल है।

साधु महात्मा भी अंग्रेज़ी में रंगे

भारत धर्मप्राण देश है। धर्म संस्कृति और प्राचीन साहित्य का माध्यम संस्कृत तथा हिन्दी भाषा है। परन्तु हमारे संत, महात्मा, धर्माचार्य भी अंग्रेज़ी भाषा के मानसिक शिकार हो रहे हैं। इन्होंने अपने नाम के पूर्व 'हिज होलीनेस' लगा रखा है। कृष्ण के स्थान पर कृष्णा, योग के स्थान पर योगा जैस विकृत करने के अक्षरशः ये जिम्मेदार हैं।

मीडिया के क्षेत्र में सभी ने हिन्दी की दुर्गति कर दी है। शासन की भाषा को जनभाषा से पृथक् रखने की परम्परा बहुत पुरानी है। इसी आड़ में सत्ताधीश लोग अपने काले कारनामों को बड़ी आसानी

से निपटा देते हैं। अंग्रेज़ी के प्रति प्रबल आकर्षण शासन की दोषपूर्ण नीतियों का परिणाम है।

नेहरू जी की देन

भूतपूर्व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने अपनी लिखी किताब में लिखा है कि मैं जन्म से हिन्दू, खान–पान से मुस्लिम और आचार से ईसाई हूँ। उसी के अनुसार उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी की विकृति करने में योग दिया।

१४ सितम्बर, १९४६ को संविधान सभा में एक वोट के बहुमत से हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया था। किन्तु उस वक्त से आजतक शासक वर्ग शासन से कार्य में राष्ट्रभाषा हिन्दी को एड्स के रोगी की तरह अस्पृश्य मान रहा है। १४ और १५ अगस्त १९४७ की मध्यरात्रि में जवाहरलाल नेहरू ने लार्ड माउंटबेटन को ही भारत का प्रथम महाराज्यपाल बना दिया और अपना पहला स्वतंत्रता भाषण अंग्रेज़ी में दिया। संघर्ष करके स्वतंत्रता प्राप्त करने वाले राष्ट्रनायक की तेजस्विता और दबंगपन नेहरूजी की वाणी और कर्म में नहीं था। वही प्रणाली आज शासन के शासक वर्ग में चली आ रही है।

भाषा स्वतंत्र राष्ट्रों की आन

जो राष्ट्र लड़कर स्वतंत्र होते हैं, सर्वप्रथम वे भाषाई गुलामी के जुए को उतार फेंकते हैं। यह कार्य रूस में लेनिन ने किया। तुर्की में आतातुर्क कमाल पाशा ने किया। इंडोनेशिया में सुकार्णो ने किया, आयरलैंड, इजराइल आदि अनेक देशों में यह बदलाव हुआ। रशिया, इराक, मिस्र आदि अनेक देशों के प्रधानमंत्री विदेशों में अपनी ही भाषा में भाषण करते हैं। अभी–अभी हमारे प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्री विदेशी मेहमानों से अथवा विदेशों में अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी से घृणा करते आ रहे हैं। करोड़ों लोगों को अपने हिन्दी भाषणों से सम्मोहित करने वाले हमारे प्रधानमंत्री अधिकारियों के लिखे अंग्रेज़ी भाषणों को काठ के तोते के समान बच्चों की तरह हकलाते हुए पढ़ते हैं। वाणी के सम्राट होकर भी वह प्रधानमंत्री हैं, यह दर्शाने हेतु विदेशों में झख मार कर अंग्रेज़ी में बोलते हैं। संविधान का उल्लंघन भारत के समान संसार में कहीं नहीं होता है।

इस देश की भाषा संस्कृत और हिन्दी है

हिन्दी न केवल राष्ट्रभाषा है, वह राष्ट्रीय संस्कृति की पोषक और संरक्षिका भी है। जानबूझ कर हिन्दी की उपेक्षा करने से हम अपनी सांस्कृतिक प्राचीन धरोहर खोते जा रहे हैं। हिन्दी के पीछे संस्कृत का अपार शब्दकोष है। अपनी संस्कृति की जड़ों पर ही प्रहार करके गुलामी की विरासत में प्राप्त यह अंग्रेज़ी चलन का कलंकित टीका कब तक हम अपने भाल पर धारण करते रहेंगे ?

क्या राष्ट्रभाषा हिन्दी स्वयं सक्षम नहीं है, जो उसे सहभाषा चाहिए? क्यों राष्ट्रभाषा के अतिरिक्त 'मातृभाषा को प्रोत्साहन देने' के सिद्धान्त का परित्याग कर चुके ? 'कुर्सी बचाओ और पद से चिपके रहो' अभियान में क्यों हमें मातृ गौरव का भी ध्यान नहीं है ?

लगता है नकलची प्रवृत्ति और तुष्टीकरण की नीति के कारण हम भारतीय अस्मिता खोते जा रहे हैं। हिन्दी का सिंहासन महारानी का होने पर भी उसे हम नौकरानी के समान समझ रहे हैं। कहीं हम डालरों से बिक तो नहीं गये हैं ? हम आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से फिर गुलाम तो नहीं हो गये हैं? सांस्कृतिक गुलामी बनी रहे, तो राजनीतिक स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं है।

– अमर ज्योति पैलेस, धंतौली, नागपुर

हिन्दी ने भारत माता का मन-वाणी से शृंगार किया,
इसने तुलसी के मानस-सा भव-भय-हारी उपहार दिया।
हिन्दी ने क्या कुछ नहीं दिया अहसान फरामोशों सोचो,
आज़ादी का हिन्दी ने ही स्वर्णिम सपना साकार किया।

- पं. नरेन्द्र मिश्र

अंग्रेजी हटाओ

✍ आचार्य चन्द्रप्रकाश

कूटनीतिज्ञ अंग्रेज–कूटनीति से भारत पर राज्य कर गये। जाते-जाते रक्तबीज के समान अपने मानस पुत्र छोड़ गये। वे अंग्रेजों के मानस पुत्र घुन की तरह भारत की संस्कृति को खा रहे हैं। बहुत कुछ खा चुके हैं। आज का बालक हिन्दी के महीने नहीं जानता, ऋतुओं को नहीं जानता, तिथियों को नहीं जानता, दिनों के नाम नहीं जानता। वह Monday-Tuesday जानता है, वह January-February जानता है। वह दो दूनी चार नहीं जानता। वह टू वन्जा टू जानता है। अब माँ, अम्मा, मैया की ममता समाप्त हो गई। अब मम्मी और ममी रह गई। पिताजी, दादा जी, कक्कू नहीं अब डैडी और डैड रह गये हैं।

धीरे–धीरे सोचने की क्षमता बच्चों में समाप्त हो जायेगी। वे विदेशी में सोचेंगे। धीरे–धीरे चाय–डालडा की भाँति ये अंग्रेजी सोच हिन्दी एवं भारतीयता का भक्षण कर जायेगी। तब फिर रोने से क्या होगा ? मन पछतैये अवसर बीते। अतः हम सबको समवेत होकर इस इंगलिश मीडियम को समाप्त करना चाहिये। हम उदारवादी हैं, हम भाषा के विरोधी नहीं हैं, लेकिन विरोधी हैं प्रणाली के, उस रीति के जिसके द्वारा हमारी संस्कृति के विनाश की योजना चल रही है।

आज के नेता, देश प्रेमी नहीं, कुर्सी प्रेमी हैं, धन प्रेमी हैं, प्रतिष्ठा प्रेमी हैं, घुटाला प्रेमी हैं। नवाबों की तरह सुरा–सुन्दरी के प्रेमी हैं। गांधीजी गोखले–तिलक एवं महामना मालवीय जैसे हिन्दी प्रेमियों को स्वदेश एवं स्वदेशी के अनुरागियों के नाम को बट्टा लगाने वाले हैं।

-मण्डीरामदास, मथुरा

हर सिंगार

पृष्ठ ३७ का शेषांश

भिन्न स्वरूप दिग्दर्शित किया है। वर्णात्मक राशियों से ही नक्षत्रों का जन्म होता है। वर्ण (अक्षर) भेद से समस्त नक्षत्र सत्ताइस हैं। ये नक्षत्र भी वर्णज हैं।

वर्णों का विभाजन आकाशादि पंचभूतात्मक वर्गों के रूप में भी तन्त्रों में पाया जाता है। इन्हें वायु वर्ग, अग्नि वर्ग, भूमि वर्ग, जल वर्ग, व्योम वर्ग के अन्तर्गत विभक्त किया गया है। पुरातात्विकों एवं पुरालिपिशास्त्रियों के अनुसार आर्यों द्वारा सारस्वत काल में अद्भुत सूचकलिपि, चित्रलिपि, गूढ़ाक्षरों एवं शर–शीर्ष लिपियों की कुंजी तंत्रों के इस पांच भौतिक वर्गवाद में निहित है, जिसका प्रयोग सारस्वत, सिन्धु, मिस्र, चीन और क्यूनिफार्म की पुराचित्रलिपियों में किया गया था।

वर्ण अथवा वर्णसंघ का मन्त्रत्व, उसमें निगूढ़ चेतना को उद्‌बुद्ध करने में ही है। जप और नाद या देवता के सतत अनुसन्धान से ही यह कार्य सम्भव हो पाता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने अपने "तन्त्रालोक" ग्रन्थ में कहा है–

"यथारघदटचक्राग्रघटीयन्त्रौघवाहनम्।
एकानुसन्धियत्नेन चित्रं यन्त्रोदयं भजेत् ।
एकानुसन्धानबलाज्जाते मन्त्रोदये निशम्।
तन्मन्त्रदेवतायत्नात्तादात्मयेन प्रसीदति। "

जिस प्रकार निरन्तर रहट के वाहन की प्रक्रिया विचित्र यंत्र के रूप में उदित होती है, वैसे ही मन्त्रोदय विषयक एकानुसन्धान द्वारा तादात्म्यापन्न होने के कारण मन्त्र देवता भी प्रयत्नान्तर के बिना मंगलकारी बन जाता है। जिस समय भारतीय संस्कृति एवं भाषा के संरक्षक देवनागरी एवं हिन्दी के प्रति उदासीन हो आंग्ल भाषा के मोहजाल में आकण्ठ फँसे हुए हैं, उस समय श्रीनाथद्वारा से प्रभु श्रीनाथ के तादात्म्य, सायुज्य एवं सानुभावता से उद्‌घोषित "अंग्रेजी हटाओ" का मंगलकारी मंत्र सुनिश्चित रूप से मूर्त्तिमान रूप लेकर हिन्दी–देवनागरी में अन्तर्हित विराट् शक्ति का विस्फोटन कर देगा एवं उसे इसके गरिमामय स्थान पर प्रतिष्ठित सुनिश्चित रूप से करेगा।

–एस १/१२, कैलाश नगर, श्रीधाम, वृन्दावन

हर सिंगार

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में धर्म संवाहकों का योगदान

✍ प्रो. महेन्द्र रायजादा

हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार में अनेक शताब्दियों से धार्मिक सन्तों तथा भक्त कवियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतवर्ष के मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन का बोलबाला रहा था। इस काल में दक्षिण भारत की ओर से भक्ति सम्बन्धी अनेक धारायें उत्तर भारत में आईं। इन धर्म धाराओं के संवाहक तथा सूत्रधार श्रीरामानुजाचार्य, श्री रामानन्द तथा श्री वल्लभाचार्य आदि थे । इन भक्ति पद्धतियों के प्रमुख आचार्यों एवं प्रणेताओं का प्रभाव तत्कालीन संतों तथा भक्त कवियों पर प्रभूत मात्रा में पड़ा। यों तो भारत के पूर्वी भाग में कविवर ज़यदेव के कृष्ण प्रेम की गूंज पहले से ही सुनाई दे रही थी तथा गुजरात में स्वामी माध्वाचार्य (सं.१२५४–१३३३) के द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय ने गुजरात की जनता को पर्याप्त आकर्षित किया था। इन सगुणोपासक धर्माचार्यों ने देश में व्याप्त नाथपंथ के योगियों और सिद्धों के प्रभाव से जनता को मुक्त किया।

पन्द्रहवीं शताब्दी से सत्तरहवीं शताब्दी तक देश में निर्गुण और सगुण भक्ति की दो धारायें समान्तर प्रवाहित रहीं। कुछ सन्त कवियों कबीर, नानक, दादू तथा रैदास आदि ने निर्गुण भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया तो सूर, तुलसी तथा मीरा आदि ने कृष्ण और राम की सगुण भक्ति का सीधा और सरल मार्ग बताकर जनता में पर्याप्त लोकप्रियता और आदर प्राप्त किया। कबीर, दादू तथा रैदास आदि ने देश के विभिन्न भागों में जाकर अपनी सधुक्कड़ी भाषा में निर्गुण भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। आज भी देश के अनेक भागों में कबीर तथा दादू पंथी आदि तम्बूरे पर भजन और साखी गाते मिल जाते हैं। इन सन्तों ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दिया है।

इनके अतिरिक्त सूर, तुलसी तथा मीरा आदि सगुण भक्त कवियों ने उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में हिन्दी के प्रचार–प्रसार में विशेष योगदान दिया है। तुलसी के सम्पादित्त मानस, तथा सूर और मीरा के पदों ने समूचे देश में लोकप्रियता अर्जित की है। संसार के अन्य धर्मों की तरह हिन्दू धर्म किसी व्यक्ति विशेष के अनुशासन पर प्रतिष्ठित नहीं हुआ है, वरन् देश के नाम पर (हिन्द अथवा हिन्दुस्तान) इसका हिन्दू धर्म नामकरण हुआ है। इस हिन्दू धर्म का स्वरूप अनेक भारतीय साधकों एवं धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित मतवादों द्वारा स्थापित हुआ है। भारतवर्ष में अनेक धर्म धाराएँ प्रवाहित हुई हैं, जिनमें हमारे देश की आत्मा एवं स्वरूप विद्यमान हैं। शैव और वैष्णव प्रभृति अनेक धार्मिक मत–मतान्तर एवं सम्प्रदाय भारतवर्ष में अनंतकाल से वर्तमान हैं। विदेशी अनेक जातियां ग्रीक, हूण तथा शक प्रभृति क्रमशः भारतीय साधना समुद्र में विलीन हो गई। इनके पश्चात् इस्लाम धर्मावलम्बी मुसलमान भारतवर्ष में आये, उनका भी सहिष्णुता–पूर्वक स्वागत किया गया, उनका विजय का अभियान तो बाद में प्रारम्भ हुआ। हमारा देश सदा धर्म सहिष्णु रहा है। अनेक शताब्दियों से हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने में विभिन्न धर्म के संवाहकों का योगदान रहा है।

यह बात सर्वमान्य है कि हिन्दी भाषा अपनी सरलता और व्याकरण सम्बंधी सरल–सामान्य नियमों एवं गुणों के कारण भारतवर्ष के लगभग सभी प्रान्तों में समझी और बोली जाती है। हिन्दी के सन्त एवं भक्त कवियों की कृतियों का प्रभाव अहिन्दी भाषाभाषी प्रान्तों पर प्रभूत मात्रा में पड़ा है। कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास तथा मीराबाई की निर्गुण तथा सगुण भक्ति की रचनाओं को आत्मसात कर अहिन्दी भाषाभाषी संतों ने अपनी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में भी प्रचुर धार्मिक साहित्य लिखा है। गुजरात के नरसी मेहता तथा मराठी के एकनाथ महाराज, तुकाराम, नामदेव, जनाबाई, अमृतराय ,मुकुंद आदि इनमें प्रमुख हैं। उदाहरण के लिये मराठी के इन सन्तों ने हिन्दी भाषा में भी अपनी अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

कबीर, सूर तथा तुलसी आदि हिन्दी के भक्त कवियों की भक्ति, वैराग्य तथा दार्शनिक सिद्धान्तों

पर आधारित अनेक कृतियाँ गुजरात तथा महाराष्ट्र के भक्त कवियों की कृतियों में उपलब्ध हैं। मराठी के श्रेष्ठ भक्त कवि एकनाथ का हिन्दी भाषा के प्रति विशेष प्रेम था, उन्होंने उत्तर भारत का भ्रमण किया था तथा कुछ समय काशी में रहकर व्यतीत किया था। उनकी हिन्दी भाषा की कविताओं के उदाहरण देखिये–

पग–पग पर बलिजाऊं । गोविंद जे घर आवें रे।।
राम मीठा लागा। सब सुख हम त्यागा।
हम तो भये राजा राम के सिपाही दिल घोड़ा दागा।
राम रस चखूं रे, मुझको विषय न भावे लगी ब्रह्मखुमारी।।

तुकारामजी मराठी के अभंग छंद लिखने वाले संत–वैरागी कवि थे, इन्होंने हिन्दी भाषा में अनेक दोहे और पद लिखे हैं। तुकारामजी छत्रपति शिवाजी के राजगुरु रामदासजी के शिष्य थे, इनकी हिन्दी भाषा की एक रचना देखिये–

बाग रंगोली महल बना है, महल के बीच झुलना खुला है।
इस झूले पर झूलो रे भाई, जनम मरन की भूल न आई।

एक अन्य मराठी भक्त कवि अमृतराय की हिन्दी कविता का नमूना देखिये–

सस्ता दाना पानी निर्मल, गंगा जल गहरा–
रंग राग घर बाग बगीचा रुपया हो न मोहरा–
अमृतराय के अमृत बचन, तुम सदा सुखी रहियो–
सबल पुष्ट, आरोग्य अनामय, आनंदमो रहियो–

इनके अतिरिक्त मार्तण्ड बुआ, मयूर जी आदि मराठी के भक्त कवियों ने कबीर, तुलसी तथा मीराबाई एवं नाभाजी आदि भक्त कवियों की स्तुति में काव्य लिखा है।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती गुजराती भाषा-भाषी थे, पर उन्होंने अपने ग्रंथों की रचना राष्ट्रभाषा हिन्दी में की तथा अपने आर्य समाज का प्रचार-प्रसार हिन्दी के माध्यम से किया। महर्षि दयानन्द का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिन्दी में लिखा गया है, जिसे करोड़ों देशवासी आज भी श्रद्धापूर्वक पढ़ते हैं। स्वामी दयानन्द ने धार्मिक पाखण्ड तथा आडम्बर के विरुद्ध अपना आन्दोलन हिन्दी के माध्यम से किया तथा इसके फलस्वरूप गुरुकुलों तथा डी.ए.वी. शिक्षण संस्थाओं की स्थापना देश के अनेक प्रान्तों में हुई। प्रसिद्ध थियोसोफी मतावलम्बियों ने भी हिन्दी भाषा में अपने मत का प्रचार-प्रसार किया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में जैन मुनियों एवं आचार्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वास्तव में वर्तमान काल में जैन मुनियों तथा आचार्य श्रीतुलसी, आचार्य श्री महाप्रज्ञ आदि ने 'अणुव्रत' आन्दोलन को जन जन तक राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से पहुंचाया है। तेरापंथी जैनियों की नुख पत्रिका 'अणुव्रत' पाक्षिक हिन्दी की एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका है, इसके अतिरिक्त अछूते संदर्भ तथा युवा 'दृष्टि' आदि पत्रिकायें हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अपना योगदान दे रही हैं।

वर्तमान समय में अनेक अन्य धर्म संवाहक हिन्दी भाषा के माध्यम से अपने प्रवचनों के द्वारा देश के विभिन्न प्रान्तों में जाकर जन-जन में धार्मिक एवं आध्यात्मिक चेतना जागृत करने का महान कार्य कर रहे हैं, इनमें जगद्गुरु शंकराचार्य, सुधांशु जी, आशारामजी, मुरारी बापू, मृदुलकृष्णजी, पियूषजी तथा किरीट जी आदि प्रमुख हैं। ये सभी हिन्दी के प्रचार प्रसार में अपना योगदान दे रहे हैं।

अन्त में, मैं यही कहना चाहूंगा कि हिन्दी राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार में अनेक शताब्दियों से विभिन्न धर्मों के संवाहकों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यह क्रम आज भी चल रहा है। अनेक धार्मिक संस्थायें दीर्घकाल से अपनी मुख पत्रिकाएँ भी हिन्दी में निकाल रही हैं, जिन्हें देश–विदेश में करोड़ों व्यक्तियों द्वारा नित्य पढ़ा जाता है। इन पत्रिकाओं में कल्याण सर्वोपरि है। कल्याण के अतिरिक्त अखण्ड ज्योति, जीवन संचेतना तथा ऋषि प्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं। करोड़ों व्यक्ति इन हिन्दी भाषा की पत्रिकाओं का नित्य नियमितरूप से पारायण एवं धर्म के प्रति अपनी आस्था को सुदृढ़ कर राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति अपनी निष्ठा बनाए हुए हैं। इस लघु आलेख में सभी धर्माचार्यों का उल्लेख करना संभव नहीं हुआ है, उनके तथा अन्य सभी धर्म संवाहकों के प्रति अपना आदर व्यक्त करते हुए राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनके योगदान एवं प्रचार-प्रसार की मुक्तकंठ से सराहना करता हूँ।

५-ख-२०, जवाहरनगर, जयपुर

हर सिंगार

सावधान : सपना टूटने के कगार पर!

✍ राजेन्द्रशंकर भट्ट

राजस्थानी को लेकर जो आशंकाएँ प्रकट की जाती रही हैं, वे सब पहली बार में ही साक्षात् होकर सामने आ गयी हैं।

विगत शुक्रवार (१७ मई २००२) राज्यसभा में प्रतिष्ठित अधिवक्ता श्री लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने राजस्थानी को संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित करने का गैर--सरकारी संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया, जिसे सरकार के इस आश्वासन पर वापस ले लिया गया कि अन्य ३२ भाषाओं के साथ राजस्थानी पर भी विचार के लिये एक उच्च स्तरीय समिति स्थापित की जाएगी, जो जल्दी ही अपना परामर्श देगी–सरकार तुरन्त फैसला करेगी। सरकार की मंशा इस मामले में देरी करने की नहीं है।

सिंघवी जी के विधेयक में संशोधन–सा उपस्थित करते हुए, श्री नटवरसिंह ने राजस्थानी भाषा के विधेयक में ब्रज भाषा को भी जोड़ने का अनुरोध किया, कहा–"राजस्थान के एक बड़े भाग में ब्रज बोली जाती है।" उनके इस अनुरोध को सिंघवी ने स्वीकार करते हुए कहा कि "ब्रज भाषा देश को जोड़ने वाली भाषा है।"

श्री सिंघवी इतने अनुभवी और आदरणीय हैं कि उनका कहा स्वतः प्रमाण हो जाता है। परन्तु अधिवक्ता का दायित्व वही और उतना ही प्रतिपादन करना होता है जो वह अंगीकार करता है। जो वह कहता है, उसके दूसरे पक्ष भी होते हैं, तभी तो भिन्न–भिन्न अधिवक्ता होते हैं, और निर्णय वह नहीं न्यायालय करता है। इस मामले में भी उच्च स्तरीय समिति बनायी जा रही है। उससे श्री सिंघवी के मन्तव्य को समर्थन मिलेगा, ऐसा मानना उस समिति के निर्णय के सम्बन्ध में पूर्वाग्रह बनाना हो जाएगा जो अभी तक नियुक्त भी नहीं हुई है। लेकिन जो सरकार इस समय केन्द्र में है, उसके सम्बन्ध में अनुभव ऐसा ही है कि जो उसकी मंशा होती है उसके अनुकूल लोगों को ही ऐसी समितियों की सदस्यता दी जाती है। जो हो, इस सम्बन्ध में निर्णय दिल्ली में, राज्यसभा में नहीं, राजस्थान में, इस राज्य की विधानसभा में होना है। यह प्राथमिक रूप से विचारणीय है कि जो विषय राज्य के लिए ही प्राथमिक रूप से प्रभावकारी है, उसको सीधा लेकर क्या केन्द्र की विधायी संस्था अथवा केन्द्रीय सरकार कोई स्वतंत्र निश्चय कर सकती है।

यह निरा भाषा का प्रश्न नहीं है। राजस्थान का जब एकीकरण हुआ, जो रियासतें इसमें सम्मिलित हुईं, उनकी अपनी–अपनी संस्कृति थी, जीवन के हर व्यवहार में भिन्नता थी, जो इस भू–भाग के भूगोल और इतिहास की देन थी। इस एकीकरण के पहले से इन रियासतों में शासकीय और शिक्षण कार्य के लिए हिन्दी का प्रचलन था, इसलिए राजस्थान के सम्मिलित स्वरूप में हिन्दी ही स्वाभाविक रूप से स्वीकार हो गयी । जो उस समय का राजनेताओं का वर्ग था, और विद्वानों का समुदाय था, उसने इसका समर्थन किया, इसी को व्यावहारिक और उचित माना। इनमें एक ओर सर्वश्री जयनारायण व्यास, हीरालाल शास्त्री और माणिक्यलाल वर्मा थे, जो स्वयं अपनी भाषाओं के प्रतिष्ठित रचनाकार भी थे। दूसरी ओर मेवाड़ के महाराणा और जयपुर के महाराजा थे, जो क्रमशः महाराजप्रमुख और राजप्रमुख बने। इनके अतिरिक्त पूरा सजग और समर्थ समाज था। सबकी स्वीकृति और समर्थन से हिन्दी को नये बने राजस्थान में, इससे पहले उदयपुर राजधानी के, राजस्थान में भी, अपनाया गया।

एक और स्मरण में रखे जाने की बात है कि जिसे अब श्री नटवरसिंह राजस्थान का बड़ा ब्रजभाषी भाग कह रहे हैं, उसके राजस्थान में सम्मिलित होने में सहूलियत इसी से हुई कि नये राज्य ने हिन्दी अपनायी, नहीं तो उस समय भी ब्रज के सम्बन्ध में यही की यही स्थिति थी–और अभी भी है। ब्रजभाषी जो क्षेत्र उत्तरप्रदेश में है उसमें ब्रज भाषा और ब्रज संस्कृति कहीं अधिक प्रचलन में है, परन्तु वहां हिन्दी ही काम में लायी जाती है–हिन्दी ही जोड़ने वाली भाषा है।

ध्यान में रखे जाने की यह बात है कि

राजस्थानी का जो स्वरूप प्रतिपादित किया जा रहा है वह गैर–मारवाड़ी क्षेत्र में कहीं स्वीकार्य नहीं हो सकेगा।

अर्थात् ब्रज क्षेत्र के बाहर जो प्रचलित भाषाएँ है, उनका भी पृथक अस्तित्व स्वीकार करना होगा। बात पुरानी नहीं है, ७ मई के भरतपुर से प्रकाशित "नवयुग संदेश" में अलवर के विद्वान् डा. भागीरथ भार्गव ने लिखा है–"हिन्दी राष्ट्रभाषा होने के साथ राजस्थान के पूरे प्रदेश की भाषा है जिसे सभी प्रयोग में लेते हैं। किन्तु पश्चिमी राजस्थान के राजनेता अपनी बाटी सेकने के लिए राजस्थानी को प्रान्त की राजभाषा बनाने का षड्यंत्र रच रहे हैं। यदि पूर्वी राजस्थान की जनता ने समय रहते इसका विरोध नहीं किया तो राजस्थानी भाषा की नई गुलामी के लिए तैयार रहना होगा।"

राजस्थानी के जिस रूप का विरोध पूर्वी राजस्थान की ओर से है, उसका इससे अधिक विरोध दक्षिण राजस्थान से होता रहा है। इसलिए कहा गया है कि यह मात्र भाषा का प्रश्न नहीं है। राजस्थान इस समय भारत का सबसे बड़ा राज्य है, इतनी ही विशाल और विविध इसकी सम्भावनाएँ हैं। इस प्रकार के एकीकृत राजस्थान का सपना पुराना है, जिसे सबसे अधिक जयपुर–नगर–निर्माता सवाई जयसिंह सामने लाये थे। जो गर्व और गरिमा, महत्ता और मोह, इस विशालाकार के प्रति होना चाहिये, उसका सृजन और विस्तार, आभास और आदर, हो नहीं पाया है। एकीकृत राजस्थान का यह स्वरूप इस समय सपना नहीं, वास्तविकता है। परन्तु यह सपना अभी इस प्रकार से है कि राजस्थान के सभी भाग समानता से समृद्धि से लाभान्वित नहीं हो पा रहे । डा. भागीरथ भार्गव का जो उद्धरण ऊपर दिया गया है, वह उस आलेख में से है जिसका शीर्षक है–"उपेक्षित पूर्वी राजस्थान"। एकीकृत होने से एक–सा व्यवहार और लाभ मिलना चाहिये था, उससे वंचित जो क्षेत्र अपने को अनुभव कर रहे हैं, वे इस "भाषा की गुलामी" को सह नहीं पायेंगे। इसकी जड़ में यह अति आशंकाकारी भावना है, जो जोधपुर के एक साप्ताहिक के १२ अप्रेल के अंक में फिर से उभरी है–

"मारवाड़ी माने राजस्थानी"

राजस्थान के लिए यह उसके संयुक्त सम्मिलित संगठित स्वरूप के वास्ते अत्यन्त संकट की घड़ी है। यदि इस राज्य के लिए अलग–अलग भाषा मान ली जाती हैं, जिसका आरम्भ राजस्थानी से पृथक् ब्रज को स्वीकार करने से हो गया है, तो इसकी अन्य प्रकार की एकताएँ निभ नहीं सकेंगी। यह समय संसार में सम्मिलित अस्तित्व का है, पृथकत्व हर एक के अस्तित्व के लिए आघात हो गया है। कठिनाई से राजस्थान ने देश के सबसे बड़े राज्य का स्थान और सम्मान प्राप्त किया है। मध्यप्रदेश विभाजित हुआ, और उससे यह सम्मान छिन गया। राजस्थान अपने को विभाजित करके अपनी यही गति करेगा।

इसके दो पहलू सर्वाधिक विचारणीय हैं। राजस्थान अपने क्षेत्र में अलग–अलग भाषाएँ स्वीकार करके सारे हिन्दी क्षेत्र में, उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, में विघटन की प्रक्रिया आरम्भ करेगा। राजस्थान में ब्रज को अलग मानते ही उसका जुड़ाव उत्तरप्रदेश के ब्रज क्षेत्र से हो जाएगा। उत्तरप्रदेश और राजस्थान में से ब्रज भाषी क्षेत्र काटकर अलग ब्रज प्रान्त बनाने की मांग उठेगी, जो आगे बिहार तक रोके नहीं रुकेगी, मैथली के लिए इसी प्रकार का आन्दोलन होता रहा है।

दूसरे, राजस्थान हिन्दी के माध्यम से देश के सबसे बड़े भूभाग से जुड़ा है। हिन्दी अंग्रेजी को हटाकर भारत की राजभाषा बनेगी ही । तब इसके लाभ स्वभावतः वे ही प्राथमिक रूप से प्राप्त करेंगे, जो हिन्दी को अंगीकार कर चुके होंगे। इसीलिए दक्षिणी राज्यों में भी, पूर्वी राज्यों में भी, हिन्दी का विस्तार हो रहा है । हम इस उन्नतिकारी लाभकारी प्रवाह से अपने को काटने का प्रयत्न कर रहे हैं।

यह भाषा से कहीं अधिक विस्तृत समस्या अथवा संकट है। लुभावना लालच है–हमारा देश, हमारी भाषा। इसका प्रतिपादन करने वाले न राजस्थान के हिन्दी के लिए योगदान का मान कर रहे हैं, न हिन्दी की संभावनाएँ उनके सोच में है। संकुचितता आजकल के संसार के योग्य नहीं है।

१, जयाचार्य मार्ग, जयपुर

हिन्दी का दुर्भाग्य

डा. सुरेन्द्र शर्मा

भारत के स्वतन्त्र होते ही देश के लोकतन्त्र को "सैक्यूलर" नाम का एक ऐसा कीड़ा लगा, जो हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान तीनों को खाये जा रहा है, यही नहीं उसने भारत की प्रजा के इतने टुकड़े कर डाले कि वह अनेकों जातियों उपजातियों, जनजातियों में विभाजित होता चला जा रहा है।

स्वतन्त्रता के बाद से राजनीतिक दम्भ ने इतने पैर फैला दिये कि व्यक्ति का स्वाभिमानी विचार शून्य की स्थिति में आ चुका है। इस वैचारिक शून्यता से भारत इतना ग्रस्त है कि हम प्रत्येक विदेशी विचार को महत्त्व देने लग गये हैं, देश और राष्ट्र गौण होता चला गया है।

मान लिया जाय कि मुगल शासन में हिन्दू को एक जाति के रूप में स्वीकृत कर लिया गया इसलिए कि मुसलमान अपने पृथक् स्वतन्त्र अस्तित्व को बनाये रखना चाहता था ; परन्तु किसी ने यह नहीं सोचा कि इस हिन्दुस्तान के निवासियों को किस नाम से अभिहित किया जाय, जबकि रूस का रशियन, चीन का चीनी, जापान का जापानी, अमेरिका का अमेरिकन आज भी कहा जाता है। हिन्दुस्तान का नाम बदलकर हमने संविधान में भारत नाम स्वीकार कर लिया, तो क्या आज का मुस्लिम अपने आपको (अपवाद को छोड़कर) भारतीय कहलाने को तैयार है ?

स्वातंत्र्य समर के समय हमने हिन्दुस्थान नाम के बदले रूप हिन्दुस्तान को स्वीकार लिया फिर भारत के मूल से जुड़े लोगों को छोड़कर किसने हिन्दुस्तान की स्वीकृति दी थी। कुछ ने सिन्धुस्तान से हिन्दुस्तान की परिकल्पना की, केवल इसलिए कि मुस्लिम स्वीकृति मिल जाय, परन्तु नहीं मिली। "जय हिन्द" का नारा दिया गया, परन्तु वह भी सेना में ही कुछ जीवित है, सार्वजनिक जीवन से उखड़ गया है।

हिन्दी का दुर्भाग्य यही है कि वह हिन्दू नाम से जुड़ी हुई है, इसलिए कोई भी राजनीतिज्ञ आज ५५ वर्ष बीत जाने के बाद उसे राष्ट्रभाषा बनाने की मानसिकता में नहीं हैं, जबकि संविधान संसद में पारित करते समय तमिल लोगों के विरोध के कारण १५ वर्ष बाद संसद ने इसे राष्ट्रभाषा बनाने का संकल्प लिया था और आज संविधान के संकल्प की उपेक्षा कर कितने असंवैधानिक कार्यों में उलझ पड़े हैं।

अर्थतन्त्र से निसृत वैदिककालीन माधव मेरुतन्त्र में हिन्दुस्तान की इस प्रकार परिभाषा दी गई है:–

हिमालयात् समारम्य यावदिन्दु सरोवरम्।
तदेव निसृतं देशं हिन्दुस्थानं प्रचक्षते ।।

हिमालय से आरम्भ कर इन्दु सरोवर तक फैले भूभाग को हिन्दुस्तान कहा गया। हिमालय शब्द से 'ह' लेकर इन्दुसरोवर (जो कन्याकुमारी क्षेत्र में अव स्थित है) का इन्दु लेकर हिन्दु बना और उसका भूभाग हिन्दुस्तान नाम से अभिहित हुआ, न कि सिन्धु से सिन्धु सागर तक फैले भूभाग को सिन्धुस्थान, परिवर्तित नाम हिन्दुस्थान कहा गया। केवल उत्तर में सिन्धुनद नहीं ब्रह्मपुत्र नद भी है, परन्तु दोनों नद पूर्व पश्चिम क्षेत्र का ही प्रतिनिधित्व करते हैं, परन्तु हिमालय पूर्व से पश्चिम तक फैला रहने के कारण भारत की उत्तर सीमा को रेखांकित करता है। मेरुतन्त्र में दी गई परिभाषा अधिक तर्क संगत है। इस कारण हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय जन हिन्दू हुआ और उसकी भाषा हिन्दी ही बन सकती है। इसलिए भी वह प्राचीन भाषा संस्कृत की उत्तराधिकारिणी और भारत की अनेक भाषाओं के समन्वित रूप का प्रतिनिधित्व करती है।

यों तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम संस्कृत की ही पुत्री हैं, परन्तु मध्यकालीन राजनीतिक कारणों से हिन्दी से पृथक् दिखाई देती हैं। इसी कारण तमिलवासियों ने हिन्दी के प्रति विद्रोह राजनीतिक दबाव के कारण किया और उसको उकसाया अंग्रेजी से जुड़े प्रशासकों ने तथा उर्दू को आगे लाने वाले केवल वोट बटोरने के लालची कुछ राजनेताओं ने। आज इस देश और इस राष्ट्र के पास न तो कोई राष्ट्रीय जाति है और न राष्ट्रीय भाषा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है अशिक्षा और अज्ञानता की पराकाष्ठा,

जो लोकतन्त्र के लिए भी घातक सिद्ध हो रही है, हमारी आस्थाएँ विदेशों में बिक रही हैं, हमारी राष्ट्रीय मान्यता कंगाल हो चुकी है। हमारी वैचारिक सरिणी विदेशों के प्रति आस्था प्रकट करती है। यही दुष्परिणाम हैं हिन्दी की उपेक्षा किये जाने के। अब हम किस दृष्टि से अपने राष्ट्र से जुड़े रह सकते हैं इसलिए अब राष्ट्रीयता भी बिखर रही है।

संविधान की प्रथम पंक्ति में India that is Bharat लिखकर अब नये नामकरण भारत को भी दबाया जा रहा है। क्या अंग्रेजी बोलने वाला अंग्रेजी में Bharat नहीं बोल सकता ? वह अंग्रेजी में India ही बोलेगा। अब इन नामों में भी छीनाझपटी है। हिन्दुस्तान मिटा दिया गया, अब भारत को भी मिटाने की साजिश चल रही है और India को स्थापित करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

विदेशी सांस्कृतिक आक्रमण ने इस सोच को और महत्त्व दे दिया है। जब वेश के रंग के आधार पर सौभाग्य बिन्दू का सिन्दूरी रंग हरा, पीला, नीला बन सकता है तो क्या उसका प्रभाव चरित्र पर नहीं पड़ेगा ? अवश्य पड़ेगा, परिणामतः परिवार टूट रहे हैं, बलात्कार बढ़ रहे हैं, माता–पिता की बहिन भाई की सैक्स के आधार पर हत्याएँ हो रही हैं। भारत का गौरव नष्ट हो रहा है। यह सब दुष्परिणाम हैं हिन्दी की उपेक्षा करने के।

जो स्वाधीन राष्ट्र अपने लोकतन्त्र पर तो गर्व करे, परन्तु उससे पूछा जाय कि तुम्हारी भाषा क्या है? कोई उत्तर नहीं । भाषा–भूषा, खान–पान आचरण सब कुछ पराधीन मानसिकता के प्रतीक बन गये हैं।

जो देश अपनी मातृभाषा के साथ बलात्कार कर सकता है वह अपने गौरव की रक्षा नहीं कर सकता । दूसरी ओर वैश्वीकरण एक लॉलीपॉप के लालच में अपनी व्यापारिक नीति, औद्योगिक नीति सभी कुछ भुलाये जा रहा है और ऋण के लालच में (ऋणं कृत्रा घृतं पिवेत्) अनेकों प्रकार की परतन्त्रताओं के मकड़ जाल में फंसता चला जा रहा है, यह सब हिन्दी की उपेक्षा का ही कारण है।

हम १४ सितम्बर को हिन्दी का श्राद्ध और प्रारम्भ कर चुके हैं, यह अंग्रेजी तिथि ही हमने क्यों स्वीकार की । कोई भारतीय तिथि को हमने क्यों नहीं चुना। इसका प्रत्यक्ष उत्तर है कि हम हिन्दी का मान्यतानुसार श्राद्ध कर्म करने पर उतर आये हैं। वर्ष प्रतिपदा और विजयादशमी भी तो हमारे विजयपर्व है। हम उनका इतिहास भूले चुके, अब वे हमारे त्यौहार मात्र रह गये हैं।

आखिर हम अपने आपको कितना भुलायेंगे, भूलते–भूलते एक दिन हम आहार, निद्रामय, मैथुन आदि सामान्य धर्म वाले पशु मात्र शेष रह जायेंगे और जिस प्रकार ब्रिटिश काल में हमको पालतू पशु मानकर अविकसित देशों में खेती कराने के लिए पिंजड़ों में बन्द करके ले जाया जाता था, किसी दिन हमारी अर्थलोलुप सरकार हमारा पशु के रूप में निर्यात करेगी, मण्डियों में विक्रय करेगी। आवश्यकतानुसार होटलों में मानवगोश्त के लिए भी हमारा उपभोग कर सकती है। ऐसे अनेक उदाहरण आज भी देश में मिल सकते हैं। केरल की कन्याओं का विक्रय हो रहा है, आन्ध्र के बच्चों का अपहरण कर होटलों में विक्रय करने के अपराध में दो स्त्रियों को पकड़ा ही गया है।

हम किसी को क्यों दोष दें, भारत के राष्ट्रीय जन हिन्दू ने ही हिन्दी को अपमानित किया है। आज हिन्दी में सशक्त साहित्य का अकाल देखने को मिलता है। कवियों की संख्या तो लाखों में मिल जाएगी, परन्तु रामचरितमानस जैसा सशक्त काव्य आज देखने को नहीं मिलता। छात्रों में हिन्दी के प्रति मोह समाप्त होता जा रहा है; हमारे तीर्थ स्थल, तीर्थनदियाँ उपभोक्ता संस्कृति की शिकार बन गई हैं। हमारे आचार्य (धर्मगुरु) अपने बच्चों पर कॉन्वेन्ट संस्कृति मढ़ रहे हैं। कैसी विडम्बना का काल चल रहा है ?

फिर भी हम निराश नहीं हैं। उपभोक्ता संस्कृति अनियमित, दूषित जीवन को जन्म देती है। एक दिन आयेगा, जब हम इन सबसे ऊब कर अपनी ऋषि संस्कृति को अपनायेंगे और उस भाषा को महत्त्व देगे, जो लिखने-पढ़ने में एक अर्थात् कर्मण वाचा एक होगी। जो लिखने–पढ़ने में विषम अर्थात् कर्मणा वाचा दोनों में परस्पर विरुद्ध भाषा का परित्याग करेंगे। भारत से हिन्दी नहीं हटाई जा सकती और न उसकी संस्कृति मिटाई जा सकती है क्योंकि वह गाँवों गिरिकन्दराओं में सुरक्षित है। वह एक न एक दिन अवश्य प्रभावशाली बनेगी।

–बिहारीपुरा, वृन्दावन

हिन्दी के साथ बलात्कार क्यों ?

✍ डा. कृष्णलाल

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा/राजभाषा तो है ही, विश्वभाषा बनने की योग्यता भी रखती है। यह संसार में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है (देखिए भारत–सरकार के राजभाषा–विभाग की पत्रिका 'राजभाषा भारती' अक्तूबर/दिसबर १९९७ अंक में प्रकाशित डा. जयन्तीप्रसाद नौटियाल का लेख)। यह पूर्णतया विकसित, वैज्ञानिक, सरल, सुबोध, समर्थ और सक्षम है। यह भारत के बाहर भी विश्व के १३० विश्वविद्यालयों में उच्च स्तर तक पढ़ाई जाती है।

हिन्दी का मूल प्रेरणा–स्रोत विश्व की सभी सभ्य भाषाओं की जननी देवभाषा संस्कृत है। वह अपनी शब्दावली मुख्य रूप से संस्कृत से अथवा अन्य भारतीय भाषाओं से लेती है। (क्योंकि सबकी मूल प्रकृति अभिन्न है)–ऐसा प्रावधान संविधान में भी राजभाषा हिन्दी के लिए निर्दिष्ट है, क्योंकि संविधान–निर्माता मनीषी हिन्दी की इस मूल प्रकृति को समझते और स्वीकारते थे। किन्तु आजकल, अज्ञानवश नहीं, जान–बूझकर हिन्दी के साथ बलात्कार किया जा रहा है।

उर्दू तो हिन्दी की ही एक विशेष शैली है जिसका मुख्य भेद यही है कि उर्दू का मुख्य प्रेरणा स्रोत अरबी–फारसी है। परन्तु स्थिति यह हो गई है कि, विशेष रूप से हिन्दी के समाचारपत्रों तथा आकाशवाणी–दूरदर्शन में, अनावश्यक रूप से विपरीत प्रकृति वाली भाषाओं (मुख्य रूप से अंग्रेजी, अरबी, फारसी) के शब्द बलपूर्वक ठूँसकर राजभाषा को विकृत किया जा रहा है, उसका स्वरूप बिगाड़ा जा रहा है। शासकीय नरमी के कारण राजभाषा पर "गरीब की जोरू सबकी भाभी" वाली कहावत चरितार्थ हो रही है।

क्या अंग्रेजी में कभी प्रधानमंत्री शब्द का प्रयोग देखा है ? परन्तु हिन्दी के समाचार लेखक/वाचक इतने ढीठ हो गए हैं कि धड़ल्ले से पी.एम. और पी. एम.ओ का प्रयोग किए जा रहे हैं। हिन्दी के जिन पाठकों के हाथ में समाचारपत्र जाता है उनकी भाषा का, उनके भाषा–ज्ञान का, और उनकी भावनाओं का ध्यान रखे बिना समाचारपत्रों के अधिकारी ऐसे शब्द जान–बूझकर घुसेड़े जा रहे हैं।

जहाँ हिन्दी के सरल, सुललित और प्रचलित शब्दों का प्रयोग सुविधापूर्वक हो सकता है, वहाँ भी ये अधिकारी बेमेल खिचड़ी भाषा का ही प्रयोग करते हैं जिससे राजभाषा का स्वरूप बिगड़ता है। उदाहरण के लिए एक दैनिक समाचारपत्र में प्रकाशित एक समाचार का एक वाक्य उद्धृत है–"इस मौके पर पूर्व प्रधानमन्त्री चन्द्रशेखर ने उन्हें अपनी खिराजे अकीदत पेश करते हुए कहा"। इसी समाचारपत्र में प्रकाशित एक अन्य वाक्यांश है "मिशन की बजाये प्रोफेशनलिज्म"। पाठक स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि यह कौन सी, कहाँ की हिन्दी है। कहीं सरलीकरण अपेक्षित हो भी, तो इसका अर्थ यह नही कि दूसरी भाषाओं के अनावश्यक शब्द घुसेड़कर दुर्बोध बना दिया जाए।

हमें बचपन में अपनी अंग्रेजी सुधारने के लिए समाचारपत्र पढ़ने को कहा जाता था। किन्तु हिन्दी समाचारपत्र तो केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा

हर सिंगार

निर्धारित मानक हिन्दी का उपहास ही करते प्रतीत होते हैं। क्या हिन्दी समाचारपत्रों को छोड़कर अन्य भाषाओं के समाचारपत्र भी ऐसी घटिया, स्तरहीन, खिचड़ी, भाषा का प्रयोग करते हैं?

एक और दुर्भाग्यपूर्ण प्रवृत्ति भी समाचारपत्रों में प्रकाशित व्यापारिक विज्ञापनों में देखने में आ रही है। वे विज्ञापनों में हिन्दी के शब्द और वाक्यांश या वाक्य रोमन लिपि में लिखते हैं मानो हिन्दी की अपनी कोई लिपि ही न हो अथवा हिन्दीभाषी उस लिपि में पढ़ ही न पाते हों। हमारे व्यापारियों और विज्ञापनदाताओं को यह बात भली प्रकार शान्त मन से सोचनी चाहिए कि वे जिन करोड़ों उपभोक्ताओं के लिए विज्ञापनों का प्रसारण करवाते हैं, उनकी भाषा कैसी है ?

हिन्दी ने दूसरी भाषाओं के हजारों शब्द लिए हैं ; परन्तु समाचारपत्रों में प्रयुक्त विरोधी प्रकृति वाले कुछ थोड़े ऐसे शब्द नीचे दिए जा रहे हैं जिनके स्थान पर प्रयोजनीय (कोष्ठक में दिए हुए) शब्द हिन्दी में हैं। पाठक स्वयं इनकी हिन्दी–प्रकृति, सुबोधता और ग्राह्मता का बोध कर सकेंगे–

महज (केवल), तहत (अन्तर्गत), फख्र (गर्व), गर्मजोशी (भावपूर्ण), पेशकश (प्रस्ताव), तलब (माँग), हैरतअंगेज (आश्चर्यजनक), पेशेनजर (दृष्टिगत), करार (प्रतिज्ञा), गुजारिश (प्रार्थना), अहम (मुख्य), निजात (छुटकारा), मुद्दा (विषय, ज्वलन्त समस्या), सूबा (प्रदेश), मौकामुआयना (जाँच–स्थल), मौजूदगी (उपस्थिति), शिरकत (सहभागिता), स्वर्ण हर्फों में (स्वर्ण अक्षरों में), सदरे मुल्क (राष्ट्राध्यक्ष,राष्ट्रपति), इल्म (ज्ञान), इज़हार (प्रकट होना), वज़ीरे–आज़म (प्रधानमंत्री), मसला (समस्या), नतीजतन (परिणामस्वरूप), बरकरार (यथावत्, विद्यमान)।

इस प्रकार से बलपूर्वक हिन्दी में प्रयुक्त किए जा रहे अनावश्यक फारसी–अरबी के शब्दों की एक लम्बी सूची दी जा सकती है जिनके द्वारा जान–बूझकर हिन्दी का स्वरूप बिगाड़ा जा रहा है। यह अनुचित प्रवृत्ति रोकी जानी चाहिए।

इसी प्रकार हिन्दी में अनावश्यक रूप से प्रयुक्त किए जा रहे कुछ अंग्रेजी शब्द नीचे दिए जा रहे हैं:– सुप्रीमकोर्ट (उच्चतम न्यायालय), वाकआउट (बहिर्गमन), मैच ड्रा (मैच अनिर्णीत), फायरिंग (गोलीबारी), ट्रेन (रेलगाड़ी), पेज (पृष्ठ), ग्रेटर कैलाश भाग वन (भाग एक), सी.बी.आई (केन्द्रीय जाँच ब्यूरो), एक्जाम गाइड (परीक्षा निर्देशिका), डिस्पले (प्रदर्शन)। यह सूची भी बहुत लम्बी हो सकती है।

हिन्दी के स्वरूप को शब्दों के अशुद्ध रूप लिख कर भी बिगाड़ा जा रहा है, जैसे–व्यावसायिक (व्यवसायिक शुद्ध,), सहस्राब्दि (सहस्राब्दी–शुद्ध), मनोचिकित्सा (मनःचिकित्सा–शुद्ध), पुनर्स्थापना (पुनःस्थापना–शुद्ध) इत्यादि।

शीर्षस्थ महानुभावों का इस विषय में जागरूक होना बहुत आवश्यक है। भारत–सरकार द्वारा निर्धारित राजभाषा हिन्दी का मानक स्वरूप और केन्द्रीय हिन्दी–निदेशालय द्वारा अंग्रेजी में प्रकाशित आधुनिक हिन्दी के मौलिक व्याकरण की पुस्तक ''ए बेसिक ग्रामर ऑफ माडर्न हिन्दी'' हिन्दी में प्रकाशित करके उसका व्यापक प्रचार अपेक्षित है।

विश्वनीड,ई. ६३७, सरस्वती विहार, दिल्ली

अनुगूँज

अब हिन्दी को दिग्विजयी ललकार बनाना होगा,
शब्द शब्द को ताण्डव की टंकार बनाना होगा।
इसके बिना जलालत की जंजीर नहीं टूटेगी,
हिन्दी वालों हिन्दी को हथियार बनाना होगा।

- पं. नरेन्द्र मिश्र

हर सिंगार

हिन्दी राजभाषा क्यों नहीं बनी ?

डा. मित्रेशकुमार गुप्त

प्रयोग की दृष्टि से भाषा के दो रूप होते हैं। पहला जनभाषा तथा दूसरा राजभाषा। जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा जनभाषा तथा शासन के कार्यो में प्रयुक्त होने वाली भाषा राजभाषा कहलाती है। यह आवश्यक नहीं है कि जनभाषा ही राजभाषा हो। मुसलमान तथा मुगल काल में भारत की जनभाषा हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाएँ जनभाषा थी, किन्तु शासन की भाषा उर्दू फारसी थी। इसी प्रकार ब्रिटिश शासन में भारत की जनभाषा हिन्दी व प्रादेशिक भाषाएँ तथा राजभाषा के पद पर अंग्रेजी आसीन थी।

स्वाधीनता के उपरांत विदेशी शासन के बोझ को अपने ऊपर से उतार फेंकने के बाद जब भारत की राजभाषा को बदलने का प्रश्न आया तो भारतीय संविधान सभा ने जिसमें सभी प्रदेशों के प्रतिनिधि थे। १४ सितम्बर १६४६ को भारत के सर्वाधिक भाग में बोली जाने वाली तथा स्वाधीनता आंदोलन की प्रमुख भाषा हिन्दी को देश की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया। संविधान के अनुच्छेद ३४३ (१) में घोषणा की गई कि "संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी तथा संघ के शासनिक प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।" संविधान में आगे यह भी कहा गया कि संविधान लागू होने की १५ वर्ष की अवधि तक अंग्रेजी उन सभी कामों में प्रयोग में आती रहेगी जिनके लिए वह उस समय आती रही थी। लेकिन इस बीच हिन्दी का विकास इस प्रकार किया जाएगा कि राजकाज के अनुरूप तैयार होने पर २६ जनवरी १६६५ के बाद वह पूरी तरह से अंग्रेजी का स्थान ले ले। इसके लिए संविधान की ८वीं अनुसूची में उल्लिखित सभी भारतीय भाषाओं के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए हिन्दी को समृद्ध करें। इसके अनुसार एक नई हिन्दी का स्वरूप पनपने लगा और संघ सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों और उनके द्वारा राज्य सरकारों से होने वाले पत्राचार, प्रशासनिक एवं संसद की रिपोर्टों, राज्यपालों व उच्चतम न्यायालयों की नियुक्ति आदि के कार्यों में हिन्दी के प्रयोग को बढावा दिया जाने लगा।

हिन्दी को बढ़ावा देने की सारी शक्तियाँ राष्ट्रपति महोदय को प्रदान की गई। अतः संविधान की इस मंशा को लागू करने के लिए राष्ट्रपति जी ने १६५२, १६५५ एवं १६६० में अनेक आदेश जारी किए जो हिन्दी के चरणबद्ध विकास के लिए महत्त्वपूर्ण थे। साथ ही सही और समुचित दिशा निर्देश मिलता रहे, इसके लिए समय–समय पर विद्वानों, विशेषज्ञों की अनेक समितियाँ और आयोग बनाए गए, जिनकी सलाह पर आगे का काम सुचारू हो जाए। इसी दृष्टि से १६५५ में श्री बी.जी.खेर की अध्यक्षता में राजभाषा आयोग का गठन किया गया जिसकी सिफारिशों पर संसद की एक समिति ने विचार किया और उसके आधार पर राष्ट्रपति जी ने २७ अप्रेल, १६६० को हिन्दी प्रयोग सम्बन्धी व्यापक आदेश जारी किए, जिनकी महत्त्वपूर्ण बातें थी–वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का निर्माण करना, संविधिक नियमों, विनियमों, आदेशों का अनुवाद करना, एक मानक शब्द–कोश का निर्माण करना तथा हिन्दी का सेवाकालीन प्रशिक्षण आरम्भ करना।

हिन्दी के लिए की गई इन व्यवस्थाओं के प्रति

हर सिंगार

कुछ अहिन्दी भाषी लोगों के मस्तिष्क में अशान्ति और आंशकाएँ पैदा होने लगी कि अब हिन्दी उन पर लादी जाएगी, अतः उन्होंने इसका विरोध करना आरम्भ कर दिया। उनकी संतुष्टि के लिए हिन्दी को राजभाषा के रूप में लागू करने की अवधि से २ वर्ष पूर्व १९६३ में राजभाषा अधिनियम लाया गया जिसके अनुसार यह व्यवस्था की गई कि संविधान लागू होने के १५ वर्ष के बाद भी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा संघ के उन सभी राजकीय प्रयोजनों के लिए जिनके लिए वह अभी काम में आ रही थी और संसद का भी कामकाज चलाने के लिए प्रयोग में लायी जाती रहेगी। किन्तु अहिन्दी भाषियों को इससे भी संतोष नही हुआ और उन्होंने हिन्दी को बढ़ावा देने के सरकारी प्रयास का विरोध जारी रखा। इस पर १९६७ में राजभाषा अधिनियम में संशोधन कर एक विशेष व्यवस्था यह कर दी गई कि हिन्दी ही संघ की राजभाषा होगी, किन्तु अंग्रेजी के प्रयोग की छूट तब तक बनी रहेगी जब तक गैर हिन्दी भाषी राज्यों के विधान मण्डल अंग्रेजी को हटाने का संकल्प पारित नहीं करते। इस संशोधन से अंग्रेजी के अनंत काल तक जारी रहने की और हिन्दी को पीछे हटाने की पूरी छूट मिल गई।

इसके विपरीत हिन्दी भाषी क्षेत्रों का हिन्दी को राजभाषा के रूप में लागू करने का दबाव केन्द्रीय सरकार पर निरंतर बना रहा। इससे अन्तरराष्ट्रीय जगत में भी स्वाधीन भारत की अपनी कोई राजभाषा न होने के कारण जग हँसाई होती रही, तब पुनः राजभाषा प्रयोग के दायित्व को वहन करते हुए इसके विकास की दिशा स्पष्ट करने के लिए १८ जनवरी १९६८ को संसद के दोनों सदनों ने एक संकल्प पारित किया। जिसकी सबसे मुख्य बात यह थी कि हिन्दी के प्रचार, विकास और संघ के विभिन्न सरकारी प्रयोजनों के लिए इसके उत्तरोतर प्रयोग में गति लाने के लिए प्रत्येक वर्ष गहन और विस्तृत कार्यक्रम तैयार करने और उसे कार्यान्वित करने का दायित्व केन्द्रीय सरकार को सौंपा गया। इस अनुपालन में गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा हर वर्ष एक वार्षिक कार्यक्रम तैयार किया जाता है जिसमें केन्द्रीय सरकार के सभी कार्यालयों में एक वर्ष में हिन्दी के काम में प्रगति करने के लिए लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं।

इसके पश्चात् केन्द्रीय सरकार ने २८ जून १९६७ को राजभाषा नियम राजपत्र में प्रकाशित किए जिनके अनुसार हिन्दी के प्रयोग हेतु पूरे देश को ३ भाषा क्षेत्रों में बाँटा गया– (क) क्षेत्र में बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली और अंडमान निकोबार, (ख) क्षेत्र में गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब एवं संघ शासित चंडीगढ़, तथा (ग) क्षेत्र में अन्य शेष सभी राज्य रखे गए। राजभाषा अधिनियम की धारा ३ (३) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाएगा।

इन सब व्यवस्थाओं के बावजूद भी केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है। यद्यपि कहीं–कहीं मूल पत्राचार भी हिन्दी में होने लगा है, किन्तु शासन के ५० वर्षों के उपरान्त हिन्दी आज भी उपेक्षा की वस्तु है और अनेक विभागों में अंग्रेजी मुख्य भाषा बनी हुई है। १९९१ की जनगणना के अनुसार भारत में अग्रेजी बोलने वाले लोगों की संख्या लगभग २ प्रतिशत है। आज देश पर इन्हीं २ प्रतिशत लोगों का शासन है तथा शेष ९८ प्रतिशत लोग भारतीय शासन में भाग लेने से वंचित रह जाते हैं। इससे संविधान के अनुच्छेद १९ (१) के अन्तर्गत प्रदत्त कोई वृत्ति/आजीविका अपनाने के नागरिकों के अधिकारों का हनन होता है। इसके अतिरिक्त यह नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों के अन्तरराष्ट्रीय प्रतिज्ञा पत्र जिस पर भारत ने भी १९७८ में हस्ताक्षर किए थे, के अनुच्छेद २५ का भी उल्लंघन है।

अंग्रेजी के कारण देश में जो दो वर्ग–अभिजात

–शेष पृष्ठ ६३ प

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए आर्य समाज कुछ करे

✍ प्रवीण कुमार

जब सन् १९४६ में भारत का संविधान स्वीकृत हुआ, तब उसमें हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया। यह भी प्रावधान किया गया कि २४ वर्ष बाद अंग्रेज़ी का स्थान हिन्दी ले लेगी और सरकार के (विधानांग, कायगि और न्यायांग) के सब कार्य हिन्दी में होंगे।

उस समय मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय के डा. विजयेन्द्र स्नातक से कहा था– 'पन्द्रह साल की यह लम्बी अवधि क्यों रखी गई है ?'

स्नातकजी हिन्दी विषयक किसी सरकारी सलाहकार समिति के सदस्य थे। उन्होंने उत्तर दिया–'१५ साल तो बहुत थोड़ी अवधि है। जापान में तो भाषा को इस प्रकार बदलने में ५० साल लगे हैं।'

५५ साल हो गये।

यहाँ ५५ साल हो गये हैं ; हिन्दी को सरकारी दफ्तरों में घुसने ही नहीं दिया गया। वह दरवाज़े के बाहर खड़ी है। श्री नेहरू जैसे कश्मीर में एक नासूर बना गये, वैसे ही राजभाषा के क्षेत्र में भी गाड़ी को दलदल में फंसा गये हैं। कश्मीर में अनुच्छेद ३७० उनकी देन है, तो राजभाषा के क्षेत्र में वह घोषणा कर गये हैं कि भारत का एक ही राज्य जब तक हिन्दी को राजभाषा बनाने का विरोध करेगा, तब तक हिन्दी को राजभाषा नहीं बनाया जायेगा; हिन्दी को किसी पर थोपा नहीं जायेगा। एक नहीं, भारत के अनेक राज्य हिन्दी को राजभाषा न बनने देने के लिए कमर कसे हैं।

भाषा ही पशु को मनुष्य बनाती है।

मनुष्य जनमते समय पशु ही होता है। रोने हंसने के सिवाय उसकी कोई भाषा नहीं होती। वह धीरे–धीरे भाषा सीखता है। पशु पक्षी अपनी–अपनी भाषाएँ सीखते हैं। उनकी सीमाएँ बहुत अल्प हैं। मनुष्य की भाषा बहुत विस्तृत और सूक्ष्म है। जितना विकसित मानव मन होगा, उतना ही विशाल उसका शब्दकोष होगा।

भाषा मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है। किसी भी एक भाषा को जानने वाले लोग एक दूसरे के विचारों को समझ पाते हैं और एक दूसरे से आत्मीयता अनुभव करते हैं। हिन्दी भाषी, बंगाली, गुजराती, मराठे, तमिल, मलयाली, उड़िया, असमी लोग भाषा के आधार पर ही एक हुए हैं।

स्वाधीनता आन्दोलन में भाषा हिन्दी थी

जब भारत पराधीन था, तब अंग्रेज़ों के शोषक, अत्याचारी शासन से मुक्ति पाने के लिए सभी भारतवासियों को एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता अनुभव हुई थी। बंगालियों, मराठों और पंजाबियों आदि को अनुभव हुआ था कि भारत एक राष्ट्र है और सब राष्ट्रवादियों को एक भाषा सीखनी और बोलनी चाहिए।

स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी गुजराती थे; उन्होंने अपनी बात कहने के लिए हिन्दी को अपनाया। श्री तिलक और सावरकर मराठे थे, उन्होंने हिन्दी का समर्थन किया। लाला लाजपतराय और सरदार भगतसिंह पंजाबी थे; उन्होंने हिन्दी अपनाई । बंगाली सुभाषचन्द्र बोस हिन्दी में भाषण देते थे। तमिल चक्रवती राजगोपालाचार्य ने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का कार्य संभाला था। १५ अगस्त १९४७ तक भारत के सभी स्वतंत्रता संग्रामियों की अघोषित राष्ट्रभाषा हिन्दी रही। गांधीजी की मुस्लिमतोषी नीति से हिन्दी–हिन्दुस्तानी का विवाद उठा, परन्तु अंग्रेजी अपनाने या क्षेत्रीय भाषाओं में से किसी को या सबको राष्ट्रभाषा बनाने की कोई बात ही नहीं उठी।

पर १५ अगस्त १९४७ और २६ जनवरी १९४६ के

बीच बहुत कुछ बदल गया था। स्वतंत्रता संग्राम जीता जा चुका था और लूट में हिस्सा लेने की मनोवृत्ति पनप गई थी। गैर हिन्दीभाषी प्रदेशों को लगा कि यदि हिन्दी राजभाषा बन गई, तो हिन्दीभाषी लोग लाभ में रहेंगे। अहिन्दी भाषियों को हिन्दी सीखने में मेहनत करनी पड़ेगी।

इसका सीधा हल यह हो सकता था कि अहिन्दी भाषी लोगों को यह रियायत दी जाती कि वे हिन्दी में २५ प्रतिशत अंक पा कर भी ३३ प्रतिशत अंक पाने वाले हिन्दी भाषियों के समकक्ष माने जायेंगे। पर वह न करके यह घातक आश्वासन दिया गया कि जब तक एक भी अहिन्दी भाषी प्रदेश चाहेगा, हिन्दी को भारत की राजभाषा बनने से रोके रहेगा।

हिन्दीभाषी राज्य दोषी हैं

हिन्दी समूचे भारत की राजभाषा बने या न बने, आज बने या सौ बरस बाद बने, परन्तु हिन्दीभाषी राज्यों को हिन्दी में कामकाज करने से कौन रोकता है ? हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, यह इतना बड़ा प्रदेश अपने आप में विशाल देश है, जो फ्रांस, जर्मनी, इटली और स्पेन के सम्मिलित क्षेत्र से भी बड़ा है। इसकी भाषा हिन्दी है। पर यहां के नगरों में से गुज़रें, तो दूकानों पर लगे नाम पट्टों को देख कर लगेगा कि हम इंग्लैण्ड के किसी शहर में से गुजर रहे हैं। यहां कानून अंग्रेज़ी में बनते हैं; उच्च न्यायालयों में बहस अंग्रेज़ी में होती है ; कार्यालयों में फाइलों पर टिप्पणियां अंग्रेज़ी में लिखी जाती हैं। अंग्रेज़ी का रौब गया नहीं है।

हिन्दीभाषी मंत्री हिन्दी पर गर्व करें

बहुत से कम अंग्रेज़ी जानने वाले लोग भी मंत्री बन गये हैं; पर वे अपने अंग्रेज़ी न जानने पर संकुचित रहते हैं। संकोच की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्हें अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहिए और अंग्रेज़ी का रौब छांटने वाले अफसर को यह अनुभव कराना चाहिए कि मंत्री अफसर से बड़ा होता है और अफसर को मंत्री की भाषा सीखनी होगी। जब मुलायमसिंह केन्द्र में रक्षा मंत्री बने, तब उन्होंने यही किया था।

परन्तु अटलबिहारी प्रधानमन्त्री बन कर यह नहीं कर सके। मुगलकाल में पराजित दुर्बलचित्त हिन्दू धर्मान्तरण करके मुसलमान बनते रहे; वर्तमान में हिन्दी और हिन्दुत्व के नाम पर चुनाव लड़ने वाले नेता सांसद बनते ही भाषान्तरण करके अंग्रेज़ बन गये और दूसरों से लिखवाई हुई अंग्रेज़ी में संसद में और दूरदर्शन पर दहाड़ने लगे। कितने मेरुदंडहीन थे ये नेता (या अभिनेता) ।

राजा कालस्य कारणम्; महाभारतकार ने ठीक ही कहा है। राजा समय को बनाता बिगाड़ता है, समय राजा को बनाता बिगाड़ता नहीं है। पर राजा हो तो !

मतदाता भी दोषी

नेताओं को दोष क्या दिया जाये ? नेताओं को चुनते हम हैं। उनके गुणों पर रीझ कर उनके दोषों को अनदेखा कर देते हैं। परमात्मा ने हमें दो आँखें दी हैं–एक गुण देखने के लिए, एक दोष को देखने के लिए । पर हम भक्त हैं और भक्त अन्धे होते है; या कहना चाहिए कि आराध्य के गुणों को देख कर अन्धे हो जाते हैं।

हिन्दी भाषी प्रदेश के जो नेता विधानसभा या संसद में अंग्रेजी में भाषण दें–एक बार भी भाषण दें उनके विषय में यह माना जाये कि उन्होंने हिन्दी का अपमानित किया है, हिन्दी से विश्वासघात किया है उन्हें किसी दशा में वोट न दिया जाये।

क्या यह विश्वासघात नहीं है, कपट नहीं है कि जब वे जनसभाओं में वोट मांगने आते हैं, तब तो हिन्दी में भाषण देते हैं और जब संसद में या दूरदर्शन पर बोलते हैं, तब भारतवासियों को नहीं, अपने आक़ा इंग्लैण्ड और अमेरिकावासियों को सुनाने के लिए बोलते हैं ? सभी राजनीतिक दल समान रूप से

इस व्याधि के शिकार हैं–क्या कांग्रेस, क्या भाजपा, क्या कम्यूनिस्ट।

नौकरशाहों का निहित स्वार्थ

अंग्रेज़ी को बनाये रखने में नौकरशाहों का निहित स्वार्थ है। वे हिन्दी सीखना ही नहीं चाहते। उनके मां–बापों ने भारी धनराशि खर्च करके उन्हें अंग्रेजी सिखाई है। यदि हिन्दी राजभाषा बन जाये, तो गाड़ी उल्टी चल पड़ी समझिये। जो डिब्बे सबसे आगे थे, वे सबसे पीछे हो जायेंगे। यह वे नहीं होने देना चाहते।

सन् १९५५ में राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू की पहल पर भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए हिन्दी शिक्षण योजना शुरू की थी। ४६ साल में न जाने कितने लाख सरकारी कर्मचारी हिन्दी सीख कर हिन्दी में कोई काम किये बिना सेवानिवृत्त हो गये हैं। यह योजना किसकी आंखों में धूल झोंकने के लिए है ?

संस्कृत या हिन्दी

संविधान सभा में दो पक्ष थे–१. संस्कृत समर्थक, और २. हिन्दी समर्थक । हिन्दी एक वोट से जीत गई। यदि दो हिन्दी समर्थक कम होते, तो संस्कृत भारत की राजभाषा बन गई होती। तब उसका वैसा विरोध न हुआ होता, जैसा कि बाद में हिन्दी का हुआ। परन्तु मौलाना आजाद, और उनसे भी बढ़ कर श्री नेहरू संस्कृत के घोर विरोधी थे। संस्कृत हिन्दुओं की धर्मभाषा समझी गई।

अब क्या हो ? संविधान कहता है कि हिन्दी भारत की राजभाषा बने। नेहरू जी का आश्वासन कहता है कि हिन्दी किसी पर थोपी न जाये। पर इस आवश्वासन का फलितार्थ यह है कि अंग्रेजी हिन्दी प्रदेश पर थोपी जाये, अनन्तकाल तक। यह स्थिति असह्य है।

हिन्दीभाषियों को भी कुछ कठोर रुख अपनाना होगा। गुजरात, और महाराष्ट्र हिन्दी के विरोधी नहीं हैं। बंगाल, असम और उड़ीसा में जो थोड़ा बहुत विरोध है, उसे संभाला जा सकता है। आंध्र प्रदेश में तो सन् १९४७ से पहले उर्दू राजभाषा थी, जो हिन्दी ही है। वहां के लोग हिन्दी समझते बोलते थे। आंध्र प्रदेश बनने के बाद तेलुगु ने हिन्दी को अपदस्थ कर दिया है। बाकी बचते हैं–नागालैण्ड, मिजोरम, तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक। इनमें पहले तीन ही हिन्दी के उग्र विरोधी हैं। यदि सम्मिलित प्रयत्न किया जाये, तो ये तीन अलग-थलग पड़ जायें, ऐसी स्थिति बनाई जा सकती है।

आर्य समाज इसमें सक्रिय कदम उठा सकता है। हिन्दी (आर्यभाषा) का प्रचार करना आर्यसमाज का कर्त्तव्य है। स्वामी दयानन्द ने "सत्यार्थ प्रकाश" हिन्दी में इसलिए लिखा था कि अधिक से अधिक लोग इसे पढ़ें। अब अधिक से अधिक लोगों को प्रेरणा देनी चाहिए कि वे इसे हिन्दी में पढ़ें।

डी.ए.वी. शिक्षा संस्थाओं का जाल सारे भारत में बिछा है। यदि वे चाहें, तो हिन्दी के प्रचार प्रसार में भारी योग दे सकती हैं। परन्तु इसके लिए उन्हें अंग्रेजियत का मोह छोड़ना होगा।

उपहार जनरल स्टोर,
रेलवे रोड़, हरिद्वार।

हिन्दी भविष्य है भारत का,
जन-गण-मन की अभिलाषा है।
गांधी सुभाष वाली घोषित,
आजादी की परिभाषा है।
हिन्दी भाषा का तिरस्कार,
इस मिट्टी से गद्दारी है।
ये है जयकार तिरंगे की,
भारत माता की आशा है।
– पं. नरेन्द्र मिश्र

हर सिंगार

उच्च शिक्षा एवं शोध का माध्यम

डा. रवि शर्मा

उच्च शिक्षा एवं शोध का माध्यम कौन सी भाषा हो, इस विषय पर चिंतन करने से पूर्व यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि शिक्षा, उच्च शिक्षा एवं शोध से हमारा क्या तात्पर्य है तथा भारत के संदर्भ में इसके माध्यम के रूप में हमारे सम्मुख कौन–कौन सी भाषाएँ विकल्प के रूप में उपस्थित हैं ? इस सम्बन्ध में सांविधानिक स्थिति क्या हैं ? इस पर भी हम विचार करेंगे।

शिक्षा

शिक्षा का अर्थ है–' ज्ञान प्राप्त करने की विधि' दूसरे शब्दों में, 'विधिवत ढंग से प्राप्त ज्ञान शिक्षा कहलाता है।' यह ज्ञान पढ़कर या सुनकर प्राप्त किया जाता है। इस ज्ञान को प्राप्त करने के दो तरीके हो सकते हैं–औपचारिक तथा अनौंपचारिक । इसी आधार पर शिक्षा भी दो प्रकार की होती है– औपचारिक शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा। औपचारिक शिक्षा प्रायः किसी विद्यालय, विश्वविद्यालय, संस्थान आदि में पुस्तकों की सहायता से किसी शिक्षक द्वारा प्रदान की जाती है, जबकि अनौपचारिक शिक्षा व्यक्ति प्रायः घर पर ही स्वाध्याय से या आसपास के परिवेश से प्राप्त अनुभवों से आजीवन प्राप्त करता रहता है। आजकल शिक्षित व्यक्ति उसी को कहा जाता है, जो पढ़ने–लिखने के कौशल से युक्त हो तथा किसी शिक्षा–संस्थान से औपचारिक शिक्षा और प्रमाण पत्र, डिग्री आदि प्राप्त कर चुका हो।

विद्या

शिक्षा के पर्याय के रूप में हमारे देश में प्राचीनकाल से ही एक अन्य शब्द प्रचलित है–विद्या। वास्तव में, विद्या शिक्षा का पर्याय नहीं है, अपितु उसका व्यापक–विस्तृत आयाम है। इसी कारण कहा गया–'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या वह है जो मुक्त करे। मुक्त किससे ? हमारे सीमित–संकुचित दृष्टिकोण से, हमारी संकीर्ण मानसिकता से, हमारे जड़–प्रतिबद्ध चिंतन से मुक्ति की स्थिति ही विद्यावान की पहचान है। कितना विराट, कितना सम्पूर्ण व्यक्तित्व बनेगा ऐसी विद्या की प्राप्ति से। इसी विद्या के परिणामस्वरूप मनुष्य को उसके चारों पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। कहा भी गया है–

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति, धनाद् धर्मं ततः सुखम्।।

अर्थात् विद्या विनय देती है, विनय से पात्रता (योग्यता) प्राप्त होती है। पात्रता से धन, धन से धर्म तथा धर्म से सुख मिलता है। विद्या के इस महत्त्व को स्वीकार करते हुए ही भर्तृहरि ने कहा–

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न–गुप्तं धनम्,
विद्या भोगकरी, यशः सुखकरी, विद्या गुरुणां गुरुः।
विद्या बंधुजनो विदेश–गमने, विद्या परं दैवतम्,
विद्या राजसु पूजिता, न तु धनम्, विद्या–विहीनः पशुः।।(नीतिशतकम्)

उपनिषदों में दो प्रकार की विद्या का वर्णन किया गया है–परा विद्या तथा अपरा विद्या। किंतु इस समय हम विद्या पर नहीं अपितु शिक्षा पर विचार कर रहे हैं, अतः एक बार पुनः शिक्षा की ओर लौटते हैं। शिक्षा के वर्तमान ढाँचे में दो स्तरों पर शिक्षा प्रदान की जाती है–विद्यालय के स्तर पर तथा महाविद्यालय, विश्वविद्यालय स्तर पर।

उच्च शिक्षा

आधुनिक संदर्भों में जब हम उच्च शिक्षा की बात करते हैं, तो हमारा तात्पर्य महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में प्रदान की जाने वाली स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा से होता है। उच्च शिक्षा

का महल विद्यालय शिक्षा की नींव पर खड़ा है। विद्यालय में विद्यार्थी को जितना ज्ञान दिया जाता है, उसका जितना बौद्धिक और मानसिक विकास किया जाता है, उसकी सोचने–समझने की शक्ति को जितना विकसित किया जाता है, उच्च शिक्षा में विद्यार्थी को उससे आगे ले जाने का प्रयास किया जाता है। प्रो. पी. एन. श्रीवास्तव ने प्राथमिक शिक्षा (विद्यालयीय शिक्षा) और उच्च शिक्षा के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को इस प्रकार स्पष्ट किया है–"यदि हमारी प्राथमिक शिक्षा कमज़ोर है, तो उच्च शिक्षा अच्छी नहीं हो सकती तथा यदि हमारी उच्च शिक्षा कमज़ोर है तो प्राथमिक शिक्षा अच्छी नहीं हो सकती।"

उच्च शिक्षा का लक्ष्य

उच्च शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य है–सम्पूर्ण व्यक्ति का निर्माण। 'सम्पूर्ण व्यक्ति' एक आदर्श स्थिति है। संसार में कोई भी सम्पूर्ण नहीं हो सकता, किंतु हमें जीवन में आगे बढ़ने के लिए उच्च लक्ष्य रखना चाहिए। हिंदी के मूर्धन्य समीक्षक तथा चिंतक आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "जो व्यक्ति अपना लक्ष्य जितना ऊँचा रखता है, उसका तीर उतनी ही दूर जाता है।" मनुष्य की श्रेष्ठता इसी में है कि वह पूर्णता पाने का प्रयास करे। उच्च शिक्षा इसमें मनुष्य की सहायता करती है। प्रो. तारकनाथ बाली के शब्दों में, "भौतिकवादी तथा आध्यात्मिक मूल्यों के संश्लेषण से ही आदर्श पूर्णता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।" उच्च शिक्षा चिंतन, विश्लेषण तथा विवेचन के लिए प्रेरित करती है, तथा ज्ञान को व्यवहार में लागू करने में सक्षम बनाती है, मानव जीवन के मूलभूत प्रश्नों, जिज्ञासाओं से जूझने, अबूझ पहेलियों को सुलझाने में समर्थ बनाती है, सजग, सतर्क दायित्व बोध से युक्त संवेदनशील, उदार, उदात्त मानव का विकास करती है। परंतु आज हमारे सामने प्रश्न यह है कि क्या हमारी आधुनिक उच्च शिक्षा यह सब कर पा रही हैं ? उत्तर आप जानते ही हैं। आज की उच्च शिक्षा मात्र पुस्तकीय ज्ञान देकर या सैद्धांतिक व्याख्या करके जीवन यापन का साधन–नौकरी उपलब्ध कराने का प्रयास करती है और विडम्बना यह है कि उसमें भी यह उच्च शिक्षा प्रायः असफल ही रहती है।

शोध

शोध शब्द संस्कृत के शुद्ध शब्द का ही परिवर्तित रूप कहा जा सकता है। इसके आधार पर हम शोध का अर्थ किसी ज्ञान, विज्ञान, तथ्य सूचना, विचार, दृष्टिकोण आदि पर तर्क–वितर्क की सहायता से चिंतन–मनन करके उसे समसामयिक संदर्भों में शुद्ध या अद्यतन करना मान सकते हैं। शोध शब्द अंग्रेजी के 'रिसर्च' के हिंदी पर्याय के रूप में नई खोज के अर्थ में प्रचलित हो गया है। इसके लिए हिंदी में एक अन्य शब्द 'अनुसंधान' भी चलता है, जिसका अर्थ है– संघान के पीछे। शोध, वास्तव में, वर्तमान व्यवस्था, स्थितियों , जानकारियों, स्थापनाओं, मान्यताओं आदि के संबंध में जिज्ञासा व्यक्त करना, प्रश्न उठाना या उन पर संदेह करना है। शोध नए निष्कर्षों की तलाश का प्रयास है, अव्यक्त को व्यक्त करने की प्रक्रिया है, भिन्न दृष्टि से सत्य को जानने की छटपटाहट है, किंतु जब से भारत में शोध का संबंध डिग्री प्राप्त करने तथा नौकरी या पदोन्नति पाने से जुड़ गया है, तब से शोध का अर्थ पूरी तरह से बदल गया है। फिर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि उच्च शिक्षा की चरम परिणति या अंतिम पड़ाव ही शोध है।

उच्च शिक्षा एवं शोध का माध्यम

उच्च शिक्षा एवं शोध विषयक इस प्रारंभिक चर्चा के पश्चात् अब हम मूल विषय पर पहुँचते हैं कि इसका माध्यम कौन सी भाषा हो। यह प्रश्न आधुनिक भारत का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण किंतु सर्वाधिक उपेक्षित प्रश्न है। वर्तमान स्थिति तक पहुँचने से पूर्व हमें इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को, संक्षेप में, समझना अत्यावश्यक है।

हर सिंगार

प्राचीन काल में स्थिति

प्राचीन काल में शिक्षा, उच्च शिक्षा एवं शोध का माध्यम भारतीय संस्कृति की वाहक संस्कृत भाषा ही थी। इसी कारण भारत उस समय विश्व गुरु था तथा ज्ञान विज्ञान के प्रायः विभिन्न क्षेत्रों में उसने इतनी प्रगति की थी, जिसकी आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते। सुश्रुत, चरक, कणाद, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर, पराशर, नागार्जुन, रामानुज, भास्कर जैसे महान वैज्ञानिक, विद्वान एवं चिंतक उसी दौर में हुए थे। विश्व का प्रथम विश्वविद्यालय तक्षशिला में ईसा से ७०० वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था, जिसमें संसार भर के १०,००० से अधिक विद्यार्थी ६० से अधिक विषयों का अध्ययन करते थे। ईसा से ४०० वर्ष पूर्व स्थापित नालंदा विश्वविद्यालय भी शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय उपलब्धि का प्रमाण है। ज्ञान के भंडार वेदों की रचना ईसा से भी लगभग २००० वर्ष पूर्व हुई थी। चिकित्सा, इंजीनियरी, नौगति (जिससे नेविगेशन शब्द बना है),नगर नियोजन, धातु विज्ञान (जिसका उदाहरण मिहिरावली का लौह स्तंभ है जिसमें २००० वर्षों में जंग नहीं लगा), व्याकरण, लिपि (विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि देवनागरी की जनक ब्राह्मी लिपि), विमानन (पुष्पक विमान का उल्लेख, 'विमानशास्त्र' पर रचित ग्रन्थ), भौतिकी, नक्षत्र विज्ञान (सूर्य सिद्धांत ग्रंथ) पर आधारित ज्योतिष विज्ञान आदि सब उसी युग की उपलब्धियाँ हैं। इनके संबंध में ग्यारहवीं सदी के अरबी यात्री अलबरुनी ने बड़ी अनिच्छा से स्वीकार किया कि भारत में विज्ञान की जितनी प्रगति हुई है, उतनी उस समय तक अन्यत्र कहीं भी नहीं हुई। अंग्रेज विज्ञान इतिहासकार प्रो. जोज़ेफ नीढम ने तो 'चीन की वैज्ञानिक प्रगति' नामक पुस्तक में यहाँ तक लिखा है कि सत्रहवीं सदी तक भारत वैज्ञानिक प्रगति में यूरोप से आगे था। सर जॉन मार्शल ने १६१२–१३ में प्रकाशित अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'भारत का पुरातात्विक सर्वेक्षण' (आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया) में लिखा है, 'शिल्प, वास्तु और भवन निर्माण की रचनाओं को, जो भारत में विद्यमान हैं, देखकर कोई भी उनके निर्माताओं की गहराई, विचारों की ऊँचाई और कला की प्रौढ़ता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। वे शिल्पी यदि आज भी जीवित होते, तो शायद वर्तमान कलाविदों से सीखने योग्य कुछ न पाते।'

इस समस्त विवेचन का उद्देश्य केवल यह बताना है कि भारत के प्राचीन काल में उच्च शिक्षा एवं शोध का माध्यम, उस समय की सर्वश्रेष्ठ भारतीय भाषा, संस्कृत थी, जिसके परिणामस्वरूप भारत ने सभी क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति की। यह स्थिति लगभग १२ वीं शताब्दी तक रही, उसके पश्चात् लगातार विदेशी आक्रमणों से जूझने के कारण शिक्षा एवं शोध उपेक्षित होती चली गई।

आधुनिक काल में स्थिति

अंग्रेज़ों ने भारत में पाँव जमाने के बाद सबसे पहला कार्य जो किया, वह था–भारत के लोगों को धीरे–धीरे उनकी संस्कृति और संस्कृति की वाहक भाषाओं से काटना। लार्ड मैकाले स्पष्ट रूप से यह जानता था कि यदि हमें इस देश पर लंबे समय तक शासन करना है तो हमें यहाँ के लोगों को उनकी भाषा तथा संस्कृति से काटना होगा, क्योंकि शारीरिक गुलामी से कहीं अधिक असरदार है मानसिक गुलामी। दुःख की बात यह है कि लार्ड मैकाले अपने कुटिल इरादों में कामयाब रहा और अंग्रेज़ों के जाने के आधी सदी बाद भी हम मानसिक रूप से अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ियत के गुलाम हैं। अंग्रज़ों ने यह कार्य जल्दबाजी में नहीं किया, अपितु धीमे ज़हर के रूप में, धीरे–धीरे लंबे समय तक किया। अंग्रेज़ों की इस चाल को समझकर ही महात्मा गाँधी, सरदार पटेल, नेताजी बोस, तिलक आदि ने अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी को अपनाया।

स्वतंत्रता के बाद की स्थिति

१६४७ में स्वतंत्र होने के बाद, जब हमें स्वयं

निर्णय लेने का अवसर मिला तो देश के दुर्भाग्य से कुछ ऐसे अंग्रेज़ी परस्त लोगों के हाथ में निर्णय लेने का अधिकार आ गया, जिन्होंने कुटिल नीति से अंग्रेज़ी को न सिर्फ बनाए रखा, अपितु उसे धीरे–धीरे बढ़ावा भी दिया। अंग्रेज़ी को शिक्षा एवं शोध का माध्यम, ज्ञान–विज्ञान और विद्वता का प्रतीक, आधुनिकता तथा विकास का मानदंड बनाकर इस देश की जनता के साथ सबसे क्रूर मज़ाक किया गया।

सांविधानिक स्थिति

१४ सितंबर १९४९ को संविधान के अनुच्छेद ३४३ में हिंदी को संघ की राजभाषा स्वीकार कर लिया गया तथा अनुच्छेद ३५१ में हिन्दी भाषा के विकास के संबंध में विशेष निर्देश दिया गया–'संघ का कर्त्तव्य है कि वह हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करे और इसका विकास करे, ताकि यह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके।' इसी उद्देश्य से राजभाषा अधिनियम १९६३ की धारा ४ के अंतर्गत १९७६ में संसदीय राजभाषा समिति का गठन किया गया। इस समिति ने पाँच खंडों में अपनी सिफारिशें दीं। समिति ने ३१–१२–१९८८ को अपने प्रतिवेदन का तीसरा खंड पारित किया। इसमें समिति ने देश–विदेश के विद्यालयों महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा की पढ़ाई और हिन्दी माध्यम से अन्य विषयों की शिक्षा की व्यवस्था, त्रिभाषा सूत्र, भर्ती परीक्षाओं और साक्षात्कारों में हिन्दी माध्यम के प्रयोग आदि के बारे में अनेक सिफारिशें दीं। दो को छोड़कर शेष सिफारिशों को स्वीकार करते हुए राष्ट्रपति के आदेश ४–११–१९९१ को अधिसूचित किए गए। इसके अनुसार अब कृषि इंजीनियरी और आयुर्विज्ञान की प्रवेश परीक्षाओं में हिन्दी माध्यम का विकल्प दिया जाएगा। इनकी शिक्षा के माध्यम के रूप में भी हिंदी को अपनाने की कोशिश की जाए। इसी खंड में की गई सिफारिश पर ये आदेश भी हुए थे कि **भर्ती के बाद का प्रशिक्षण, चाहे वह अल्पावधि का हो या दीर्घावधि का, हिंदी माध्यम से ही सम्पन्न होना चाहिए।** तो यह थी, उच्च शिक्षा के माध्यम के संबंध में सांविधानिक स्थिति।

माध्यम के रूप में विकल्प

स्वतंत्र भारत में उच्च शिक्षा एवं शोध के माध्यम के रूप में तीन विकल्प थे–प्रदेशों की भाषाएँ, भारत की राजभाषा तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी और तथाकथित अंतरराष्ट्रीय भाषा अंग्रेज़ी। नेताओं और नौकरशाहों की दुरभिसंधि के कारण राष्ट्र भाषा हिन्दी और भारतीय भाषाओं की बलि देकर तथाकथित अंतर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेज़ी को स्वीकार कर लिया गया।

माध्यम के रूप में भारतीय भाषाएँ

सबसे पहले बात करते हैं–भारतीय भाषाओं की। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में १८ भारतीय भाषाओं को मान्यता दी गई है, जिनमें अंग्रेजी नहीं है अर्थात् संविधान विशेषज्ञों ने अभी तक अंग्रेजी को भारतीय भाषा नहीं स्वीकारा है, मगर दुखद स्थिति यह है कि इसके बावजूद अंग्रेजी सभी कार्यालयों, उच्च शिक्षा संस्थानों आदि में छाई हुई है। संविधान में स्वीकृत भारतीय भाषाएँ भारत के विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित हैं और वहाँ के मूल निवासियों की मातृभाषा भी है। ऐसे में उन भाषाओं को उच्च शिक्षा एवं शोध का माध्यम बनाना सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से उचित है। मगर इसके विपक्ष में तर्क देने वाले कह सकते हैं कि प्रादेशिक भाषाओं को उच्च शिक्षा एवं शोध का माध्यम बनाने से विभिन्न प्रदेशों के बीच आपसी संवाद में कठिनाई आएगी तथा एक प्रदेश की भाषा में अध्ययन एवं शोध करने वाले अपने प्रदेश तक ही सीमित रह जाएँगे। मगर यह तर्क पूरी तरह उचित नहीं है, क्योंकि भारत की लगभग सभी भाषाएँ एक ही स्रोत–संस्कृत से उत्पन्न होने के कारण एक दूसरे

के काफी निकट हैं तथा एक भारतीय भाषा बोलने वाला अन्य दो–तीन भाषाओं में भी आसानी से संवाद स्थापित कर सकता है।

उच्च–शिक्षा एवं शोध की भाषा के रूप में दूसरा विकल्प है–भारत की राजभाषा तथा राष्ट्रभाषा हिंदी। संस्कृत की लिपि देवनागरी में लिखी जाने, लगभग ८० प्रतिशत शब्द संस्कृत से ही तत्सम या तद्भव रूप में ग्रहण कर लेने तथा संस्कृत के ही व्याकरण नियमों को अपनाने के कारण हिन्दी ही संस्कृत की सही उत्तराधिकारिणी है। हिन्दी संस्कृत का ही सरल तथा विकसित रूप है। यह पूरे भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच सम्पर्क स्थापित करती है। संस्कृत की धातुओं से शब्द बनाने के अतिरिक्त हिन्दी ने उर्दू, अंग्रेजी तथा अन्य अनेक देशी–विदेशी भाषाओं से शब्दों को ग्रहण किया है तथा अभी भी कर रही है। हिन्दी की अनुकूलन क्षमता तथा लचीलापन ही इसकी सबसे बड़ी शक्ति है, जिसके कारण हिन्दी पूरे विश्व में लोकप्रिय होती जा रही है। विश्व के लगभग १२० देशों के लगभग १५०विश्वविद्यालयों में हिन्दी का पठन–पाठन हो रहा है तथा चीनी के बाद हिन्दी प्रयोगकर्त्ताओं का विश्व में दूसरा स्थान है तथा अंग्रेजी तीसरे स्थान पर है।

इतनी लोकप्रिय समृद्ध, सशक्त तथा व्यापक भाषा को ही उच्च शिक्षा एवं शोध का माध्यम होना चाहिए, इसमें कोई संदेह नहीं है। मगर आज़ादी के बाद धीरे–धीरे सारी शिक्षा का माध्यम हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं के स्थान पर अंग्रेज़ी होती चली गई। उच्च शिक्षा एवं शोध के माध्यम के रूप में देखते हैं :–

हिन्दी के पक्ष में तर्क

१. हिन्दी भारत की प्रमुख भाषा है, लगभग ७५ प्रतिशत भारतीय हिन्दी जानते हैं।

२. हिन्दी भारत की राजभाषा, राष्ट्रभाषा तथा संपर्क भाषा होने के साथ–साथ बहुत बड़े वर्ग की मातृभाषा भी है, अतः हिन्दी के माध्यम से उच्च शिक्षा एवं शोध होने पर प्रतिभा का श्रेष्ठतम उपयोग हो सकेगा।

३. हिन्दी के माध्यम से उच्च शिक्षा एवं शोध की व्यवस्था करना राष्ट्रीय, मनोवैज्ञानिक, सांविधानिक आदि सभी दृष्टियों से उचित है।

४. हिन्दी के पास संस्कृत की अथाह ज्ञान–विज्ञान की समृद्ध परंपरा, विपुल शब्द सामर्थ्य तथा कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयुक्त लिपि–देवनागरी विद्यमान है।

५. हिन्दी में समय के साथ विकसित, परिवर्तित होने का लचीलापन भी है।

६. हिन्दी में उच्च शिक्षा एवं शोध होने से देश के आम आदमी को भी उच्च शिक्षा पाने का अवसर मिल सकेगा तथा शोध का लाभ आदमी तक पहुँचाया जा सकेगा।

७. हिन्दी में उच्च स्तर की पत्र–पत्रिकाएँ तथा अनेक वैज्ञानिक–तकनीकी पुस्तकें निरन्तर प्रकाशित हो रही हैं।

हिन्दी के विपक्ष में तर्क

१. हिन्दी में उच्च अध्ययन के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य का अभाव है।
२. हिन्दी बहुत कठिन है।
३. हिन्दी में किए गए शोध को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति नहीं मिलती।
४. हिन्दी माध्यम से उच्च शिक्षा एवं शोध होने पर अहिन्दी भाषी प्रदेशों के लोग इससे वंचित रह जाएँगे।
५. हिन्दी के कारण अन्य भारतीय भाषाएँ दब जाएँगी, उनका विकास अवरुद्ध हो जाएगा।
६. हिन्दी में की गई पढ़ाई एवं शोध को हेय दृष्टि से देखा जाता है, जिससे विद्यार्थियों और शोधार्थियों में हीन भावना आ जाती है।

इससे पहले कि हम तर्क–वितर्कों का विश्लेषण–विवेचन करें, आइए जरा उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेज़ी भाषा के पक्ष–विपक्ष में दिए जाने वाले तर्कों को भी देख लें।

अंग्रेज़ी के पक्ष में तर्क

१. अंग्रेज़ी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है, अतः उच्च शिक्षा

एवं शोध अंग्रेजी में होने से विद्यार्थियों को नवीनतम अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान मिल सकेगा।

२. अंग्रेज़ी पूरे भारत में प्रचलित है, अतः सभी प्रदेशों के विद्यार्थी अंग्रेज़ी के माध्यम से एक दूसरे से संवाद स्थापित कर सकेंगे।

३. अंग्रेज़ी में पर्याप्त पुस्तकें, पत्रिकाएँ आदि हैं।

४. अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ने एवं शोध करने वाले विद्यार्थी विदेशों में जाकर भी काम कर सकेंगे।

५. अंग्रेज़ी में किए गए शोध कार्य को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिलती है।

६. कम्प्यूटर एवं इन्टरनेट की भाषा अंग्रेज़ी है, अतः अंग्रेज़ी के माध्यम से शिक्षित ही इस सुविधा का लाभ उठा सकेंगे।

अंग्रेज़ी के विपक्ष में तर्क

१. अंग्रेजी विदेशी भाषा है और अंग्रेज़ों के २०० वर्षों तथा अंग्रेज़ी भक्त भारतीयों के ५० वर्षों के अथक प्रयासों के बावजूद अंग्रेज़ी केवल ४–५ प्रतिशत से अधिक लोगों की भाषा नहीं बन पाई।

२. उच्च शिक्षा एवं मौलिक शोध के लिए चिंतन–मनन की आवश्यकता होती है, जो अपनी भाषा में ही किया जा सकता है, विदेशी भाषा में नहीं।

३. अंग्रेज़ी के माध्यम से उच्च शिक्षा एवं शोध होने पर भारत का आम आदमी न केवल उच्च शिक्षा एवं शोध से कट जाएगा, अपितु वह इसके लाभों से भी वंचित रह जाएगा।

४. उच्च शिक्षा एवं शोध का माध्यम अंग्रेज़ी होने से ही प्रतिभा पलायन की समस्या विकट रूप धारण कर रही है तथा हमारी प्रतिभा का लाभ विदेशों को मिल रहा है।

५. उच्च शिक्षा एवं शोध अंग्रेज़ी माध्यम से होना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तो अनुचित है ही, यह राष्ट्रीय गौरव तथा संविधान निर्माताओं की इच्छा के भी प्रतिकूल है। यह राष्ट्रपति महोदय के आदेशों की भी अवहेलना है।

६. पिछले ५० वर्षों में, वे देश ही उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचे हैं, जिन्होंने अपनी भाषा में उच्च शिक्षा एवं शोध की व्यवस्था की; उदाहरण के लिए चीन, जापान, जर्मनी, फ्रांस, कोरिया आदि।

समग्र विश्लेषण

उपर्युक्त तीनों विकल्पों पर विचार करने से एक बात तो स्पष्ट है कि इस प्रश्न पर एक ओर तो अंग्रेज़ी भाषा है तथा दूसरी ओर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएं हैं। इसमें कोई मतभेद नहीं है कि अध्ययन, चिंतन एवं मनन सदैव अपनी ही भाषा में श्रेष्ठ हो सकता है, अतः हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के पक्ष में यह एक बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य है। इस बात को देश–विदेश के अनेक विद्वान और चिंतक भी स्वीकार करते हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने १ सितंबर, १६२१ को अपने अखबार 'यंग इंडिया' में लिखा–"विदेशी माध्यम से हमारे विद्यार्थी दिमागी थकावट के शिकार हुए हैं, उनके ज्ञान तंतुओं पर अनुचित भार पड़ रहा है, वे रट्टू और नकलची बन गए हैं, मौलिक कार्य और विचार के लिए वे अयोग्य हो गए हैं और अपनी विद्या को परिवार अथवा जनसाधारण तक पहुँचाने में असमर्थ हो गए हैं। विदेशी माध्यम ने हमारे बालकों को अपने देश में ही लगभग विदेशी बन डाला है। वर्तमान पद्धति का यह सबसे बड़ा दुखद परिणाम है। विदेशी माध्यम के द्वारा हमारी भाषाओं के विकास को रोक दिया गया है। अगर मेरे पास एक निरंकुश शासक की सत्ता हो, तो मैं विदेशी माध्यम के द्वारा हमारे लड़कों और लड़कियों की पढ़ाई आज ही रोक दूँ और तमाम शिक्षकों और अध्यापकों से कह दूँ कि अगर बर्खास्त नहीं होना है, तो इसे फौरन ही बदल दें। मैं पाठ्य–पुस्तकों के तैयार होने की प्रतीक्षा नहीं करूँगा। वे इस परिवर्तन के बाद तैयार हो जाएँगी। यह एक ऐसी बुराई है, जिसका इलाज एकदम हो जाना चाहिए।" एक अन्य दूरदर्शी चिंतक डा. राममनोहर लोहिया के शब्दों में, "अंग्रेजी के

बिना हमारी वैज्ञानिक उन्नति न हो सकेगी, यह दलील थोथी है। विज्ञान, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र आदि विषयों में हम तब तक पिछड़े रहेंगे, जब तक यहाँ अंग्रेजी बरकरार रहेगी। जितने दिनों में विषय की गहराइयों तक पहुँचा जा सकता है, उतना समय तो हमारे बच्चों को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने में ही खर्च हो जाता है, फिर भी अधिकांश विद्यार्थी विषय ज्ञान में पास होते हुए भी केवल अंग्रेजी के कारण फैल हो जाते हैं। इस प्रकार उनका उत्साह मरता है, अभिभावकों का धन बर्बाद होता है और राष्ट्र का भविष्य नष्ट होता है। " १९५६ में प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा. जयंत विष्णु नार्लीकर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है, "अगर भारत की सोई हुई वैज्ञानिक प्रतिभाओं को जगाना है तो विज्ञान की शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनाना होगा। इसके बिना भारतीय जनता और वैज्ञानिक विचारों के बीच विद्यमान दूरी को खत्म नहीं किया जा सकता और ऐसी दशा में जनता से सम्पर्क स्थापित करने के लिए जनभाषा का सहारा लेना ज़रूरी है।"

भारतीय ही नहीं अनेक विदेशी विद्वानों ने भी अंग्रेजी माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा से भारत को हो रही हानि की ओर संकेत किया है। प्रसिद्ध हिन्दी प्रेमी फादर कॉमिल बुल्के ने अपनी विवशता इन शब्दों में व्यक्त की है, "अगर मैं कुछ कर पाता तो अंग्रेजी माध्यम के सभी विद्यालयों को समाप्त कर देता। संस्कृत इस देश की भाषाओं की सास है, हिन्दी बहूरानी है और अंग्रेजी नौकरानी। हिन्दी भाषा का अपमान करने वाला कोई बाहरी व्यक्ति नहीं है, बल्कि यहीं के लोग हैं।" प्रसिद्ध अंग्रेज साहित्यकार डब्ल्यू.बी.यीट्स ने स्वीकार किया, "भारत में अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा प्रणाली चलाकर ब्रिटेन ने भारत का सबसे बड़ा नुकसान किया है। उसने भव्य भारतीय की आत्माओं में हीनता की भावना भरकर उन्हें नकलची बना दिया है।"

अंग्रेजी के कारण किस प्रकार भारतीय छात्रों का भविष्य चौपट हो रहा है, इसका उदाहरण देते हुए प्रो. चंद्रप्रकाश आर्य लिखते है, '१ मार्च १९९२ में हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड की १२वीं अंग्रेजी की परीक्षा देने वाले कुल १,०३,८८५ विद्यार्थियों में से केवल ३७,८५६ यानी केवल ३५.४४ प्रतिशत विद्यार्थी ही पास हुए । पूरे देश के आँकड़े यदि एकत्र किए जाएँ, तो यह यह संख्या करोड़ों में जाएगी।" वे आगे लिखते हैं, "मौलिक अनुसंधान अपनी भाषाओं तथा राष्ट्रभाषा में होता है, किसी बाहर की भाषा में नही। रूस में वैज्ञानिक अनुसंधान वहाँ की भाषाओं में होता है, अंग्रेजी में उसका अनुवाद उपलब्ध कराया जाता है। चीन, जापान, कोरिया, जर्मनी आदि में वैज्ञानिक अनुसंधान अंग्रेज़ी में नहीं होता, वहाँ की भाषाओं में होता है, किंतु हम अंग्रेजी से चिपके हुए हैं। वैज्ञानिक शोध की हमारी कोई भाषा नही है।" इसी स्थिति को देखते हुए सांसद नरेंद्र मोहन ने लिखा हैं 'वर्तमान में जिस भाषा नीति पर भारत को चलाया जा रहा है, वह भाषा नीति बहुत दिनों तक नहीं चल सकती, लेकिन इसके लिए एक बड़े जन–आन्दोलन की आवश्यकता है। देश को एक और गाँधी तथा एक और लोहिया चाहिए, जो राष्ट्र की भाषाई अस्मिता की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग करने के लिए तैयार हो।'

उपर्युक्त सभी मंतव्य इसीलिए दिए गए हैं, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि हमारे आधुनिक भारत के भूतपूर्व तथा वर्तमान चिंतकों की अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं को माध्यम के रूप में अपनाने को लेकर दृष्टि क्या है ? इसी के आलोक में अब सम्पूर्ण स्थिति पर विचार किया जाएगा।

अंग्रेजी के पक्ष में दिए जाने वाले अधिकतर तर्क तथ्यों पर आधारित न होकर दासता की मानसिकता पर आधारित हैं। यह कहना कि अंग्रेज़ी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है, कम्प्यूटर और इंटरनेट की भाषा अंग्रेजी है, अंग्रेजी में किए कार्य को ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति मिलती है आदि आंशिक रूप से ही सत्य हैं। अनेक देशों में अंग्रेजी नहीं

चलती। अंग्रेजी केवल उन्हीं देशों में चलती है जहाँ के लोगों की वह मातृभाषा है या उन देशों में जो आज भी अंग्रेजी की मानसिकता और औपनिवेशिक दासता में जकड़े हुए हैं। इसी प्रकार कम्प्यूटर अंग्रेजी के अतिरिक्त विश्व की अनेक भाषाओं, यथा–चीनी, जापानी, फ्रेंच आदि में काम कर सकता है क्योंकि कम्प्यूटर की अपनी कोई भाषा नहीं होती। सच तो यह है कि कम्प्यूटर पर हिन्दी तेज़ी से आगे बढ़ रही है। (अधिक जानकारी के लिए देखें–'कम्प्यूटर युग और हिन्दी' लेखक डा. रवि शर्मा)

इसी प्रकार हिन्दी में उच्च स्तर की पुस्तकों और पत्रिकाओं की कमी, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति न मिलना, हिन्दी कठिन है, आदि भी आंशिक रूप से ही सही हैं। आज हिन्दी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी स्तर की उपलब्ध श्रेष्ठ पुस्तकों की नवीनतम सूची 'हिन्दी वैज्ञानिक और तकनीकी प्रकाशन निदेशिका' में दी गई है। हिन्दी में लगभग ७५ उच्च स्तरीय पत्रिकाएँ वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों पर प्रकाशित होती हैं, जिनमें कुछ हैं–जिज्ञासा, विज्ञान परिचय, वैज्ञानिक, उद्यम, विज्ञान प्रगति, आविष्कार, विज्ञान गरिमा सिंधु आदि। इनमें से कुछ तो ५० वर्षों से भी अधिक समय से निरंतर छप रही हैं। अनेक शब्दावलियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं अर्थात् सामग्री तो भरपूर है, प्रयोग करने की मानसिकता नहीं है और हम बहाने बनाते हैं–कभी सामग्री न होने के, कभी प्रोत्साहन न मिलने के।

निष्कर्ष

इस समग्र विवेचन से यह निष्कर्ष निकालना बिल्कुल सरल है कि भारत के सही विकास के लिए, विकास की गति तीव्र करने के लिए, उस विकास का लाभ आम आदमी तक पहुँचाने के लिए, प्रतिभा पलायन रोकने के लिए उच्च शिक्षा एवं शोध का माध्यम हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को ही बनाना होगा।

- प्रभारी हिन्दी विभाग, श्रीराम कॉलेज ऑफ कामर्स, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

हर सिंगार

पृष्ठ ५२ का शेषांश

वर्ग तथा साधारण वर्ग बन गए हैं, उनके कारण न तो देश की शिक्षा नीति निर्धारित हो सकी है और न राष्ट्रीय एकता ही विखंडित होने से बच सकी है। आज दोनों वर्गों के लिए अलग–अलग स्कूल, अस्पताल, यात्रावाहन तथा अन्य सुविधाएँ हैं। अंग्रेजी के कारण ही देश में भारतीय संस्कृति का पराभव आरम्भ हो गया है तथा अंग्रेजी की बाढ़ में बहती हुई भावी पीढ़ी को अपनी भाषा, संस्कृति, साहित्य, आदर्शों एवं मान्यताओं का कुछ भी ज्ञान नहीं है। नौकरशाही के गुलाम अंग्रेजी प्रेमियों का यह तर्क कि अंग्रेजी के बिना भारत उन्नति की दौड़ में पिछड़ जाएगा, तथ्यहीन है। वास्तविकता यह है कि अंग्रेजी के चलते भारत उन्नति की दौड़ में निरन्तर पिछड़ता गया और फ्रांस, जर्मनी, रूस, चीन और जापान अंग्रेजी की बैसाखी के बिना हमें मीलों पीछे छोड़ गए। कोरिया, वियतनाम जैसे छोटे देश भी हमसे बहुत आगे निकल गए। अपनी भाषा का सहारा लेकर अभी टर्की तथा इजराइल देशों ने अपनी प्रगति का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है वह विश्व इतिहास में अनूठा है।

स्वाधीन भारत के १०० करोड़ लोगों की अपनी कोई राजभाषा न हो यह देश के लिए लज्जा की बात है। इससे राष्ट्र के स्वाभिमान और राष्ट्रीय अस्मिता को जो क्षति पहुँचती है वह अकथनीय है। हमें संगठित होकर एक राष्ट्र की अवधारणा को साकार करना है और अपने देश के शासन की भाषा संविधान सभा द्वारा अंगीकृत हिन्दी को अंग्रेजी के स्थान पर राजभाषा के पद पर सच्चे मन से प्रतिष्ठित करना है। इतना ही नहीं हमें प्रयास करके हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा भी बनवाना है। विश्व में चीनी तथा अंग्रेजी के बाद हिन्दी का तीसरा स्थान है तथा ११६ विश्वविद्यालयों में यह पढ़ाई जाती है, अतः कोई कारण नहीं कि हिन्दी संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा न बन सके।

–अनुकम्पा होम्योपैथ, तिलक रोड़ बेगमपुल,मेरठ

मैकाले के मानस पुत्र अंग्रेजी भक्तों का दुष्प्रचार
हिन्दी एक मत से नहीं एकमत से आई !

बद्रीनारायण तिवारी

आज लोकतंत्र की दुहाई देने वाले दो प्रतिशत से भी कम अंग्रेजी भक्तों ने किस प्रकार हिन्दी थोपने की बात प्रचारित कर रखी है–वह जर्मनी के प्रचार प्रमुख गोबिल्स महायुद्ध के समय जब जर्मनी की फौजें पीछे हटती थीं तो वह आगे विजयी सेना के रूप में प्रसारित कर लोगों के मन में असत्य बात को सत्य रूप से स्थापित करने का अद्‌भुत खिलाड़ी था। उसी प्रचार नीति को अंग्रेजी प्रचार माध्यम (मीडिया) अपनाकर भ्रमित कर रहा है।

वस्तुतः हिन्दी सिद्धों, नाथों, सन्तों–दासों रामानन्द, कबीर, तुलसीदास, सूरदास, रविदास, मलूकदास, जैनमुनियों आदि की भाषा जो देश के कोने–कोने में प्रचारित होने वाली स्नेह प्रेम की भाषा हिन्दी को थोपी जाने का अनर्गल प्रचार करते समय भूल जाते हैं कि सम्पर्क भाषा के रूप में मध्य देश से फैली संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश आदि अपने–अपने काल की सम्पर्क भाषाएं रहीं। यातायात और संचार माध्यमों के अभाव के युग में सम्पूर्ण देशवासियों के बीच साँस्कृतिक एकता और समान राष्ट्रीय भावना का संचार कैसे संभव हुआ ? क्या देश में उस समय अंग्रेजी भाषा का नामोनिशान भी था ? अतः हिन्दी को प्राप्त सम्पर्क भाषा का गौरव राज्याश्रय से या किसी की कृपा से नहीं मिला, देशवासियों ने स्वतः ही उसे प्रदान किया। मुस्लिम शासनकाल में सब से पहले खड़ी बोली हिन्दी दक्षिण में ही साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। दिल्ली और उसके आसपास की भाषा को ही मुसलमान शासकों ने सम्पर्क भाषा के रूप में अपनाया और उन्हीं के द्वारा दक्षिण भारत मे पहुँची जिसे फारसी विद्वान "फरिश्ता" के अनुसार बहमनी राज्य (१४वीं शताब्दी) के कार्यालयों में हिन्दी जुबान दक्खिनी हिन्दी के नाम से विख्यात हुई–'हिन्दवी' संज्ञा भी ग्रहण की। सल्तनत ने सरकारी जुबान का दर्जा दे रखा था।

इसके पश्चात् उर्दू शायर सौदा के गुरु शाहआलम की पुस्तक 'दीवान जादे' (१७५० ई०) में लिखा है–"मैंने हिन्दुस्तान के तमाम सूबों की जुबान (भाषा) 'हिंदवी' को ही अपनी तकरीर (भाषण) के लिए चुना है। इसके पूर्व अंग्रेज यात्री एडवर्ड टेरी की रिपोर्ट (१६१५ ई.) में सम्पर्क भाषा के रूप में स्वतः विकास के प्रमाण हमें फरिश्ता के बाद लिखा है–हिन्दोस्तानी इंडिया की लैंग्वेज है......"

पूर्व राष्ट्रपति विद्वत् प्रवर महामहिम डा. शंकर दयाल शर्मा प्रायः अपने भाषणों में कहा करते थे कि भारत के जिस भाग में मुझे काम के सम्बन्ध में जाना पड़ा, वहाँ मैंने आपकी सिखाई हिन्दुस्तानी भाषा का ही व्यवहार देखा है। कलकत्ता से कुमायूँ तक, लाहौर से नर्मदा घाटी के मध्य देश तक यह भाषा सभी जातियों और कबीलों द्वारा समझी जाती है।'ये किसी हिन्दुस्तानी के पत्र का अंश न होकर मद्रास के अंग्रेज लेफ्टीनेंट टामस रोबके द्वारा सन् १८०७ ई. में अपने शिक्षक को लिखे पत्र की पंक्तियों को सूक्ति रूप में प्रस्तुत करते थे। दक्खिनी हिन्दी का जो प्रवाह चला वह अनवरत हिन्दू–मुसलमान कवियों ने रचना करके साहित्य को समृद्ध किया जिन्हें शासकों ने भी संरक्षण दिया। जिनमें इब्राहीम आदिलशाह, अली आदिलशाह, कुली कुत्तुबशाह आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा। अपार साहित्य लेखन हिन्दी में भरा पड़ा है। उदाहरणार्थ कविता का एक नमूना प्रस्तुत है–

'ये सब बोल हिन्दी बोल, पण तू अनुभव सेती बोल,
ऐब न राखे हिन्दी बोल, मानो तो चख देखे बोल

इसका महत्व भाषा की दृष्टि से ही नहीं, इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से आँका जाना चाहिए। हिन्दी स्वतंत्रता आन्दोलन का मूल स्वर बन

गई और उसके गाने, तराने और नारे एक स्वर से सारे देश में गूँजने लगे। अहिन्दी भाषियों के सभी वर्गों के शीर्षस्थ बालगंगाधर तिलक, स्वामी दयानन्द सरस्वती, समाज सुधारक राममोहन राय, बंकिमचन्द्र चटर्जी तथा सन् १८७५ ई. में केशवचन्द्र सेन ने कहा था, "हिन्दी को अगर भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया जाय तो सहज में ही राष्ट्रीय एकता स्थापित हो सकती है।" उसी भावना को गति देते हुए महात्मा गांधी ने १५ अक्टूबर १९१७ को भागलपुर (बिहार) में छात्र सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए कहा–

"मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के समान है। जो मातृभाषा का अपमान करता है, वह स्वदेश भक्त कहलाने लायक नहीं है। यदि हम मातृभाषा की उन्नति नहीं कर सके और हमारा यह सिद्धान्त रहे कि अंग्रेजी के जरिये हम ऊँचे विचार प्रकट कर सकते हैं, तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हम सदा के लिये गुलाम बने रहेंगे।"

इसी संदर्भ में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कथन है–"उस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये, जो देश के बड़े हिस्से में बोली जाती हो अर्थात् हिन्दी।"

तमिल भाषा के साधक कवि मुरूगनार की निम्नलिखित पंक्तियाँ, जिनका हिन्दी रूपान्तरण कविवर रामधारी सिंह 'दिनकर' ने किया है, बहुत ही मार्मिक और प्रेरणादायक है–

"जिस दिन भारत के सभी लोग
अपनी पसंद से चुनी हुई सबकी बोली
हिन्दी को अपनी जानेंगे
जानेंगे केवल नहीं, वरन् आसानी से
हिन्दी में करके कामकाज सुख मानेंगे
बस उसी दिवस दासत्व न रहने पायेगा
बस उसी रोज सच्चा स्वराज्य आ जाएगा"

आधुनिक जीवन की एक पहचान है तेज गति। हम भारतीयों की जीवन शैली कि तुलना मे पाश्चात्यों का जीवन बहुत तेज गति से चलता है। उस यांत्रिक जीवन में प्रतिस्पर्धाएँ और उसी अनुपात में चिंताएं भी बहुत अधिक हैं। शायद यही हमारे जीवन का एक अंग बनकर उसी नकल की अंधी दौड़ में शामिल होने पर साहित्य मनीषी वर्तमान हिमांचल प्रदेश के राज्यपाल प्रो. विष्णुकान्त शास्त्री ने लंदन की यात्रा, प्रवास में हृदय से ये पंक्तियाँ उभरी जो आत्ममंथन की ओर प्रेरित करती है–

'तूफानी गति से चलता है नूतन युग का जीवन,
पलभर को विश्राम न पाता स्पर्धा, चिंता से मन
भले लगे फेरों पर फेरे लंदन–वाशिंगटन के–।
रहना है यदि स्वस्थ न भूलो चित्रकूट–वृंदावन।

तो दूसरी ओर मुंबई में माइकल जैक्सन की पॉप संगीत न समझते हुए भी उस पर लाखों रुपये निछावर ही नहीं किए वरन् जिसमें उसने रात्रि में शयन किया उस चादर व गिलाफ की नीलामी एक लाख में खरीद कर अपनी निम्नकोटि की मानसिकता का परिचय दिया। हमारे लोक गीतकार आर्थिक दयनीय दशा में अपने जीवन के दिन गिन रहे हैं। यह कैसा विरोधाभास हमारी मानसिकता में घर कर चुका है। उसी मुंबई में 'ए मेरे वतन के लोगों जरा याद करो कुर्बानी', 'आओ बच्चों तुम्हें दिखायें झाँकी हिन्दुस्तान की, इस मिट्टी का तिलक करो, यह धरती है बलिदान की' आदि मन को झंकृत करने वाले गीतकार प्रदीप जी ने गुमनाम अंधेरे में अपनी जीवन लीला विगत वर्ष समाप्त की। क्या यही प्रगतिशीलता है जो अपनों को त्यागे ? दूसरे की जूठन को अपना भोज्य पदार्थ बनाये। हमारे आंचलिक जो लोकगीत भाषा और साहित्य के शब्द भण्डार को बढ़ाते हैं, डिस्को पॉप संगीत के सांस्कृतिक प्रदूषण में कहीं समाप्त न हो जायें !

डोली के कहारों से खतरा

वस्तुतः उपनिवेशवाद के हामी उस देश, जिसने हमारे ऊपर सैकड़ों वर्षों तक राज किया था, को उखाड़ फेंकने के लिये सारा देश जिस भाषाई एकता की ओर अग्रसर हुआ था, चाहे वह बंगाल के नेताजी सुभाषचन्द्र बोस हों, पंजाब के अमर शहीद भगतसिंह, महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक या फिर चक्रवर्ती राजगोपालाचारी। उन्होंने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैलने के लिये उसी हिन्दी का प्रयोग

किया था, जिस भाषा ने उन्हें भारत छोड़ने पर विवश किया।

इस समय हिन्दी संसार के १३५ विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जा रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की मान्यता देने का प्रस्ताव लाया गया है। संसार में चीनी के बाद हिन्दी भाषा को बोलने–समझने वाली दूसरी भाषा होने पर भी साम्राज्यवादी मानसिकता के प्रचारक अंग्रेजी को ही प्रसारित करते रहते हैं। आज उसी के दुष्प्रभाव में राष्ट्रभाषा हिन्दी की बधाइयों, शुभकामनाओं के पत्र कम संख्या में मिलते हैं। परिवारों में इसी हीनभावना की दौड़ में अपने हजारों आकर्षक सुन्दर नामकरण भी परिवर्तित होकर अंग्रेजी नाम स्वीटी, रोजी, गोल्डी, टाइगर, पिंकू रिंकू आदि रखते हैं जो किसी समय पालतू जानवरों के नाम से पुकारे जाते थे। क्या हिन्दी के पास शब्दों की कमी होने से अपने नन्हें बाल–गोपालों के नाम अंग्रेजी में रखे जा रहे हैं ? अथवा अपनी हीनभावना ग्रस्त होने से विदेशी नाम रखने से समाज में शान शौकत में बढ़ोतरी होती है। ! सीलोन से श्रीलंका, वर्मा से म्यांमार पड़ोसी देशों ने अपने नाम कर दिए, किन्तु हमारे यहाँ 'इंडिया दैट इज भारत' इंडिया ही भारत की मानसिकता वाले डोली के कहारों से खतरा है। इसी से अमेरिका–जापान आदि हमारे देश में हजारो वर्षो से परोसनेवाली "कढ़ी" एवं बासमती चावल जैसे भोज्य तथा बीकानेरी भुजिया, दार्जिलिंग चाय, विभिन्न भारतीय पेय पदार्थों को पेटेन्ट कराने का दुस्साहस कर रहे हैं। 'हल्दी' और 'नीम' को हम पेटेन्ट कराने के बाद अब हमारी डगर किस ओर बढ़ रही है।

भू.पू. वित्तमंत्री चिदम्बरम् जेसे सांसदों की पक्की धारणा ही है कि इन जैसे अंग्रेजी 'दा' लोग ही भारत के प्रधानमंत्री बनने लायक हैं। जिसमें सामान्य सांसदों एवं सामान्य भारतीयों का अंग्रेजी प्रेम सोचा जा सकता है। अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में अपने बच्चे पढ़ाना आजकल "स्टेण्डर्ड" की बात मानी जाने लगी है। तभी इंग्लिश मीडियम स्कूल कुकुरमुत्तों की तरह बढ़ते जा रहे हैं। राजेश पायलट जैसे अंग्रेजी मानसिकता के लोग हिन्दी संवर्धक सरस्वती शिशु मन्दिरों को कोसने का कार्य करने लगे थे। आज अंग्रेजी का भोंडा भाव हम पर इस कदर हावी है। तथाकथित शिक्षित व सम्भ्रान्त लोग अपने को दुबे, जयवर्धन, रमेश जयकिशन तथा गौड़ के स्थान पर दबे, जयवर्धना, रोमेश तथा गॉंडसे कहलाना ज्यादा पसंद करते हैं; जिनका कोई अर्थ नहीं है। केरल, आंध्र तथा महाराष्ट्र को अंग्रेजी के समाचार उद्घोषक "केरला", "आन्ध्रा" तथा महाराष्ट्रा कहता ही है। इस बदलाव के लिये किसी महाज्ञान की नहीं, महान इच्छाशक्ति और मानसिकता परिवर्तन की ही आवश्यकता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण "फिजी" जैसे लघु देश ने हिन्दी को अपनी राष्ट्रभाषा घोषित करने के बाद सातवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन का आमंत्रण भी दिया।

हिन्दी का विरोध करने वाले ये ब्यूरोक्रेट्स (नौकर हैं) या तथाकथित राजनीतिज्ञ अपने–अपने स्वार्थ में अपने–अपने ढंग से कुतर्क देते हैं। ये वे लोग है जो सांसें हिन्दी में लेते हैं और बोलते अंग्रेजी में हैं। वस्तुतः इन्हें डर है कि हिन्दी के आ जाने से इनकी रोजी–रोटी छिन जाएगी। विदेशों में पढ़ रहे इनके बच्चों का क्या होगा ? यकीनन उनका भविष्य अन्धकारमय हो जायेगा। डा. राजेन्द्रप्रसाद ने कहा था–भारतीयता के लिए राष्ट्रभाषा का प्रचार आवश्यक है। इस परिप्रेक्ष्य में भारत की महान कवयित्री विदुषी महादेवी वर्मा का एक वक्तव्य याद आया, "राष्ट्रभाषा की उपेक्षा से देश का भविष्य अन्धकारमय हो जायेगा।"

विश्व में ऐसा कोई स्वतंत्र और स्वाभिमानी देश नहीं है जहाँ राजकीय स्तर पर राष्ट्र और भाषा को अलग किया गया है। जैसे इंग्लैण्ड और अंग्रेजी, रूस और रूसी (रसियन), जापान और जापानी में घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारत ही एक ऐसा स्वतंत्र देश है। जहाँ हिन्द और हिन्दी, भारत और भारती को अलग करके कार्य होता है। यह विसंगति जितना जल्द हो दूर होनी चाहिए।

अंग्रेजी की ऐसी तान, भारत माँ की कटी जुबान

भाषा के बदलने से मूल्य भी बदल जाते हैं। हिन्दी में बड़ों को आप, बराबरी वालों को तुम और

छोटों को तू कहने की सुविधा है। लेकिन अंग्रेजी में सपाट सम्बोधन है–"यू" पिताजी के लिए, पत्नी के लिए–बच्चे के लिए–सबके लिए एक ही चाबुक है। उसी से हांकिये। हमारे यहाँ देवर, भाभी, जेठ, जेठानी, मौसा, मौसी, चाचा, फूफा, भानजा, भतीजा, साला, जीजा सब सम्बोधन के लिए निश्चित शब्द होते हैं। जब मुझे कहा जाए कि ये आपके जीजा हैं तो मैं तत्काल समझ जाऊँगा कि मेरी बहन के पति हैं। लेकिन अंग्रेजी में सब घोटाला है। साला और जीजा दोनों के लिए एक ही शब्द है, ब्रदर इन लॉ। इसका कारण स्पष्ट है कि मानवीय सम्बन्धों की जिन बारीकियों का महत्त्व हमारी संस्कृति में है । वह पश्चिम सभ्यता में नहीं है।

हिन्दी साहित्य के भीष्म पितामह, साहित्यकारो के सृजनकर्त्ता, पद्मभूषण पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी से उ.प्र.विधानसभा में मुख्यमंत्री ने हिन्दी के प्रति अनादर करते हुए कहा था कि ऐसे कौन से हिन्दी में सुरख्वाब के पर लगे हैं, जो इसको बढ़ावा दिया जाये। इस पर श्रद्धेय चतुर्वेदी जी ने हिन्दी के सुरख्वाब के इतने 'पर' गिनाये थे, जिस पर आज भी देश गौरवान्वित होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय रोटरी क्लब द्वारा अपनी अमेरिका की बैठक में हिन्दी की महत्ता की गम्भीरता को समझते हुए इसको अपनी अन्तर्राष्ट्रीय बारह भाषाओं की श्रृंखला में तेरहवीं भाषा के रूप में हिन्दी को मान्यता प्रदान की गई। किन्तु हमारे भारत के रोटरी बन्धु अभी भी अधिकांश लोग चाहे अंग्रेजी भाषा का उच्चारण या लेखन ठीक ढंग से नहीं कर पाते हों, परन्तु फिर भी वह (बैनर) नाम पट्टिकाओं में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते है। जो उनकी हीन भावनाओं की मानसिकता का प्रतीक है। जबकि विगत ३ नवम्बर १९९८ को लंदन के अप्रवासी भारतीयों द्वारा आयोजित सहस्राब्दि प्रतिज्ञा समारोह में इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री श्री टोनी ब्लेयर ने हिन्दी में दीपावली की मुबारक सबके लिए कहकर अंग्रेजी भाषा की मानसिकता वाले लोगों के मुँह पर जोरदार तमाचा जड़ा, जो हमारे लिये एक सबक है। वहाँ के हजारों भारतीयों ने इसका करतल ध्वनि से स्वागत किया। हमारे देश में आज भी आपस में एक दूसरे को दीपावली की शुभकामनायें देने के लिये हम "हैप्पी दीवाली" कहकर या शुभकामना पत्र अंग्रेजी में भेज कर गौरवान्वित होते हैं।

भारतीय संस्कृति पर कुठाराघात

मैकाले के मतानुसार यदि किसी देश को नष्ट करना हो, तो पहले उस देश की संस्कृति को नष्ट कर दो। आज अपने देश में ऐसा ही हो रहा है। युवा वर्ग को केवल टी.वी. के जरिये पाश्चात्य देशों की फैंटेसी के जाल में उलझा कर भारतीय संस्कृति को नष्ट करने का कुचक्र रचा जा रहा है। आज देश का सम्पूर्ण युवा वर्ग भारतीय संस्कृति से विमुख होकर पश्चिमी संस्कृति की चकाचौंध व उपभोक्तावादी कल्चर के चलते विलासी जीवन बिताने की ओर द्रुतगति से खींचा जा रहा है। आज का युवा वर्ग सम्पूर्ण सामाजिक वर्जनाओं को तोड़कर अपने को आधुनिक प्रदर्शित करने में गर्व का अनुभव करता है। इसी सौँस्कृतिक प्रदूषण को दूर करने के उपाय करने होंगे।

हिन्दी, स्वदेशी के बारे में ब्रिटिश उद्योगपति व सांसद लार्ड स्वराज पाल

लार्ड स्वराजपाल ब्रिटेन के ही नहीं, विश्व के बड़े औद्योगिक घरानों में गिने जाते है और ब्रिटेन में उन्हें लार्ड की उपाधि से विभूषित कर संसद का सदस्य मनोनीत किया गया है। आज उस संसद में भारतीय भी हैं, जो ब्रिटेन के भविष्य का निर्धारण करते हैं। श्री स्वराज पाल की कम्पनी "कपारो ग्रुप" में चार हजार कर्मचारी (अधिकांशतः अंग्रेज) काम करते हैं। उनकी ५२५ मिलियन पौंड अर्थात् लगभग चार खरब भारतीय रुपयों वाली कम्पनी है। वे लेबर पार्टी में अच्छी खासी दखल रखते हैं और प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर के सबसे खास मित्रों और सलाहकारों में गिने जाते हैं। वे भारत को अपनी पुण्य भूमि मानते हैं और भारत में ऐसे सैकड़ों संस्थान है जिनको वह आर्थिक सहयोग देते हैं। वह घर में, आपस में और बच्चों से हिन्दी बोलते हैं। जबकि हमारे देश में मात्र कुछ करोड़ के स्वामी पाश्चात्य सभ्यता में जीने में

गौरव समझते हैं। क्योंकि उनका कहना है कि अगर हम हिन्दी नहीं बोलेंगे तो फिर हम अपनी पहचान खो देंगे। "कपाटो हाउस" के लंदन स्थित कार्यालय में श्री स्वराज पाल से भारत से गये कुछ पत्रकारों ने बातचीत की और यह वार्ता एकाध मौकों के अलावा पूरी तरह हिन्दी में हुई। हिन्दी के बारे में चर्चा हुई तो उनका कहना था कि भाषा बहुत गम्भीर विषय है। भाषा से किसी देश की पहचान बनती है और उस देश के रहने वालों में देश के प्रति अभिमान का कारण बनती है। हालांकि मैं यह मानता हूँ कि भारत में इतनी अधिक संख्या में अंग्रेजी जानने वाले लोग विकास के लिए एक बहुत बड़ी मानव सम्पदा है। अंग्रेजी बोलना, अंग्रेजी जानना स्वयं को साधन सम्पन्न करना है। लेकिन अपने दिल में स्वदेश के प्रति अभिमान तो अपनी भाषा के कारण ही पैदा होता है। जब मैं हिन्दी में बात करता हूँ तो मन में एक खास किस्म का गौरव अनुभव करता हूँ। संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के प्रतिनिधि जाते हैं तो वे हिन्दी में क्यों नहीं बोलते ? जब वे सिर्फ हिन्दी में ही बोलेंगे तो संयुक्त राष्ट्र संघ में भी हिन्दी के अनुवाद की व्यवस्था होगी। आज तो वहाँ हिन्दी को स्वीकार कराने की जरूरत ही नहीं अनुभूत होती और भारत के लोग भी यह जरूरत महसूस नहीं करवाते हैं। इसमें किसका दोष है ? १६४६ में पं. नेहरू कैम्ब्रिज आये थे। वहाँ हार्वर्ड में पढ रहे भारतीय छात्रों के साथ उनकी बातचीत रखी गई। वे पहले अंग्रेजी में बोले और फिर कहा, क्या मैं अब हिन्दी में बात करूँ? आप सबको हिन्दी आती ही होगी, न भी आती तो भी भारतीयों से मुझे हिन्दी में बात करना अच्छा लगता है। तो ऐसा उदाहरण है हमारे सामने, पहल तो हमें करनी ही होगी, हम उम्मीद न रखें कि दुनिया हमारे लिए पहल करेगी। जब भारत में ही हिन्दी बोलने वाले ज्यादा हो जायेंगे तो हिन्दी के लिए इस तरह का प्रयत्न करने की जरूरत भी नहीं होगी। आज तो हालात यह है कि आप उन प्रदेशों में, जिन्हें हिन्दी प्रदेश कहा जाता है, जैसे उत्तर प्रदेश या मध्य प्रदेश में चले जाएँ तो वहाँ भी लोग आपस में अंग्रेजी में बात करना चाहते हैं। इसके पीछे शायद एक भावना भी है कि जो हिन्दी में बात करते हैं वे निचले दर्जे के या कम पढ़े लिखे हैं। मैं पूरी तरह से स्वदेशी के पक्ष में हूँ। मैं मानता हूँ कि भारत की समस्यायें भारत द्वारा, भारत में रह रहे भारतीयों द्वारा ही हल की जा सकती हैं। स्वदेशी का अर्थ है–आत्मनिर्भरता। 'आई लव इंडिया' के स्थान पर 'मेरा प्यारा भारत' कहने में लज्जा क्यों आती है। भारत–भारत ही रहेगा, अब इंडिया के सपने त्यागने होंगे।

आज हमें हिन्दी के प्रति गुजराती भाषी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की उसी निष्ठा की आवश्यकता है जिससे प्रेरित होकर उन्होंने अपनी शिष्या अंग्रेज महिला मेडेलीन स्लेड (जो कालांतर में मीराबेन नाम से विख्यात हो गई) को निरन्तर हिन्दी सीखने के लिए प्रोत्साहित किया। मीराबेन ने अपनी आत्मकथा "दि स्प्रिट्स पिलग्रिमेज (आत्मा की तीर्थ यात्रा) में लिखा है–

"मेरी हिन्दी सुचारू रूप से प्रगति कर रही थी, किन्तु उतनी शीघ्रता से नहीं जितना मैं चाहती थी। इस पूरी अवधि में बापू के पत्रों में इस बात का उल्लेख रहता था कि मुझे हिन्दी सीखने का काम पूरा करना है और उनकी यह कामना है कि मैं उनके पास कहीं भी रहने के लिए तब तक न जाऊँ, जब तक यह काम पूरा न हो जाये। हिन्दी पहले और सब बातें बाद में।

आज आवश्यकता है महात्मागांधी के परम अनुयायी श्री वियोगी हरि के उन संकल्पों की, जिनमें उन्होंने अंग्रेजी में छपे निमंत्रण–पत्रों का बहिष्कार करने का व्रत लिया और साथ ही यह व्रत लिया कि वह ऐसी दुकानों से खरीदी हुई वस्तु का उपयोग नहीं करेंगे जिनका नाम पट्ट केवल अंग्रेजी में होगा।

हिन्दी राष्ट्र भाषा कैसे बनी ?

हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्रीय एकता और अखण्डता का प्रतीक है। यह हमारे सामाजिक सांस्कृतिक धार्मिक आन्दोलन की अभिव्यक्ति की

भाषा भी है। यह तो समस्त भारत की सदियों से सम्पर्क भाषा, धर्म और भक्ति की भाषा, तीर्थों की भाषा, और छावनियों की भाषा रही है।

हिन्दी भारत के सभी हिस्सों में बोली, पढ़ी व समझी जाती है, यह बोधगम्य होने के साथ–साथ राष्ट्र की संस्कृति की संवाहक भी है। कुछ लेखक लिखते हैं कि संविधान में हिन्दी का प्रवेश एक मत के अन्तर से स्वीकार किया गया।

यह असत्य बात बड़े पैमाने पर फैलाई जा रही है, जबकि हिन्दी को सर्वसम्मति से संविधान में सम्मिलित किया गया था।

इस समिति को मुंशी–आयंगर समिति कहते हैं। इसके सदस्य थे, श्री गोपाल स्वामी आयंगर, श्री टी.टी. कृष्णामाचारी, श्री ए.के. आयंगर, श्री कन्हैया लाल मानिकलाल मुन्शी, डा. भीमराव अम्बेडकर, श्री सआदुल्ला, श्री एल.एम.राव, मौलाना अबुल कलाम आजाद, पंडित गोविन्द बल्लभ पन्त, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, श्री बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन', श्री श्यामा प्रसाद मुखर्जी और श्री के. संथानम्। इनमें अधिकतर अहिन्दी भाषी थे, परंतु ये लोग हिन्दी को ही राजभाषा बनाने के लिए एकमत थे, इसके अलावा अंकों के बाबत निर्णय किया गया कि शासकीय प्रयोग हेतु अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को मान्यता प्रदान की जाय।

इस घटना को ही कुछ लोग संविधान सभा की घटना मान गए, इससे यह भी जतलाना चाहते हैं कि हिन्दी को राजभाषा बनाने पर विरोध था, जो कि पूर्णतया गलत है।

संविधान सभा में १२ सितम्बर, १९४९ को हिन्दी को राजभाषा बनाने के प्रावधान का प्रस्ताव श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने रखा, व इसका समर्थन श्री शंकर राव देव ने किया था। ये दोनों अहिन्दी भाषी राष्ट्रभक्त नेता थे।

इस विषय पर बहस प्रारम्भ होते ही डा. राजेन्द्र प्रसाद ने सदस्यों से अनुरोध किया कि वे संयत भाषा का प्रयोग करें और ऐसा कुछ न कहें जिससे दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचे। सभा में १२, १३ एवं १४ सितम्बर १९४९ को बहस हुई, इस बहस में ७१ सदस्यों ने भाग लिया व अन्त में संविधान सभा के अध्यक्ष डा. राजेन्द्र प्रसाद ने घोषणा की कि यह प्रस्ताव पूर्णतया सर्वसम्मति से पारित कर दिया गया है। यह प्रस्ताव संविधान के भाग १४ का अंग बन गया। १४ सितम्बर १९४९ को हिन्दी को राजभाषा घोषित किए जाने के कारण ही देश भर में १४ सितम्बर को हिन्दी दिवस मनाया जाता है।

अंग्रेजों ने जिस प्रकार देश के नगरों में वर्ग भेद को बढ़ावा देने के लिये 'सिविल लाइन्स' मोहल्ले बनाकर शेष 'नान सिविलियन्स' से श्रेष्ठता एवं निम्नता (गँवार) की दीवारें खड़ी करके मानसिकता के दोहरे मानदण्ड स्थापित करने में सफलता प्राप्त की, उसी जाल में कहीं हम पुनः उलझ न जायें। हमारे दादी माँ तथा नानी के घरेलू जड़ी–बूटियों के नुस्खे कहीं आलू जाल के लच्छे कम मूल्य के न लेकर ऐसिड (हानिप्रद रसायन) से निर्मित आकर्षक पैकिंग में अंग्रेजी के 'अंकिल चिप्स' की थैली में कई गुना अधिक देकर इन विदेशी कम्पनियों में लुप्त न हो जाये।

एक ईस्ट इंडिया कम्पनी ने देश को कितने वर्ष गुलाम बनाया, अब जब अनगिनत विदेशी कम्पनियाँ अपना जाल फैलायेंगी तब देश का क्या होगा ? क्या इस विषय में हम सोच रहे हैं?

हिन्दी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों का प्रचुर भण्डार उपलब्ध है। आवश्यकता है तो केवल इन्हें प्रयोग करने की, मानसिकता में बदलाव लाने की।

राजनेता कविहृदय श्री केशरीनाथ त्रिपाठी की मन को झंकृत कर देने वाली कविता से हम अपनी बात समाप्त करेंगे–

झकझोर दे उन्हें, करे समय की पहचान,
जो सो गया उसका, सदा को सो गया विहान।
है बदल रही विधा, बदल दो अब विधान। ।

आप आत्म गौरव तभी अनुभव करेंगे जब 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' के स्थान पर स्वयं पहले अपनी भाषा में कुशल क्षेम पूँछे न कि 'हलो–हाउ–'हाउ या'हाय'–'हाय' की भाषा में।

जय हिन्दी ! जय नागरी !

महाराज प्रयाग, नारायण मंदिर
शिवाला, कानपुर

१४ सितम्बर : हिन्दी-दिवस

आचार्य रघुनाथ भट्ट

आज से तरेपन वर्ष पूर्व १४ सितम्बर, १९४९ को स्वतंत्र लोकतांत्रिक भारत के लिए संविधान सभा ने राष्ट्रीय कार्य–व्यापार के लिए हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकृति प्रदान की थी। भारत के इतिहास का वह एक अति महत्त्वपूर्ण दिन था। सदियों की गुलामी के पश्चात् आज़ादी की हवा में उसे श्वास लेने का अवसर मिल रहा था। लम्बे अरसे से पिंजरे में कैद सिंह की मुक्ति का वह दिन था। वर्षों से परदेशी शासन के सत्तास्थानों में अपनी पहचान को धक्के खाते देखकर लाचार राष्ट्रवाणी की वह मुक्तिवेला थी। मुँह पर गुलामी की पट्टी लगाए गूँगे राष्ट्र को मुँह खोलने का अवसर प्राप्त हो रहा था। भारत की संविधान सभा ने अंग्रेजी के व्यामोह से राष्ट्र को मुक्त करने का यशस्वी मार्ग प्रस्तुत किया था। 'हमारा देश, हमारा राज्य और हमारी भाषा के सूत्रपात के युग का यह श्रीगणेश था।'

संविधान सभा ने देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को सारे राष्ट्र की कामकाज की भाषा के रूप में स्वीकार कर आज़ादी की लड़ाई के सर्वोत्तम फल की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया था। भाषाओं के उपासक देश को अपनी भाषा में अपना कामकाज करने का विधिवत् अवसर मिल रहा था। खुशी इस बात की थी कि जिस विदेशी भाषा ने हमें अपनी मोहिनी से ऐसा लुभा रखा था कि हम भस्मासुर की तरह अपने ही हाथों से अपने अस्तित्व को अग्नि में विलीन करने की मानसिकता को नृत्य की मुद्रा समझ रहे थे, वह अब अपनी माया समेट रही थी।

राष्ट्र और उसकी भाषा कोई अलग–अलग वस्तु नहीं हैं। वह तो शरीर में रक्त-संचार के समान सारे राष्ट्र के हर कार्यकलाप की पहचान है, हर भावना की धरोहर है और हर विचार की अभिव्यक्ति है। वह राष्ट्र की धरती में उगती है, उसी के साथ बढ़ती है, पनपती है और परिपक्व होती है। वह फल की छाल नहीं है, वह तो दूध में घुली शर्करा है। राष्ट्र भाषा से पहचाना जाता है और भाषा की पहचान भी राष्ट्र है। राष्ट्र कोई आले में रखी चीज नहीं है। उसकी निश्चित भौगोलिक सीमाएँ हैं। एक लड़ी में ही पिरोया हुआ समाज है। संस्कृति का एक सूत्र है। दुःख–सुख की एक परम्परा है। इनसे उसकी भाषा बनती है और इसी भाषा में वह अपने आपको व्यक्त कर सकता है, इसलिए भाषा केवल एक आपसी माध्यम न होकर राष्ट्र की विशिष्टताओं की वाहिका भी है। भाषा एक समाज की, एक संस्कृति की, एक सभ्यता की द्योतिका है। वह भूत, वर्तमान और भविष्य को अपने कार्यक्षेत्र में ले लेती है, इसलिए प्रत्येक राष्ट्र को अपनी स्वतंत्रता, अपनी पहचान, अपनी भाषा की आवश्यकता होती है। संविधान सभा के विचारवान सदस्यों ने इन सब मुद्दों को लेकर अखिल भारतीय दृष्टि से संघीय भाषा के रूप में हिन्दी को तरजीह दी थी।

संविधान में राजभाषा

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटिश मजदूर दल की सरकार के प्रधानमंत्री श्री एटली ने १५ मार्च, १९४६ को एक घोषणा की। इस घोषणा में उन्होंने बताया कि उनके मंत्रिमण्डल के सहयोगी भारत में जाकर स्वतंत्र भारत के संविधान के लिए आधार–भूमि तैयार करेंगे। १५ मार्च को ब्रिटिश मंत्रिमंडल के तीन सदस्यों का एक दल भारत आया। इसे कैबिनेट मिशन की संज्ञा दी गई। इस दल ने भारत की संविधान सभा के निर्माण के लिए कुछ तथ्य और आधारों को प्रस्तुत किया। इन आधारों पर ६ जुलाई, १९४६ के दिन संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव

हुआ और ६ दिसम्बर १६४६ को इसका प्रथम अधिवेशन दिल्ली में हुआ। ११ दिसम्बर, १६४६ के दिन देशरत्न डा. राजेन्द्रबाबू को इस सभा का अध्यक्ष चुना गया। २२ जनवरी, १६४७ को संविधान सभा में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने प्रस्ताव रखा–

'संविधान सभा भारतवर्ष को स्वतंत्र सार्वभौम घोषित करने और उसके भावी शासन के लिए स्वतंत्र संविधान बनाने का दृढ़ और पवित्र निश्चय प्रकट करती है'

स्वतंत्र और सार्वभौम राष्ट्र के संचालन के लिए संविधान सभा के ३८६ सदस्यों ने संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए एक प्रारूप समिति का गठन किया। समिति ने २१ फरवरी, १६४८ को संविधान का प्रारूप तैयार कर संविधान सभा को प्रस्तुत किया। २६ नवम्बर, १६४६ को संविधान सभा ने इसे अपनी स्वीकृति प्रदान की और २६ जनवरी, १६५० से संविधान लागू हुआ।

संविधान सभा के आरम्भ में ही भाषा प्रश्न सामने आया कि कार्यवाही की भाषा क्या हो ? इस पर यह निर्णय लिया गया कि सभा के कामकाज की भाषा हिन्दुस्तानी या अंग्रेजी होगी, पर कोई भी सदस्य अध्यक्ष की अनुमति से अपनी राय अपनी मातृभाषा में प्रस्तुत कर सकेगा। १४ जुलाई, १६४७ को एक संशोधन किया गया, जिसके द्वारा 'हिन्दुस्तानी' के स्थान पर 'हिन्दी' शब्द रखा गया।

राष्ट्र के लिए एक भाषा का प्रश्न गम्भीर चर्चा का विषय बन गया था। सभी सदस्य यह स्वीकार करते थे कि इस देश का कारोबार विदेशी भाषा के द्वारा नहीं चल सकता। स्वतंत्र देश और उसके राज्यों के लिए अपनी भाषा होनी ही चाहिए। राज्यों के लिए कामकाजी भाषा का निर्धारण सरल था, पर देश के लिए एक भाषा निर्धारित करना और वर्तमान कामकाजी भाषा अंग्रेजी को एकदम बदलना सरल काम नहीं था। इस पर सदस्यों के बीच काफी लम्बे अरसे तक विचार–विमर्श हुआ। आखिर डॉ. राजेन्द्र बाबू ने भाषा के मसले पर विचार करते समय सदस्यों से अनरोध किया कि वे बिना किसी पूर्वाग्रह और उद्वेग के राष्ट्र के स्वस्थ और अखंड भविष्य के लिए भाषा के निर्धारण पर अपना निर्णय स्थिर करें।

१२ और १३ सितम्बर, १६४६ की सभा में सबसे पहली बार राष्ट्रभाषा के विषय पर विचार हुआ। श्री गोपालस्वामी आयंगर, डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी और श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने सदस्यों के साथ पर्याप्त विचार–विमर्श किया और राष्ट्रभाषा के विषय में एक सूत्र तैयार किया जो आगे चलकर 'मुंशी–आयंगर सूत्र' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तदनुसार यह प्रस्ताव रखा गया कि–'हम इस बात के पक्ष में हैं कि भारत के संविधान में यह रखा जाए कि राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि क्रमशः हिन्दी और देवनागरी होगी।' हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपनाते हुए अंग्रेजी का प्रयोग १५ साल तक जारी रखने का भी निर्णय हुआ।

१४ सितम्बर, १६४६ को सायं ६ बजे श्री मुंशीजी द्वारा एक संशोधित प्रस्ताव रखा गया कि नागरी लिपि में लिखित हिन्दी को ही राजभाषा का मान प्रदान किया जाए। संविधान सभा ने इस प्रस्ताव को पारित किया। इस पर सभा के अध्यक्ष डा. राजेन्द्रप्रसाद ने सभी सदस्यों को बधाई देते हुए जो वक्तव्य दिया वह स्मरणीय है। उन्होंने कहा था–'आज यह पहली बार है कि हमारा एक विधान है, अपने संविधान में एक भाषा का उपबंध कर रहे हैं जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी।'

१४ सितम्बर केवल हिन्दी के लिए ही आत्मगौरव का दिवस नहीं है, अपितु हमारे संविधान में स्वीकृत सभी भाषाओं के सम्मान का दिन है। भारत की सभी भाषाएँ अपने–अपने क्षेत्र में संविधान के इस प्रावधान से प्रतिष्ठा को प्राप्त हुईं। अंग्रेजी की गुलामी के बोझ से पीड़ित भारतीय भाषाओं के लिए यह दिन वास्तव

में मुक्ति का दिन है।

भारत में भाषाओं की विविधता रही है। स्वयं महान् भाषाविद् महर्षि पतंजलि ने अपने भाष्य में भारत की बहुभाषिता को स्पष्ट करते हुए उसकी एक सा न्य, सर्वप्रचलित भाषा का महत्त्व भी सामने रखा था। हमारे यहाँ बिना संविधान के संस्कृत ने हजारों वर्षों तक राष्ट्रभाषा की भूमिका निभाई है। इतना ही नहीं, दक्षिण एशिया की महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में उसकी स्वीकृति के बीज आज भी दक्षिण एशियाई भाषाओं से मिलते हैं। हिन्दी ने संस्कृति और एकता को बनाए रखने में राष्ट्र की अखंडता के संरक्षण का कार्य किया है। सदियों पूर्व से ही वह राजभाषा के रूप में प्रयोग में आती रही है। तीर्थस्थानों में, पर्यटन केन्द्रों में, व्यापारिक मंडियों में, साधु–सन्तों में, सार्वजनिक उत्सवों में, कवि–पंडितों में, राजदरबारों में आदान–प्रदान की भाषा हिन्दी रही है। बंगाल से लेकर काबुल तक और श्रीनगर से लेकर कोलंबो तक आम बोलचाल की भाषा के रूप में हिन्दी फैली है। हिन्दी का यह फैलाव स्वयंभू है। इस बड़े भूखंड में जब दो विभिन्न भाषी मिलते हैं तो उनके बीच वार्तालाप का माध्यम अनायास ही 'हिन्दी' होता है। हमारे सभी राजपुरुषों ने, साहित्यकारों ने, सन्तों और श्रीमंतों ने एक स्वर से हिन्दी को बलवती राष्ट्रभाषा के रूप में सराहा और राष्ट्रीय एकता के लिए उसे आवश्यक माना है। इतना ही नहीं, जिस विदेशी पर्यटक, विद्वान् और व्यापारियों ने भारत भूमि पर पैर रखा, उसने भी यह महसूस किया कि भारत की सामान्य भाषा हिन्दी है।

हिन्दी देश की सर्व–स्वीकृत भाषा है। यह समझना गलत है कि हिन्दी भाषियों की संख्या बहुलता के कारण हिन्दी लादी गई है। हिन्दी को किसी पर थोपने का या लादने का प्रश्न उठाना हिन्दी के ऐतिहासिक भूमिका की अनदेखी करना है। प्राचीन काल से ही हिन्दी की विकास–यात्रा में, राष्ट्रीय यात्रा में उनका भी योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी। अकबर से पहले मुहम्मद कासम, मुहम्मद गजनवी और मुहम्मद गोरी ने सिन्ध, पंजाब और दिल्ली में शासन प्रबन्धक का काम हिन्दी में ही किया था। सिकन्दर लोदी ने फारसी चलानी चाही, पर उसे मात खानी पड़ी।

अकबर स्वयं हिन्दी में कविता करता था। यह परंपरा जहाँगीर, औरंगजेब और बहादुरशाह तक कायम रही। हिन्दुओं की छोटी–बड़ी रियासतों में अपने कामकाज के लिए हिन्दी उपयुक्त मानी जाती थी। मराठा और राजपूत शासकों के बीच पत्र–व्यवहार, संधि विग्रह की भाषा हिन्दी थी। महाराज पृथ्वीराज चौहान तथा मेवाड़ नरेश अनुपम सिंह हिन्दी में पत्राचार करते थे।

सन् १६५५ में एक विदेशी यात्री एडवर्ड टेरी भारत आया और उसने लिखा–'हिन्दी भारत में हर जगह बोली जाती है।' हिन्दी का प्रथम व्याकरण तुरोनेसिस ने इसलिए लिखा कि पश्चिमी यात्रियों को हिन्दी सीखने में मदद मिले। डचों ने भी भारत में अपने प्रशासनिक अधिकारियों के लिए भारतीय भाषाओं की जानकारी आवश्यक मानी थी। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान डा. रामविलास शर्मा के अनुसार–आगरा जैसे व्यापारिक केन्द्रों में विदेशी व्यापारी, राजदूत आदि न केवल यहाँ की जनता से विचारों का आदान–प्रदान करने के लिए, वरन् आपस में अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी (हिन्दुस्तानी) का व्यवहार करते थे। नेपाल के साथ तो पत्र–व्यवहार हिन्दी में ही होता था।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने की आवाज़ बंगला से सर्वप्रथम राजा राममोहन राय ने उठाई थी। १८६४ में फ्री चर्च के महाराष्ट्रीयन विद्वान् श्री पेठे ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में घोषित किया था। १८६७ में पंजाब विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार श्री नवीनचंद सेन ने हिन्दी को समस्त देश की आर्षवाणी के रूप में प्रतिष्ठित किया था।

केरल के स्वाति तिरूमाल तो स्वयं हिन्दी के कवि थे। आन्ध्र के नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि से लेकर आज तक के अनेक तेलुगु भाषियों ने हिन्दी को अपना प्रेम दिया है। तमिल प्रदेश में प्राचीनकाल से ही हरिकथाओं में हिन्दी के कवियों का आदर के साथ स्मरण होता था। श्री.वी. कृष्ण स्वमी अय्यर तो हिन्दी के परम भक्त थे।

इस सारे इतिहास और इस सारी पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करते हुए हम यह प्रतिपादित कर सकते हैं कि हमारे देश ने हिन्दी को बहुत पहले से ही राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान कर दी थी। भारत के सभी सम्प्रदायों ने, विद्वानों ने, श्रेष्ठियों ने, राजनेताओं और साहित्यकारों ने एक स्वर में भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को माना है। १४ सितम्बर को, संविधान सभा के प्रस्ताव ने इन सब भावनाओं को, विचारों को समाहित करते हुए हिन्दी राष्ट्र भाषा के रूप में संविधान में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। साथ ही साथ, अन्य भारतीय भाषाओं के लिए भी महत्त्वपूर्ण प्रावधान किया है। यह संविधान भारतीय बहुभाषिता की परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए भारतीय एकता के लिए एक भाषा की अनिवार्यता को प्रतिष्ठापित करता है। अब थोपने-थापने की विचारधारा के लिए अवकाश नहीं है। संविधान की भावना के कार्यान्वयन के प्रति निष्ठा की आवश्यकता है। दृढ़ मनोबल और आत्मगौरव से हम यदि प्रतिज्ञा करें तो हर क्षेत्र में हिन्दी को अपना सकते हैं। हिन्दी में कोई कमी नहीं है। यदि कमी है तो हमारे मन में है। मानसिक गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए हृदय की धमनियों में रक्त का उष्ण संचार चाहिए। पूज्य महात्मा गांधी ने स्पष्ट रूप से आह्वान करते हुए रक्त की उष्ण भाषा में कहा था कि यदि मैं तानाशाह होता तो–

१. आज ही विदेशी भाषा में शिक्षा का दिया जाना बंद कर देता।

२. सारे अध्यापकों को स्वदेशी भाषाएँ अपनाने पर मजबूर कर देता।

३. जो आनाकानी करते, उन्हें बरखास्त कर देता।

४. मैं पाठ्यपुस्तकों के तैयार किए जाने का इन्तजार नहीं करता।

पूज्य बापू के इन शब्दों को याद करते हुए हम अपने देश की भाषाओं की रक्षा करें और संविधान सम्मत राष्ट्रभाषा में अपना सारा व्यवहार शुरू कर दें। पूज्य बापू के शब्द आजादी की ५५ वीं वर्षगाँठ के समय और भी आत्म निरीक्षण की ओर मुड़ने के लिए ललकारते हैं और यह ललकार तब और कायल कर देती है, जब हम 'चलो दिल्ली' का नारा देने वाले स्वनाम धन्य नेताजी श्री सुभाषबाबू का स्मरण करते हैं। गुजरात में तो हिन्दी के प्रचार का अलख जगानेवाले श्री जेठालाल जोशी चिरस्मरणीय रहेंगे। ऐसे पुण्य पुरुषों के नामों का उच्चारण करते ही हमारी जिह्वा काँपने लगती है कि गुलामी में भी जो आजादी की भाषा बोलते थे, उनके वंशज आज आजादी को गुलामी की भाषा में मना रहे हैं। आत्मजागरण की भावना की क्षीण होती हुई इस ज्योति को राष्ट्रनेताओं, साहित्यकारों, सन्तों और स्वभाषा प्रेमियों का स्नेह मिलेगा।–इसी श्रद्धा और विश्वास से स्वदेश प्रेमी कवि श्री द्विवेदीजी के शब्दों में देशवासियों की स्वदेश–भावना की जागृति के लिए आह्वान करते हैं–

जो भरा नहीं है भावों से,
बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।

–प्रबन्ध संपादक 'गुर्जर राष्ट्रवीणा'
गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार
समिति,हिन्दी भवन, अहमदाबाद

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।

यह साजिश कब तक होती रहेगी

✍ सुरेश आनंद

राष्ट्रभाषा के खिलाफ प्रथम साजिश तब हुई जब संविधान गढ़ने वालों ने विस्मृत किया कि महात्मा गांधी ने आजादी के पूर्व क्या-क्या हिदायतें दी थी ? क्या कार्यक्रम था ? देश को किस भारतीय संस्कृति के अनुरूप ढालना है।

राष्ट्र को राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही गुजरात के महात्मा गांधी, दयानंद सरस्वती, महाराष्ट्र के बालगंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, आचार्य प्रवर विनोबा भावे, बंगाल के सुभाषचन्द्र बोस, कवीन्द्र रवीन्द्र टैगोर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द, तमिलनाडु के सुब्रह्मण्यम् भारती एवं हिन्दी भाषा–भाषी क्षेत्रों के अनगिनत रचनात्मक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक नेताओं ने सन् १६३४ से सन् १६४७ तक नगर नगर, डगर, डगर एवं ग्राम ग्राम हिन्दी में ही सम्पर्क करके सम्पूर्ण राष्ट्र में जहाँ अपनी बात समझाकर आजादी के लिए अलख जगायी, वहीं राष्ट्रीय स्तर पर एकता व समानता के बीज भी रोपे गए।

उन दिनों यह सर्वमान्य मान्यता थी कि हिन्दी ही राष्ट्र में बहुमत की भाषा है। इसी को केन्द्र बिंदु मानकर आजादी के दीवानें चारों दिशाओं से निकल पड़े थे।

पंडित जवाहरलाल नेहरू विदेश से बैरिस्टर बनकर लौटे थे। उन पर अंग्रेजी भाषा साहित्य का जबरदस्त प्रभाव था। वे भी जब आजादी की लड़ाई में कूदे, उनको भी सन् १६३८/४० में कस्बे–कस्बे, गाँव–गाँव हिन्दी में ही प्रवचन देने पर मजबूर होना पड़ा था। तात्पर्य यह है कि संविधान गढ़ने तक अर्थात् १३ सितम्बर, १६४६ तक राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर हिन्दी के पक्ष में माहौल था। महात्मा गांधी ने इंदौर में हिन्दी साहित्य सभा की अध्यक्षता भी की थी। उन दिनों राजगोपालाचार्य भी कदम से कदम मिलाकर खड़े थे। यही कारण है १४ सितम्बर १६४६ को हिन्दी राष्ट्रभाषा भी बनी।

पर राष्ट्रभाषा के खिलाफ प्रथम साजिश तब हुई, जब संविधान गढ़ने का अधिकांश कार्य, विदेशी शिक्षा में दक्ष या दिलो–दिमाग विदेशों में गिरवी रखने वालों से कराया गया। उन्होंने भारतीय संविधान अंग्रेजी में गढ़ा। विदेशी संविधानों की नकलें की गई, वे विस्मृत कर बैठे कि महात्मा गांधी ने आजादी के पूर्व क्या–क्या हिदायतें दी थी ? क्या कार्यक्रम था, देश को किस भारतीय संस्कृति के अनुरूप ढालना है ? जो सुविधाएँ अंग्रेज भक्तों को मिल रही थीं, उनको जैसा का तैसा रखकर ताली पीट ली गई अर्थात् इसमें अंग्रेजी को पीछे के द्वार से घुसा दिया गया।

इतना ही नहीं, राष्ट्र भाषा के प्रश्न पर हिन्दी तो प्रथम दिन ही बलिवेदी पर स्वाहा हो जाती। पर चूंकि राजेन्द्रप्रसाद जी संविधान सभा के अध्यक्ष थे, उनके वोट से बच गई। फिर भी अंग्रेज–भक्त, अंग्रेजी जारी रखने की अवधि बढ़ा–बढ़ाकर अपनी विजय के नगाड़े पीटते रहे।

दूसरी साजिश तब हुई जब समृद्धशाली हिन्दी अंक/हिन्दी गणित को संविधान में ही स्थान नहीं दिया गया और जो कार्य अंग्रेजों ने भी नहीं किया, वही कार्य काले अंग्रेजों ने कर दिखाया। हिन्दी अंकों में भारतीय ज्योतिष, भारतीय–विज्ञान सभी कुछ गढ़ा गया था। उसकी हमेशा के लिए इतिश्री करवाकर व टंकण–मुद्रण से भी हिन्दी अंक

निकलवाकर साजिश की गई। जो लोग अंक गणित, बीज गणित, शुद्ध हिन्दी अंकों को हिन्दी भाषा में पढ़ते थे, उन्हें रद्दी में फिकवा दिया। भाषा की सशक्त तकनीक को निकालकर दूसरी साजिश की गई।

तीसरी साजिश तब हुई, जब अंग्रेजी प्रशासन में दक्ष प्रशासनिक सेवाओं के तथाकथित भारतीयों ने प्रशासन अपनी मुट्ठी में रखने हेतु नये कांग्रेस मंत्रियों को कोई सहयोग नहीं दिया। ये मंत्री भी कुर्सी के भूखे थे और उन्होंने अधिकारियों से भाषा की बाबत समझौता कर लिया। भारतीय संस्कृति के पोषण, जिन्होंने एक बार कहा था–जाओ, कह दो दुनिया वालों से कि गांधी को अंग्रेजी नहीं आती, वे बापू भी उपवास करने के लिए धरती पर नहीं रहे थे और नेहरू तत्कालीन गर्वनर माउन्टबेटन एवं लेडी माउन्टबेटन से चमत्कृत थे। यही कारण है कि आज भी तरेपन वर्षों से निरन्तर अंग्रेजी भाषा राज्यों में बरकरार है।

चौथी साजिश तब हुई, जब आम आदमी को सार्वजनिक स्थल, न्यायालय, विद्यालय, चिकित्सालय, प्रशासनिक कार्यालय आदि में राष्ट्रभाषा को उपयोग में लाने ही नहीं दिया गया। आजादी के पश्चात् लगभग १०–१५ वर्षो तक तो पसीना ही आता रहा। आम आदमी अधिकोषों की सीढ़ियों पर बैठकर रोता था, कोई उसका रकम निकालने का पुरजा अंग्रेजी में भर दे? आयकर विभाग में व्यापारी की आँख खुली की खुली रह जाती, उसे अंग्रेजी आनी चाहिए, तभी वह आयकर विभाग से लड़ सकता था ? तारघर में कहा जाता था अंग्रेजी में तार जल्दी पहुंच जाते हैं। लिफाफे पर अंग्रेजी में पता यह कहकर लिखे जाते कि ये चिट्ठियां जल्दी पहुंचती हैं और इस तरह हिन्दी भाषा–भाषी भी भयभीत होकर अंग्रेजी सीखने के लिए दौड़ पड़े। अंग्रेजी पुस्तकों, अंग्रेजी के अध्यापकों, आंग्लभाषी स्कूलों की चाँदी हो गई।

पाँचवी साजिश हिन्दी भाषी को देश में शिक्षा से वंचित करने की योजनाबद्ध कार्यवाही के रूप में की गई। आई.ए.एस. अर्थात् भारतीय प्रशासनिक सेवा में हिन्दी भाषा–भाषी न घुस सकें, अतः हिन्दी का परचा भी अंग्रेजी में करने को कहा गया। इसका विरोध करने वाले मध्यप्रदेश के ही एक वरिष्ठ भारतीय प्रशासनिक सेवा के सचिव हैं, जिन्होंने रतलाम में हिन्दी दिवस पर यह रहस्योद्घाटन किया था।

स्थिति इससे भी अधिक डरावनी है। वेदप्रताप वैदिक, भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान के एम.एस.सी. भौतिक विज्ञान के छात्र श्यामचन्द्र पाठक, मुकेशकुमार जैन इसके गवाह हैं, उन्हें शोध प्रबन्ध राष्ट्रभाषा हिन्दी में नहीं लिखने दिए गए। लिखने पर परेशानी उठानी पड़ी और संघर्ष करके ही मां शारदा के ये पुत्र आगे बढ़ सके। इतना ही नहीं, मध्यप्रदेश के अखबारों नई दुनिया, भास्कर की सितम्बर ८५ के सम्पादकीय से स्पष्ट परिलक्षित है कि जगदलपुर के एक मिशन स्कूल में छोटे–छोटे बच्चे से हिन्दी बोलने पर २५ पैसे जुर्माना लिया गया। उन्हें अंग्रेजी में ही व्यवहार करने हेतु बाध्य किया गया।

छठी साजिश के अर्न्तगत उपरोक्त प्रकार की अंग्रेजी शिक्षा व अंग्रेजी सभ्यता, अंग्रेजी वेशभूषा की शहरों की शहरों में ही नहीं बल्कि गाँव–गाँव, कस्बों–कस्बों में दुकानें खुली ही नहीं, आज भी तरेपन वर्षों के पश्चात् भी खुलती जा रही हैं। हर दुकान पर अधिकारी, अंग्रेज भक्त शिक्षक, विदेशी–फादर, अंग्रेजी स्कूलों के धंधेबाज ताली पीटते हैं और भारतीयता नीलाम होती रहती है।

अधिकारी व व्यापारी के बच्चे जिन्हें पिताश्री के पदचिह्नों पर चलकर सुविधाएँ एवं पूँजी जुटानी हैं, वे इन्हीं महंगे आंग्ल भाषी विद्यालयों में टाई बांधकर बैठते हैं। फिर विदेश जाकर वहां की शिक्षा

संस्कृति भाषा सभ्यता की टोपी पहनकर लौट आते हैं। उन्हें अपनी माता से विदेशी डायन अच्छी लगने लगती हैं। परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा–भाषी अनपढ़ दुकानदार भी अंग्रेजी में दक्ष को ही भगवान मानकर उन्हें ही पढ़े-लिखे व्यक्ति और उन्हें ही पूँजीपति मानकर दर्शन करने लगा है। वह अपने बच्चों को हिन्दी विषय या हिन्दी उपाधि लेने पर मारता पीटता है। उसे लगता है कि हिन्दी में उपाधि लेकर उसके बालक ने उसकी पूँजी गवां दी है। कार्यालयीय छोटा सा मंद बुद्धि भृत्य भी अधिकारी के बेटे के समान अपने बेटे को भी उसकी तरह ही स्कूल में दाखिला दिलाकर टाई बूट पहनाना चाहता है ? स्थिति यह है कि राष्ट्रभाषा ही नहीं, भारतीय सभ्यता, भारतीय माहौल, इतिश्री तक पहुंच चुका है। एक दिन वह भी आएगा जब अंग्रेजी परस्त बच्चे, युवा हिन्दी वालों को जूते मारेंगे।

इतना ही नहीं, अंग्रेजों के जमाने में मान्यता प्राप्त राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी संस्थाओं की परीक्षाओं की मान्यताएँ भी अधिकारी नहीं मानते। इन्होंने सबको अंग्रेजी पढ़ने पर मजबूर कर दिया है।

सातवीं साजिश हिन्दी भाषा–भाषी क्षेत्रों के हिन्दी अखबार रच रहे हैं। ये आम भारतीय आदमी से ऊर्जा नहीं लेते, इन्हें टेबल न्यूज अर्थात् पकी पकाई खिचड़ी चाहिए और यह उन्हें अंग्रेजी अखबारों से मिलती है। इन्हें ही यह परमेश्वर मानते हैं। यही कारण है कि हिन्दी अखबारों की मौलिकता कम होती जा रही है। यहाँ तक कि हिन्दी के अखबार धड़ल्ले से अंग्रेजी विज्ञापन छाप रहे हैं। दूरदर्शन तो राष्ट्रभाषा की कब्र प्रतिदिन खोदता ही है, उसके तो एक सौ खून क्षम्य हैं। वह भारतीय भाषाओं की फिल्में दिखाते समय भी हिन्दी की जगह अनुवाद अंग्रेजी में करता है। जैसे उसका विश्वास है, राष्ट्रभाषा अंग्रेजी है।

आठवीं साजिश यह हो रही है कि जो राजनीतिज्ञ, विधायक या सांसद बनने के बाद संविधान निष्ठा की शपथ लेता है, वही यह भूल जाता है कि उसी संविधान में राष्ट्रभाषा के पद पर हिन्दी आसीन है। वह हिन्दी का उपयोग न कर अपनी ही शपथ की अवहेलना करता है। इससे भयावनी स्थिति तब बनती है। जब किसी प्रांत का मुख्यमंत्री यह मानकर भी कि वह संविधान का रक्षक है और उसके अनुसार हिन्दी राष्ट्रभाषा है, उसका सम्मान होना चाहिए, पर वह उसका खुलकर विरोध करते हैं? केन्द्र भी उन्हें स्मरण नहीं कराता कि वे संविधान के प्रति असम्मान की भावना व्यक्त कर शपथ तोड़ रहे हैं। उन पर राष्ट्रद्रोह का अपराध तक दर्ज नहीं होता? उल्टे केन्द्र उस राज्य के मुख्यमंत्री से भयभीत हो, अंग्रेजी की अवधि बढ़ाकर अपने आपको ही हास्यास्पद स्थिति में डालता रहा है। उनकी सुविधा के लिए इस तरह राष्ट्रभाषा का निरन्तर ही अपमान होता रहा है और त्रिभाषा फार्मूला कभी हिन्दी कमजोर है, कभी अंग्रेजी के सामने नहीं टिकती आदि बहाने बनाकर या कुछ भी निर्णय कर केन्द्र अपनी डरपोक मूरत को छिपाने का प्रयासं करता रहा है।

यह कितनी अजीब बात है कि रामकृष्ण हेगड़े, नरसिंहराव, सुभाष घीसिंग जैसे अनेक अहिन्दी भाषा–भाषी देश की धारा से जुड़े रहे हैं, हिन्दी बोल रहे हैं, तब केन्द्र तरेपन वर्षों से असहाय सा क्यों साजिशें करने दे रहा है? हम अपने आप में इतने बौने हो गए हैं कि विदेश और विदेशीपन, देशी और राष्ट्रीयता का अर्थ ही नहीं समझ पाते हैं। रूस के राष्ट्रपति, जापान के प्रधानमंत्री, अपनी राष्ट्रभाषा रूसी एवं जापानी में बोलकर चले जाते हैं और हम उनके सामने अपनी राष्ट्रभाषा का प्रदर्शन तक नहीं

कर पाते ?

एक बार विनोबा जी ने कहा था, दुनिया को समझने के लिए खिड़की से काम नहीं चलेगा। इसके लिए अनगिनत खिड़कियां खोलनी होगी अर्थात् केवल अंग्रेजी से दुनिया को नहीं समझा जा सकता, बल्कि रूसी, जापानी, चीनी, जर्मनी, अरबी, फारसी जैसी विदेशी भाषाएँ भी सीखना होगा। स्थिति तो तब भयावह दिखती है जब हालैंड निवासी आलफ्स बानमेल जैसे मुझे लिखते हैं कि 'वर्तमान भारत की मानसिक गुलामी का एक स्पष्ट प्रमाण है। भारतीय भाषाओं में हिन्दी मुख्य है जिसका उपयोग न होना। भारतीय भाषाओं में बहुत समानता है, यूरोप की भाषाओं में यह नहीं है।' यह स्पष्ट है भारत में एक सांस्कृतिक एकता की मानसिकता है, क्या हम मानसिक गुलामी से निकल सकेंगे ?

अप्रैल, १६७८ को भोपाल में आयोजित एक हिन्दी सम्मेलन में हिमाचल प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री शांताकुमार ने बताया था कि प्रथम दिन की शपथ लेने के साथ ही अधिकारी से पूछा–क्या हिमाचल प्रदेश का सम्पूर्ण कार्य हिन्दी में होगा–ऐसी घोषणा कर दूं? अधिकारीगण कांप गए। कहने लगे–नहीं-नहीं संभव नहीं होगा। उन्होंने इसके बाद भी घोषणा कर दी कि आज से हिमाचल प्रदेश का राजकाज हिन्दी में होगा। इस पर अधिकारियों ने पैंतरा बदला। वे कहने लगे–जी हां काम हिन्दी में हो सकता है।

यह हमारी मानसिकता का स्पष्ट उदाहरण है। विदेशी हमारी राष्ट्रभाषा में दिलचस्पी ले रहे हैं। किन्तु हम भयभीत हैं? क्या हमारी स्वतंत्रता का तात्पर्य यही था? क्या हिन्दी भाषा–भाषी अपनी मातृभाषा राष्ट्रभाषा को राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने में, समृद्धशाली बनाने में हाथ बटाएँगें? क्या बिना उपयोग में लाए कोई भाषा समृद्धशाली हुई है या हो सकती है? क्या हिन्दी शब्दकोष, व्याकरण जो पूर्व से विद्यमान है, उसका वास्तव में अध्ययन हो रहा है ?

यह कितनी अजीब स्थिति है। अंग्रेजों के जमाने से उत्तर प्रदेश में छात्र छात्राएँ तब अध्यापिका जी, अध्यापकजी, माताजी, पिताजी जैसे शुद्ध हिन्दी भाषा के सम्बोधन करते थे, वहीं आज मास्टरजी, मैडम, डैडी, मम्मी में परिवर्तित हो गए? बात इससे भी आगे बढ़ी। तमाम भारतीय भाषाओं में इसी तरह के सम्बोधन उपयोगी बना दिए गए। गांव भी कैसे अछूते रहते ? वहाँ भी अंग्रेजी के सम्बोधन, वाक्य, हिन्दी में ठूंस दिये गए। अज्ञानी कहने लगे–हिन्दी भाषा कमजोर है। वह अंग्रेजी जैसी सशक्त भाषा नहीं है? जब उन्होंने हिन्दी का अध्ययन किया ही नहीं, तब उन्हें यह 'साजिशें करने का क्या अधिकार है?

लगता है सन् १६४७ के पूर्व वायसराय नहीं थे वरन् वे सन् १६४७ के पश्चात् नियुक्त हुए हैं। सभी यहां हर कोई भारत भारती भारतीयता को विस्मृत कर विदेशी भाषा, संस्कृति सभ्यता को कबूल करके अपनी मानसिकता, मूर्खता, अज्ञानता का प्रदर्शन करते रहे हैं। अब शहरों में ही नहीं, ग्रामों में भी विकास खंड अधिकारी बी.डी. ओ. साहब हो गए।

ऐसा लगता है चारों तरफ अंग्रेजी के प्रचारक अपनी दुकानें सजाकर गली–गली में अंग्रेजी शिक्षा, अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी सभ्यता, अंग्रेजी संस्कृति का माल देकर पूंजी कमाने में लग गए हैं। अगर इसके विरोध में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश जैसे हिन्दी प्रदेश ही कमर कसकर खड़े हो जाएँ और आगे बढ़ें, तभी अन्य प्रदेश भी सम्पर्क भाषा का अर्थ समझ सकेंगे और पांच दशकों में जो अंग्रेजी बढ़ी है, उसे रोक सकेंगे। इस प्रकरण में हिन्दी भाषा–भाषी अपने आपको सुधारें तथा राजा तथा प्रजा वाली कहावत चरितार्थ करना बन्द करें, तभी बात बन सकती है।

–जाह्नवी से साभार, अक्टू, 2001

हर सिंगार

स्वराष्ट्र में राष्ट्रभाषा की स्थिति-समीक्षा
हिन्दी विश्व भाषा चमत्कार

डा. श्यामनारायण पाण्डेय

विषय संकेत-

१. उस दिन के सुख की प्रतीक्षा में यह सब करता हूँ जब हिन्दी विश्व भाषा बन जाएगी।

-आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

२. मैं सनातनी से आर्यसमाजी हुआ फिर बौद्ध फिर कम्युनिष्ट। परन्तु जब कम्युनिज्म और हिन्दी में से कोई एक चुनने का दबाव पड़ा तो मैंने हिन्दी को चुना जो मेरा जीवन है। यह एक दिन विश्व भाषा बनेगी तो मरने के बाद भी मुझे हजारों हजार साल जिन्दा रखेगी।

-महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

३. हिन्दी विषय में पी एच.डी. की थीसिस लिखने के सिवा अन्य विषयों में अभी अंग्रेजी ही माध्यम है परन्तु मैं तुम्हें हिन्दी माध्यम से थीसिस लिखने की अनुमति दिला कर हिन्दी को विश्वभाषा घोषित होने की नींव रहा हूँ। तुम इस पौधे को जीवन पर्यन्त सींचते रहना ।

-डा. वासुदेव शरण अग्रवाल

४. हठी हठ छोड़े। गुरु नानक देव ने हिन्दी में सबकुछ ही हिन्दी में कहा है ।अतः पंजाबी लोग हिन्दी को विश्वभाषा घोषित करने में मदद करें। मेरी बात अमृतसर के शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक तक जरुर पहुँचावें। यह भारत की उन्नति के लिये जीवन भर परिश्रम करने के बाद मैंने यह नुस्खा तैयार किया है। आपने अपना हठ छोड़ा तो मैं शान्ति से मरूँगा यह सोचकर कि भारत के प्रत्येक हठी एक न एक दिन अपना हठी छोड़ देंगे और भारत उन्नति करेगा।

५. इंजीनियर सरदार परमायत सिंह मांट्रियल में अवकाश प्राप्त करने के बाद बारह वर्ष तक गुरुद्वारा प्रबन्धक इंजीनियर साहब जो स्वयं बारह वर्ष तक गुरुद्वारा प्रबंधक रहे आखिर ऐसा मौका दिलवा ही दिया कि बात अमृतसर के शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक प्रबन्ध समिति के सिपुर्द हो ही गयी।

भारतीय इतिहास कांग्रेस के उद्घाटन भाषण में महामहिम राज्यपाल महोदय द्वारा यह कहे जाने पर कि वे हम इतिहासज्ञों का स्वागत उस पुण्य भूमि पंजाब से कर रहे हैं जहाँ ऋषियों ने वेदों के दर्शन किए। यह मैक्स मूलर का सिद्धान्त मैंने ही १९८० में जापान के विश्व भूगोल कांग्रेस में काटा था अतः भारतीय इतिहास कांग्रेस की सेक्रेटरी के माध्यम से ज्ञापन दिया गया।

पंजाबी विश्वविद्यालय के स्थानीय मंत्री ने कहा कि हम पंजाबी गलती पर दण्ड पाना अपना कर्त्तव्य मानते हैं आप माँगिए क्या चाहते है?

मैंने इच्छा प्रकट की कि मेरा सिद्धान्त पंजाबी में अनुवाद करके छपवाया जाय और अमृतसर की शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्ध समिति को यह बताया जाय कि कनाड़ा के सरदार परमायत सिंह जी की इच्छा के अनुसार गुरुनानक जी ने जिस हिन्दी को अपनाया उसे विश्वभाषा घोषित कराने में सब लोग अपना हठ छोड़कर आगे आवें। सभी कागजात सँभाल कर रखे हैं। सब छपेगा और आशा है कि अगली पीढ़ी इसे सुधरवायेगी।

६. हाल ही में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में डा. वासुदेव शरण जी अग्रवाल की सेवा के ५० वर्ष पूरे होने पर विभाग की ओर से हुए मेरे भाषण से अश्रुपूरित नेत्रों से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलाधिपति पूर्व काशी नरेश डा. विभूति नारायण सिंह जी ने डा. अग्रवाल जी की हिन्दी निष्ठा पर हिन्दी को विश्व भाषा घोषित किया।

– ७५, पक्काघाट, मिर्जापुर (उ.प्र.)

हर सिंगार

क्षेत्रीय संकीर्णता का शिकार हिन्दी

✍ डा. मित्रेशकुमार गुप्त

भारत को स्वाधीन हुए ५५ वर्ष हो गए हैं, किन्तु इतने वर्षो में भी इसकी राजकाज की भाषा के स्वरूप का निर्धारण न होना तथा विदेशी भाषा की दासता का बने रहना जहाँ एक ओर लज्जा की बात है वहीं यह गहन चिंता का विषय भी है। भारतीय संविधान सभा ने सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं के विस्तार, लोकप्रियता और साहित्य को ध्यान में रखते हुए देश के पाँच प्रमुख प्रदेशों में ४० करोड़ से भी अधिक लोगों द्वारा तथा विदेशों में लगभग ५० करोड़ लोगों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी को स्वाधीन भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था। भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३४३ (१) में घोषणा की गई है कि "संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी" तथा संघ के शासनिक प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तरराष्ट्रीय रूप होगा। संविधान की आगे की धारा में कहा गया है कि संविधान लागू होने के १५ वर्ष की अवधि तक अंग्रेजी उन सभी कामों में प्रयोग में आती रहेगी जिनके लिए वह उस समय तक आती रही थी।

बस इसी एक त्रुटि और विचार-हीनता के कारण हिन्दी अपनी पूर्व की स्थिति से भी अधिक शोचनीय होती गई और शासन में अंग्रेजी का प्रभुत्व दिनोंदिन बढ़ता गया। हिन्दी भाषा को सीखने में छः महीने से अधिक नहीं लगते फिर १५ वर्ष की अवधि देने की क्या तुक थी। अन्य नवगठित देश टर्की तथा इजरायल के सम्मुख नव राजभाषा का प्रश्न आया तो टर्की ने अगले दिन प्रातः से ही तथा इजरायल ने छः महीने के भीतर अपने देश की तुर्की तथा हिब्रू भाषाओं को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर लिया। भारत में तत्कालीन राजनेताओं में अधिकांश विदेशों में शिक्षित अंग्रेजी भाषा में निष्णात व्यक्ति थे, जिनको भारतीय भाषा, संस्कृति तथा परिवेश की अधिक जानकारी नहीं थी। यही कारण है कि भाषा ही नहीं, अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पश्चिमी मानदंडों का अत्यधिक अंधानुकरण किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में अंग्रेजी भाषा, वेशभूषा तथा जीवन शैली का प्रचार दिनोदिन बढ़ता गया और भारतीयता मूर्खता का पयार्य बन गई।

अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव तथा हिन्दी की घोर उपेक्षा को देखकर उत्तरी भारत के कुछ राष्ट्रवादियों ने अंग्रेजी के विरोध में १९५६ में आन्दोलन आरम्भ किया। स्थान–स्थान पर अंग्रेजी के बोर्ड जलाए गए, लोगों को हिन्दी का प्रयोग करने और अंग्रेजी का बहिष्कार करने का आव्हान किया गया। यह आंदोलन अभी पनप भी नहीं पाया था कि दक्षिण में हिन्दी के विरोध में आन्दोलन आरम्भ हो गया। दक्षिण का आन्दोलन उत्तर के आन्दोलन से अधिक तीव्र, हिसंक तथा प्रबल था, क्योंकि उसे दक्षिण के बड़े–बड़े राजनेताओं का प्रश्रय मिल गया था। बस यहीं से भाषा की क्षेत्रीय राजनीति का दौर आरम्भ हो गया और हिन्दी संकीर्णता का शिकार बनकर रह गई। जिस तमिलनाडु में महात्मा गांधी ने १९१८ ई. में मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना कर वहाँ हिन्दी प्रचार का कार्य आरम्भ किया था तथा बाद में अपने पुत्र देवदास गाँधी को इस कार्य का उत्तरदायित्व सौंपा था, वही तमिलनाडु राजनैतिक स्तर पर हिन्दी का विरोधी हो गया।

राजनीति में सत्ता के अतिरिक्त कुछ भी प्रिय नहीं होता, अतः देश के राजनीतिज्ञों ने वास्तविकता से परिचित होते हुए भी हिन्दी के विषय में मौन

साध लिया। किसी का यह पूछने का साहस नहीं हुआ कि स्वाधीन भारत में अंग्रेजी के प्रयोग से क्या देश के स्वाभिमान को ठेस नहीं पहुंचती। और तो और इस देश के प्रधानमंत्री में भी इतना साहस नहीं कि वह संसद में, सरकारी आयोजनों में तथा राजकीय कार्यक्रमों में हिन्दी में बोल सकें। यह राष्ट्र को तथा स्वाधीनता की गरिमा को अपमानित करने का चरम बिन्दु है।

जहाँ तक हिन्दी की स्थिति का प्रश्न है, उसका विस्तार चारों और फैल रहा है। अभी शोध के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया है कि हिन्दी विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। चीनी भाषा दूसरे स्थान पर तथा अंग्रेजी तीसरे स्थान पर है। विश्व जनसंख्या के १९९९ के आंकड़ों के आधार पर विश्व में हिन्दी जानने वालों की संख्या ११०३ लाख है तथा चीनी जानने वालों की संख्या केवल १०६० लाख है। भारत में तथा विश्व के अन्य ४४ देशों में हिन्दी १ अरब दस लाख से भी अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है। विश्व के ११३ विश्वविद्यालयों में हिन्दी में अध्ययन होता है तथा शोध कार्य चलता है। हिन्दी की इस लोकप्रियता से यह संकेत मिलता है कि हिन्दी एक दिन अवश्य ही अपना खोया हुआ स्थान प्राप्त करेगी। यह लज्जा की ही बात है कि हिन्दी जैसी समृद्ध भाषा संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा नहीं बन सकी है जबकि एक समुदाय के थोड़े से लोगों द्वारा बोली जाने वाली अरबी भाषा संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा है। इसमें दोष अन्य किसी का नहीं केवल इस देश के राजनेताओं का है, जिन्होंने कभी विश्व समुदाय के सम्मुख हिन्दी का पक्ष नहीं रखा, किन्तु भारत की जनता अब स्थिति को समझने लगी है और जान गई है कि राष्ट्र की एकता हिन्दी से सुदृढ़ होगी। अंग्रेजी से नहीं। वह इसका प्रतिफल शीघ्र ही सुनिश्चित करेगी।

२५, वैदवाड़ा, मेरठ

अंग्रेजी और हमारी विरासत

पुरुषोत्तमदास मोदी

पिछले दिनों वाराणसी के एक महाविद्यालय में राजस्थान के राज्यपाल न्यायमूर्ति अंशुमान सिंहजी ने कहाः– "अंग्रेजों ने अपनी शासन व्यवस्था को मजबूत करने के लिए देश में एक ऐसी शिक्षा प्रणाली प्रारम्भ की, जिसमें अंग्रेजी और अंग्रेजियत को महत्ता दी गयी। उनका दूसरा उद्देश्य हमारी सांस्कृतिक विरासत को कमजोर करके पाश्चात्य संस्कृति के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना था।"

आज़ादी के बाद भी हमारे नेताओं ने अंग्रेजी भाषा ही नहीं अंग्रेजी (पाश्चात्य) संस्कृति को अंगीकार किया। परिणाम यह हुआ कि हम सतत् उस जीवन संस्कृति में ही नहीं भौतिक–आर्थिक चिन्तन में भी समर्पित होते गये। भूमंडलीकरण की वैश्विक संस्कृति को हमने अपना लिया। अब यह अनुभव किया जा रहा है कि अंग्रेजी भाषा शासन तंत्र के लिए अपरोक्ष रूप से आवश्यक हो गयी है।

अंग्रेजी की इस अनिवार्यता से जन–सामान्य में अंग्रेजी का व्यामोह बुरी तरह व्याप्त हैं। गाँव–गाँव में अंग्रेजी स्कूल खुलते जा रहे हैं । स्कूलों के नाम भी अंग्रेजी संतों के नाम पर रखे जाते हैं। इनमें अंग्रेजी अध्यापन करने वाले, अध्यापक नीम हकीम – खतरे जान डॉक्टरों की तरह होते हैं, जो शब्दों का शुद्ध उच्चारण तक नहीं कर सकते । उनका अर्थ जानना तो दूर। उनका ज्ञान कैट माने बिल्ली रैट माने चूहा तक ही सीमित होता हैं। अंग्रेजी ज्ञान का दम्भ लिए ऐसे बालक--बालिका का अपनी संस्कृति की गहराई से दूर गले में टाई लगाए, हाफ पैंट–शर्ट और अंग्रेजी जूता पहन उपभोक्ता संस्कृति को समर्पित होते जा रहे हैं।

–शेष पृष्ठ १२१ पर

हर सिंगार

पूर्व राष्ट्रपति बैंकटरमन के हिन्दी संस्मरण

दयाराम पोद्दार

भारत के पूर्व राष्ट्रपति श्री रामस्वामी बैंकटरमन (१९८७–१९९२ई.) द्वारा लिखित पुस्तक "जब मैं राष्ट्रपति था" को मैं पढ़ रहा था। उस समय मुझे यह सुखद अनुभूति हुई कि हमारे हिन्दी प्रेमी (अहिन्दी भाषी) राष्ट्रपति ने अपने कार्यकाल में कतिपय अवसरों पर हिन्दी का प्रशंसनीय प्रयोग किया। आजकल जब हिन्दी भाषी राष्ट्रपति अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं या हिन्दी नहीं जानने वाले राष्ट्रपति अपनी मातृभाषा के स्थान पर विदेशी अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हैं तो ऐसी स्थिति में श्री बैंकटरमन का कार्य प्रेरक है।

पुस्तक के अनुसार राष्ट्रपति के रूप में दिल्ली के बाहर प्रथम बार उन्होंने झाँसी के चिरगांव में ३ अगस्त, १९९७ को हिन्दी कवि मैथिलीशरण गुप्त के जन्मस्थान में उनके जन्म शताब्दी के अवसर पर उनकी प्रतिमा का अनावरण किया। वहाँ उन्होंने हिन्दी में लिखित भाषण को पढ़ा। उनके उद्‌गार उन्हीं के भाषा मे पढ़े। उन्होंने कहा कि ......हालाँकि मैं हिन्दी पढ़ और समझ सकता हूँ फिर भी सार्वजनिक भाषण या सामान्य बातचीत में मैं कभी हिन्दी नहीं बोल पाया। हिन्दी शब्दों का लिंग आदि मैं कभी अच्छी तरह नहीं जान पाया और प्रायः पुलिंग की जगह स्त्रीलिंग और स्त्रीलिंग की जगह पुलिंग का प्रयोग करने की गलतियां करता रहा हूँ। हिन्दी में बोलना शुरू करते ही जनसमूह काफी उत्साहित हो उठा और लोगों ने शुरू से ही खुशी जताई। भाषा की भावनात्मक अपील कुछ असाधारण होती है। जब दूसरे लोग खासकर विदेशी और दूसरे राज्यों के लोग उनकी भाषा में बोलते हैं तो जनता हर्षोन्माद में बहने लगती है। मैं हमेशा अपने सार्वजनिक भाषण की शुरुआत उन लोगों की भाषा में करता हूँ जिनके बीच बोलता हूँ। इस पर लोग जो खुशी जताते हैं उससे मेरी शुरुआत अच्छी हो जाती है। जब कोई बाहरी व्यक्ति उनकी भाषा में बोलता है तो यूरोप–फ्रांस, जर्मनीवाले के साथ दूसरों को भी यह अच्छा लगता है, भले ही उस भाषा पर वक्ता का बहुत अच्छा अधिकार न हो।..........पूर्व राष्ट्रपति बैंकटरमन ने ११ नवम्बर १९८७ को भोपाल में अपने सम्मान में आयोजित नागरिक अभिनन्दन में हिन्दी में अपना लिखित भाषण पढ़ा, जिसका श्रोताओं ने जोरदार तालियों के साथ उत्साहपूर्ण स्वागत किया। इसी सभारोह में मध्यप्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री चांडी ने अंग्रेजी में अपना भाषण दिया था।......

तामिलनाडु के मुख्यमंत्री एम.जी. रामचन्द्रन की जब मृत्यु हो गयी तो वहाँ मुख्यमंत्री की कुर्सी के लिए दौड़ तेज हो गयी। इस दौड़ में स्व. रामचन्द्रन की पत्नी जानकी रामचन्द्रन जब दिल्ली में मुख्यमंत्री के दावेदार के रूप में तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. राजीव गांधी से मिली। तब प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति बैंकटरमन को बतलाया था कि जानकी जी से बात करना आसान है क्योंकि वे फर्राटेदार हिन्दी बोलती हैं जब कि एम.जी.आर. रामचन्द्रन से बात करने में दिक्कत होती थी।

इसी प्रकार बैंकटरमन ने आचार्य नरेन्द्रदेव के जन्म शताब्दी समारोह पर ११ जनवरी १९८९ ई. को नरेन्द्र देव के जन्म स्थान सीतापुर में हिन्दी में बोलकर श्रोताओं को आश्चर्यचकित कर दिया और उन्होंने उन्हें बतलाया कि आचार्य नरेन्द्रदेव ने जब तमिलनाडु की यात्रा की थी तब उन्होंने उनके भाषण का तामिल में अनुवाद किया था।

श्री बैंकटरमन ने १९९२ ई. में राष्ट्रपति पद से सेवानिवृत्त होने के पूर्व उन्हें भिन्न--भिन्न समयों में विभिन्न भाषाओं में उपहार में प्राप्त पुस्तकों को भिन्न–भिन्न संस्थाओं को देने का निर्णय किया। हिन्दी की तीन सौ पुस्तकों को चैन्नई की हिन्दी प्रचार सभा को, संस्कृत की एक सौ से अधिक पुस्तकों को चैन्नई की सी.पी. रामास्वामी अय्यर फाउंडेशन को ताभिल की किताबों को दिल्ली की दिल्ली तामिल संघ को और अंग्रेजी की किताबों को मीनाक्षी कॉलेज फार वूमेन को देने का फैसला करने के बाद सभी पुस्तकें को सम्बन्धित संस्थाओं को भेज दी गयी। काश! पूर्व राष्ट्रपति रामस्वामी बैंकटरमन की तरह सार्वजनिक जीवन में उच्च पदों को सुशोभित करने वाले लोग अपने सार्वजनिक जीवन में सामान्य जनता की भाषा में अपना उद्‌बोधन देते।

- स्वामी श्रद्धानन्द पथ, राँची

हर सिंगार

हिन्दी-ओड़िया संबंध : ऐतिहासिक संदर्भ और समकालीन परिप्रेक्ष्य

✍ डा. शंकरलाल पुरोहित

भारतीय क्षेत्र का पूर्वी अंश किसी समय एक इकाई माना जाता था। इसमें अब के असम, बंगाल, बिहार एवं ओड़िशा का अधिकांश भाग आ जाता है। भाषाई दृष्टि से मैथिली, भोजपुरी, मगही, बांग्ला, असमिया, ओड़िया आपस में इतनी मिली-जुली थी कि जब 'बौद्धगान-ओ दोहा' का आविष्कार हुआ तो उसका भौगोलिक उत्स निर्धारित करना कठिन हो गया। इतना ही नहीं, आज भी 'गीतगोविंद' अथवा 'विद्यापति पदावली' की भाषा पर आये दिन विवादी स्वर सुनाई पड़ते हैं। राजनैतिक दृष्टि से देखें तो कल तक बिहार-ओड़िशा की राजधानी पटना थी। अंग्रेजों को तो १९३६ तक समझ में ही नहीं आया कि ओड़िशा एक अलग प्रशासनिक इकाई के रूप में निर्मित करना जरूरी है। मधुसूदन दास, गोपबंधु दास, कृष्ण चंद्र गजपति, नीलकंठ दास आदि को एक राजनैतिक मोरचा खोलकर संघर्ष करना पड़ा। फिर भी आज का तीस जिलों वाला (पहले सिर्फ तेरह जिले थे) ओड़िशा राज्य आजादी के समय भी बड़ी कठिनाई से अस्तित्व में आ सका। इसके दक्षिण-पश्चिम में मध्यप्रदेश, पश्चिम में बिहार-झारखंड का लंबा भूखंड अवस्थित है। पूर्व में बंगाल और दक्षिण में आंध्र प्रदेश घेरे है।

दो हजार वर्ष पूर्व मगध सम्राट अशोक की ब्राह्मी लिपि आज भी धौली शिखर के शिलालेख, खंडगिरि, उदयगिरि की गुफा में अंकित इतिहास में सुरक्षित है। इस लंबे अरसे में न तो बिहार से जगन्नाथ आनेवालों या जाने वालों को कोई रुकावट हुई है और न नृसिंहनाथ आने-जाने वाले छत्तीसगढ़ियों को कभी कोई झिझक हुई। होती भी कैसे, जब इन्होंने कभी अपने को भौगोलिक- ऐतिहासिक-सांस्कृतिक किसी रूप में भिन्न देखा ही नहीं। इससे अच्छा हमारी राष्ट्रीय एकता का रूप कहाँ मिलेगा।

जायसी के 'पद्मावत' का राजा जब सिंहलदीप जाता है, कलिंग सम्राट से सहायता मांगता है और कलिंग से ही जहाजी बेड़ा प्रस्तुत कर यात्रा करता है। कबीर को अपने भक्ति सिद्धान्त को क्रांतिकारी मोड़ देने की जरूरत हुई, वे जगन्नाथजी के पास चले आये। प्राची नदी के तट पर अच्युतानंद के पास बैठकर बरगद के नीचे लंबी चर्चा की गई। कुछ समय पहले यहीं प्रसाद जी ने खड़े होकर कहा 'जहां पहुंच अनजान क्षितिज को, मिलता कूल किनारा' 'ओड़िशा का कोरापुट, बलांगीर, कालाहांडी और सुंदरगढ़ वाला अंश आदिवासी जनजाति से अध्युषित है। गोपीनाथ मोहांती का 'परजा' उपन्यास और प्रतिभा राय का 'आदिभूमि' पढ़ने पर लगता है ये आदिवासी सदियों तक सभ्य कहलाने वालों से अलग-थलग रहे। परंतु इनकी भाषा की ओर दृष्टि डालें तो स्पष्ट है हिन्दी का ही अधिकतर आदान-प्रदान हुआ है। यह पर्वतीय जनजातियों की भाषा ओड़िया से एकदम भिन्न है। ओड़िया का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है-जब शासन ओड़िशा का है, परंतु बस्तर, झारखंड, छोटानागपुर, रांची आदि की भाषा का बहुत कुछ मेल-जोल स्पष्ट है।

राजनैतिक प्रशासन ने सारे देश को जब बाँटना शुरू किया, ओड़िशा कहाँ बच पाता ? हम आपसी आदान-प्रदान के मोहताज बन गए। भाषाएँ भी एक दूसरी से आजादी के पूर्व वाले पचास-सौ वर्षों में कट गईं-अपरिचित होती गईं। भले ही आजादी

हमारे अंदर अनेक क्षेत्रों में निराशा भर दी, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि १९५० से २००० का काल फिर एक बार गिलन का काल रहा है । जितना ही विभेदक वातावरण राजनीति से गरमाया, साहित्य ने एकता के रेशे–रेशे को उलीचा और जोड़ने की पूरी भूमिका बनाई। लगेगा जैसे यह सारा प्रयास बिखरा हुआ है, परंतु यह अनगढ़ प्रयास ही हमें एक सही दिशा में ले जा सका। हिन्दी को राजभाषा बनाने से सभी भारतीय भाषाएँ लोकाभिमुख हुईं। आदान–प्रदान का भी सद्भावना पूर्ण प्रयास इस दौरान काफी गंभीरतापूर्वक सम्पन्न हुआ है। आज ओड़िया का गौरवमय सरला दास, जगन्नाथ दास का भक्तिकालीन साहित्य (महाभारत, चंडीपुराण, भागवत आदि) हिन्दी में पढ़ने का आनंद पा सकते हैं। रामचरितमानस के तो दर्जनों अनुवाद ओड़िशा में चारों ओर आसानी से मिल जायेंगे। उपेंद्र भंज का 'वैदेही विलास' ही नहीं गंगाधर मेहरे का 'तपस्विनी' हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहा है। उसी प्रकार कबीर और सूर की भक्ति ओड़िया पाठकों से अपरिचित नहीं रह गयी। कामायनी तो कब से ओड़िया पाठकों के लिए सहज उपलब्ध हो सकी है। ओड़िया की शब्दावली अधिकांशतः संस्कृत से ली गई है। हिन्दी में रूपान्तर कर आस्वादन बहुत सुखद और सहज लगता है। हिन्दी में प्रेमचंद भले ही उर्दू के साथ चलकर लोकप्रिय शैली में आये, ओड़िया पाठकों के लिए गोलक बिहारी धल ने उन्हें अपना लेखक बनाकर ही दम लिया। यदि डा. चंद्रसेन कुमार जैन ने दोनों के भाषा तात्विक संबंधों पर प्रकाश डाला तो राधाकांत मिश्र और अर्जुन शतपथी ने अपभ्रंश–प्राकृत के नवीनीकरण में दोनों के रिश्तों की बारीकी से पड़ताल की। इधर बनमाली दास, अजय पटनायक तथा सुधांशु नायक की त्रयी ने साहित्यिक कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन स्वयं भी किये और अन्यों से भी करवाकर साहित्यिक सम्पर्कों के समकालीन संदर्भ पर प्रकाश डाला। पंडित नीलमणि मिश्र, ब्रजबिहारी, श्री निवास उद्‌गाता, युगजीत नवलपुरी, राजेंद्र प्रसाद मिश्र आदि के अनुवादों से हिन्दी और ओड़िया दोनों साहित्य समृद्ध हुए हैं। इस बीच प्रभात त्रिपाठी, तारिणी चरण दास 'चिदानंद' के सृजनशील प्रयासों से आज के हिन्दी साहित्य को ओड़िया भाषी तथा ओड़िया साहित्य को हिन्दी भाषियों के लिए बेहतर समझ के दायरे में लाना सम्भव हुआ है।

वैसे, आज हमारी राजनैतिक और आर्थिक स्थिति भले ही चिंताजनक हो, साहित्य ने हमें धोखा नहीं दिया। जो सम्बंध ढीले पड़ गए थे, फिर एक बार हम साहित्यिक अनुवादों के जरिये अपनी जड़ और शिखर दोनों को देख पा रहे हैं। आत्मीयता में वृद्धि के सारे द्वार उन्मुक्त हो रहे हैं। आज के विषाक्त वातावरण में यह कम सांत्वनापूर्ण स्थिति नहीं है।

अंग्रेजी की पक्षधरता एक जनविरोध –मार्क्सवाद विरोधी दृष्टिकोण है।

भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम भर नहीं होती; वह संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण घटक होती है और एक वर्ग विभाजित समाज में संस्कृति का भी वर्गीय चरित्र होता है। अंग्रेजी इस देश के एक प्रतिशत से भी कम शोषक–शासक वर्ग की भाषा है, वह साम्राज्यवाद की भाषा है और हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाएँ शोषित–शासित वर्ग की भाषाएँ हैं। अंग्रेजी को प्रश्रय देने का सीधा अर्थ है शोषक साम्राज्यवाद और उसकी अपसंस्कृति को प्रश्रय देना। ऐसी दशा में जो भी राजनीतिक पार्टी, वर्ग–संघर्ष में विश्वास करती है, शोषित वर्ग के पक्ष में, किसानों–मजदूरों के हित में खड़ी होने का दावा करती हैं। वे किसानों मजदूरों की भाषा का पक्ष लेना ही होगा। यही मार्क्सवादी सिद्धांतों के अनुकूल है। समाजवादी क्रान्ति के बाद सोवियत संघ ने रूसी को राज–काज की भाषा बनाया था। चीनी भाषा दुनिया

की सबसे कठिन भाषाओं में से एक है मगर चीन ने क्रान्ति के बाद चीनी भाषा को ही शासन की भाषा बनाया। वियतनाम, क्यूबा, कोरिया सभी समाजवादी देशों ने क्रान्ति के बाद साम्राज्यवादियों की भाषा को नहीं, अपने देश की प्रमुख भाषा को ही शासन की भाषा बनाया। क्या अपनी विरासत से सबक लेना अब हमने छोड़ दिया है ?

जिस समाज में चंद अमीरों के लिए अत्यन्त महंगे अंग्रेजी माध्यम के स्कूल हों, वहाँ गांवों के छत–विहीन स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों को ए–बी–सी–डी रटाकर उनके माता–पिता के मन में यह उम्मीद जगाना कि उनके बच्चे अंग्रेजी माध्यम के कॉन्वेन्ट स्कूलों के बच्चों का मुकाबला कर लेंगे, उन्हें गुमराह करना नहीं तो क्या है ? वस्तुतः अंग्रेजी की जगह भारतीय भाषाएँ, जब रोजी–रोटी और शासन की भाषा बनेंगी, तभी आम जनता के बच्चों को रोजगार के अवसर मिल सकेंगे।

कोलकाता के एक अंग्रेजी दैनिक ' दि टेलीग्राफ' ने १८ नवंबर, २००१ के अपने संपादकीय में संतोष व्यक्त किया है कि "राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी देश में पूरी तरह स्वीकृत नहीं हुई है और अंग्रेजी को भारत की सम्पर्क भाषा बनाना एक सामान्य समझदारी की बात है।" संपादकीय में इस बात के लिए खुशी जाहिर की गई है कि "बंगाल की वाम मोर्चा सरकार, अंग्रेजी की शिक्षा प्राथमिक कक्षाओं से लागू करके धीरे–धीरे अपनी स्वर–संगति बदल रही है।"

क्या सत्ताधारी वर्ग की खुशी पर हमें खुश होने का सलीका सीखना होगा ?

महासचिव की वार्षिक रपट

आजादी के पचास साल बाद भी शिक्षा, शासन और न्याय के क्षेत्र में अपनी भाषा के प्रयोग के अधिकार से वंचित भारत की बहुसंख्यक जनता पर पिछले कुछ वर्षों से उदारीकरण और भूमंडलीकरण के बहाने अंग्रेजी का दबाव और अधिक बढ़ा है। पिछले कुछ वर्षों से हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच दरार पैदा करने की खतरनाक कोशिशें भी की जा रही हैं। भारतीय भाषाओं के खिलाफ चलने वाले इस जनविरोधी साम्राज्यवादी साजिश का ही नतीजा है कि आज एक प्रतिशत से भी कम अंग्रेजी बोलने वाले लोग इस देश की निन्यानवें प्रतिशत भारतीय भाषाएँ बोलने वाले लोगों पर शासन कर रहे हैं। 'अपनी भाषा' का गठन इसी अन्याय के खिलाफ संघर्ष के लिए हुआ है। ११ नवम्बर, २००० को महाजाति सदन, कोलकाता के एनेक्स हॉल में प्रसिद्ध शिक्षाविद्, भाषा–वैज्ञानिक और रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. पवित्र सरकार ने 'अपनी भाषा' की स्थापना की घोषणा की। बांग्ला के प्रसिद्ध कवि श्री नीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती ने समारोह की अध्यक्षता की और हिन्दी के ललित निबन्धकार डा. कृष्णबिहारी मिश्र ने सभा को संबोधित करते हुए समकालीन विषम परिस्थितियों में संस्था की जरूरत को रेखांकित किया और शुभकामनाएँ दीं। इस अवसर पर अपने अनुवाद कार्य द्वारा हिन्दी और बांग्ला के बीच सेतु कायम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए कथाकार सिद्धेश को प्रथम 'विश्वनाथ लोहिया स्मृति सम्मान' से सम्मानित किया गया। मुख्य अतिथि प्रो. पवित्र सरकार ने शाल, श्रीफल, मानपत्र और सम्मान राशि प्रदान कर सिद्धेश को सम्मानित किया। दूसरा महत्त्वपूर्ण आयोजन २ सितंबर, २००१ को नंदन परिसर स्थित बांग्ला अकादमी के जीवनानंद सभागर में सम्पन्न हुआ। जब बांग्ला के प्रसिद्ध कवि–कथाकार नवारुण भट्टाचार्य ने 'अपनी भाषा' के घोषणा–पत्र और संविधान का लोकार्पण किया। प्रसिद्ध पत्रकार व शिक्षक रामशरण जोशी ने सभा को संबोधित किया और कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो. शंभुनाथ ने समारोह की अध्यक्षता की। गत एक वर्ष की अवधि में संस्था के कार्यकारिणी की कुल नौ बैठकें और केन्द्रीय समिति

की एक बैठक सम्पन्न हो चुकी है, जिनमें समय–समय पर महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए। हमने इस वर्ष से 'विश्वनाथ लोहिया स्मृति सम्मान' का स्वरूप अखिल भारतीय स्तर का किया है। किसी भी भारतीय भाषा और हिन्दी के बीच सेतु कायम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले किसी वरिष्ठ रचनाकार को प्रतिवर्ष सम्मानित करने का निर्णय लिया है। इसी क्रम में इस वर्ष ओड़िया और हिन्दी को जोड़ने वाले रचनाकार डा. शंकरलाल पुरोहित को सम्मानित करके हम गौरव का अनुभव कर रहे हैं। भविष्य में 'विश्वनाथ लोहिया स्मृति सम्मान' पर खर्च होने वाली सम्पूर्ण धनराशि हावड़ा के उद्योगपति, समाजसेवी और साहित्यप्रेमी श्री शिवकुमार लोहिया ने वहन करने का आश्वासन दिया है। हम उनके इस निर्णय के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि अंग्रेजी शोषक–शासक वर्ग की भाषा है, साम्राज्यवाद की भाषा है। अंग्रेजी के खिलाफ अपनी भाषा की प्रतिष्ठा की लड़ाई वस्तुतः आजादी की लड़ाई का ही एक हिस्सा हे। आर्थिक–सामाजिक असमानता के खिलाफ लड़ी जाने वाली लड़ाई का हिस्सा है। इस लड़ाई में भाषा से संबंधित अनेक प्रश्न हैं जिन्हें, हमारे देश का शिक्षित समुदाय भी या तो सही परिप्रेक्ष्य में देख नहीं पाता या देखने की कोशिश नहीं करता। सत्ताधारी वर्ग की नीतियां हमें लगातार गुमराह करती हैं। भाषा सम्बन्धी प्रश्न हमारे जीवन के अत्यन्त गंभीर प्रश्न हैं। इसलिए हमने भाषा संबंधी विषयों पर जनता से संवाद कायम करने के लिए एक अनियतकालीन बुलेटिन प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। इसका प्रवेशांक आपके हाथ में सौंपते हुए हमें प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

संस्था को गठित हुए अभी एक वर्ष हुआ हैं। 'अपनी भाषा' की प्रतिष्ठा की लड़ाई में हमें भरपूर जनसहयोग मिल रहा है। अभी तक संस्था के ६० से अधिक सदस्य बन चुके हैं। भुवनेश्वर (ओड़िशा) में श्री आलोक चतुर्वेदी के नेतृत्व में और वाराणासी (उत्तर प्रदेश) में डॉ. रमेशचन्द्र तिवाड़ी के नेतृत्व में 'अपनी भाषा' की इकाइयां गठित हो चुकी हैं। भविष्य में देश के कई बड़े शहरों में इस तरह की इकाइयों के गठन की उम्मीद है। 'अपनी भाषा' परिवार का यह विस्तार हमें भविष्य के प्रति आश्वस्त करता है। 'अपनी भाषा' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निम्न प्रसिद्ध कथन में विश्वास करती है–

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल

'अपनी भाषा' का दृढ़मत है कि यदि हमारी भाषा बची रहेगी तो हमारा साहित्य भी बचा रहेगा और हमारी संस्कृति भी। भाषा बचाना अपनी अस्मिता बचाना है और यह लड़ाई हम सबको साथ मिलकर लड़नी है।

हमारे पाँच संकल्प

१. सभी सरकारी एवं गैर सरकारी कार्यालयों तथा सार्वजनिक स्थानों पर अपनी भाषा का व्यवहार अपनी आदत बनाएँगे।

२. अपनी जातीय भाषा की तरह हर भारतीय भाषा का सम्मान करेंगे।

३. अंग्रेजी में प्राप्त किसी भी सरकारी–पत्र का जवाब अपनी भाषा में देंगे।

४. अपनी जातीय भाषा के साथ कोई एक अन्य भारतीय भाषा सीखेंगे।

५. अपनी भाषा की प्रतिष्ठा की लड़ाई में हमेशा संगठित प्रतिरोध के लिए तेयार रहेंगे।

-साभार-'अपनी भाषा' प्रवेशांक,दिसम्बर ०१

हर सिंगार

मानव संसाधन विकास मंत्रालय तथा केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में जनहित याचिका

✍ आनन्दस्वरूप गर्ग

शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी के प्रचार प्रसार और विकास हेतु कटिबद्ध मातृभाषा विकास परिषद, नई दिल्ली ने भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय तथा केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सी बी एस ई) के विरुद्ध एक जनहित याचिका दाखिल की है. जिसमें उच्चतम न्यायालय से यह प्रार्थना की गई है कि वह संसदीय राजभाषा समिति के प्रतिवेदन के प्रथम खण्ड पर जारी संकल्प और उसमें दी गई सिफारिशों पर अधिसूचित दिनांक ३० दिसम्बर १६८८ के राष्ट्रपति के आदेशों को अविलम्ब लागू करवाए।

इस जनहित याचिका में देश के उन लाखों स्कूली विद्यार्थियों से हो रहे घोर अन्याय पर प्रकाश डाला गया है जो राजभाषा हिन्दी को अपनी शिक्षा और परीक्षा का माध्यम अपनाते हैं। याचिका में इस बात को मुख्य रूप से उभारा गया है कि इन विद्यार्थियों के अध्ययन, अध्यापन, पुस्तकों, मूल्यांकन और अन्य शैक्षिक मामलों में अनधिकृत और मानकेतर हिन्दी तकनीकी शब्दावली का निरन्तर प्रयोग किया जा रहा है जिससे उनका शैक्षणिक स्तर तथा जीवन वृत्ति और जीवन की संभावनाएँ कुप्रभावित हो रही हैं। याचिका में इस सम्बन्ध में मानव संसाधन विकास मंत्रालय तथा केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अधिकारियों द्वारा संसदीय राजभाषा समिति के संकल्प और उसकी सिफारिशों पर राष्ट्रपति महोदय के आदेशों की अवहेलना और उन्हें लागू न करने पर प्रकाश डाला गया है। संसदीय समिति के इस संकल्प और उससे सम्बन्धित राष्ट्रपति के आदेशों में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारत सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि स्कूली स्तर पर अध्ययन, अध्यापन, पुस्तकों, प्रकाशनों तथा शिक्षा के अन्य मामलों में भारत सरकार के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा अनुमोदित, अधिकृत और मानक हिन्दी शब्दावली का ही प्रयोग किया जाए जिससे पाठ्यचर्या के सभी तत्त्वों में तकनीकी शब्दावली की एकरूपता बनी रहे।

याचिका में इस बात पर बल दिया गया है कि किसी भी भाषा के शिक्षा और परीक्षा का सार्थक और प्रभावी माध्यम बनने के लिए तकनीकी शब्दावली में एकरूपता होना अनिवार्य है और यह इसके लिए पूर्व शर्त है। याचिका में इस बात की पैरवी की गई है कि इस अनिवार्य कसौटी या पूर्व शर्त का थोड़ा सा अतिक्रमण भी विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तरों और हितों को कुप्रभावित करता है, यह शिक्षा के क्षेत्र में भ्रम और अराजकता उत्पन्न करता है तथा राजभाषा हिन्दी के शिक्षा और परीक्षा के सार्थक और प्रभावी माध्यम बनने के मार्ग में अवरोधक बनता है तथा माध्यम के रूप में राजभाषा को अवमानित करता है। यह जनहितों तथा राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध है।

याचिका में कहा गया है कि हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों के अध्ययन, अध्यापन और शिक्षण में अनधिकृत और मानकेतर शब्दावली का निरंकुश तथा बेरोकटोक प्रयोग सम्बन्धित विद्यार्थियों के शैक्षिक हितों के प्रति ही अहितकर नहीं है अपितु अधिकारियों द्वारा अधिरोपित वर्ग भेद को भी दर्शाता है।

याचिका में यह भी दर्शाया गया है कि मानव संसाधन विकास मंत्रालय तथा केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के सम्बन्धित अधिकारीगण राजभाषा हिन्दी और हिन्दी माध्यम के प्रति पूर्वाग्रह, दुर्भावना और शत्रुता के भावों से ग्रस्त हैं और उनकी यह व्यापक मनोवृत्ति है कि संसदीय राजभाषा समिति के संकल्प और उससे सम्बन्धित आदेशों को लागू होने से रोका जाय। इस मनोवृत्ति के कारण हिन्दी के विकास में बाधा ही नहीं पड़ी बल्कि राजभाषा के एक वास्तविक, सार्थक और प्रभावी माध्यम बनने के उसके स्तर और संभावना की भी अवमानना हुई है जिससे यह परिणाम हुआ है कि हिन्दी का विकास अवरुद्ध हो गया है। इस मनोवृत्ति के कारण ही सरकार ने संविधान के अनुच्छेद ३५१ में उल्लेखित अपने उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों का पालन भी नहीं किया है।

याचिका में उच्चतम न्यायालय से प्रार्थना की गई है कि इस हिन्दी विरोधी और राष्ट्रविरोधी मनोवृत्ति को अविलम्ब बदलने की आवश्यकता है और वह उपरोक्त राष्ट्रपति महोदय के आदेशों को तुरन्त लागू करवाए।

— मातृभाषा विकास परिषद्, के-६, आनन्दपर्वत, नईदिल्ली

आई. आई. टी. ने भारतीय भाषाओं का गोरधन थाम रखा है

✍ नरेश श्रीवास्तव

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के द्वारा कम्प्यूटर के प्रयोग के इच्छुक लोगों द्वारा आई. आई. टी, कानपुर का नाम विशेष महत्त्व से लिया जाता है; कारण, आई. आई. टी. कानपुर ने वर्ष १९८३ में एक ऐसी तकनीक का आविष्कार किया जिसकी सहायता से आज कम्प्यूटर में भारतीय भाषाओं का प्रयोग होने लगा है, यह तकनीक जिस्ट (पहले ग्राफिक्स एंड इंडियन स्क्रिप्ट टर्मिनल एवं अब ग्राफिक्स एंड इंटेलिजेंस बेस्ट स्क्रिप्ट टेक्नालॉजी) के नाम से प्रसिद्ध है, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जब कोई नया अनुसंधान स्थापित हो जाता है और उसके प्रयोग करने लगते हैं उसके अभ्यस्त हो जाते हैं तब उसमें परिवर्तन बहुत कठिन हो जाता हैं, कम्प्यूटरों में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोग के बारे में यह बात अक्षरशः लागू होती है। कम्प्यूटरों का विकास भारत से बाहर ऐसे देशों में हुआ है जिनकी भाषा अंग्रेजी एवं लिपि रोमन है, यही कारण है कि कम्प्यूटरो में उनकी भाषा अंग्रेजी का वर्चस्व है, चूंकि हमने हमेशा अंग्रेजी पढ़ें–लिखे लोगों को कम्प्यूटर पर अंग्रेजी में कार्य करते देखा, अतः हमारी यह आम धारणा बन गई कि कम्प्यूटर की भाषा अंग्रेजी है तथा इनमें भारतीय भाषाओं में कार्य संभव नहीं है। आज न केवल आम लोगों बल्कि अनेक अच्छे पढ़े लिखे लोगों ने इस बात को अपने जहन में रख कर ताला लगा दिया है। शायद इसलिए तमाम अनुसंधानों एवं प्रदर्शनों के बावजूद भी वे अपनी मूल धारणा से अलग कुछ भी मानने को तैयार नहीं होते। यहां तक कि वे कम्प्यूटर वैज्ञानिकों एवं अनुसंधानकर्त्ताओं की बात को भी खुले दिल से स्वीकार नहीं कर पाते। उन्हें यही लगता है कि ये हथकंडे व्यापार के विस्तार के लिए अपनाए जा रहे हैं।

आई.आई.टी., कानपुर में हो रहे अनुसंधान आने वाले समय में जनमानस की इस सोच को बदल सकते हैं। वर्ष १९८३ में आई.आई.टी. कानपुर को जिस्ट संबंधी अनुसंधान का कार्य भारत सरकार के इलेक्ट्रानिक विभाग द्वारा सौंपा गया था। आई.आई.टी ने प्रारंभिक सिस्टम केवल ४ महीने की अल्प अवधि में तैयार कर लिया। कुछ दिन बाद दिल्ली में आयोजित प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में इसका सफल प्रदर्शन किया गया। बाद में इसमें नई–नई बातें जुड़ती गई और जुलाई १९८६ में छ निर्माताओं को औपचारिक रूप से तकनीक हस्तांतरित की गई। अक्टूबर १९९८ में सी–डेक ने इसे अपने एक मिशन के रूप में अपनाकर आगे बढ़ाया। जिस्ट तकनीक वास्तव में कई तकनीकों का सम्मिश्रण है। इससे भारतीय भाषाओं सहित विश्व की अनेक अन्य जटिल भाषाओं में कम्प्यूटर पर कार्य संभव है। आज कम्प्यूटर पर भारतीय भाषाओं का जो भी प्रयोग है, वह इसी तकनीक पर आधारित है। वहां इस समय भी कुछ ऐसे कार्य हो रहे हैं जो भारतीय भाषा–भाषी समाज के लिए उपयोगी होंगे। संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

१. मशीनी अनुवाद

इस सम्बंध में २ परियोजनाओं पर काम चल रहा है। इनमें से पहला है आंग्लभारती, इसका उद्देश्य अंग्रेजी से सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद करना है। अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद संबंधी कार्य पूरा हो गया है तथा यह अनुवाद कर रहा है। अंग्रेजी एवं भारतीय भाषाओं की भिन्न प्रकृति के कारण अनुवाद में कुछ दिक्कतें अवश्य आती हैं, उदाहरणार्थ Poor Person एवं Poor Handwriting में शब्द का अर्थ एक ही नहीं हो सकता।

इसी प्रकार treatment शब्द का अर्थ कहीं व्यवहार होगा और कहीं उपचार, Keep a watch on my luggage वाक्य में Keep a watch का अर्थ

घड़ी रखना नहीं वरन निगरानी करना है। running on street में एक ही शब्द के अर्थ अलग-अलग हैं।

उक्त प्रकार की ऐसी कठिनाइयों में जहाँ किसी शब्द के मायने निकलने में दिक्कत होती है वहाँ वैकल्पिक अर्थ दिए जाते हैं। ७० प्रतिशत काम इंटरमीडिएट फार्म में हो जाता है। शेष ३० प्रतिशत टेक्स्ट जनरेटर में मशीनी अनुवाद की शुद्धता लगभग ७० प्रतिशत तक होती है। व्यक्ति (user intertace), विकल्पों/उदाहरणों के आधार पर सही मायने निकालकर अनुवाद को अधिक शुद्ध एवं स्वीकार्य बना सकता है। अंग्रेजी से हिन्दी का जो प्रोजेक्ट पूरा हो गया है उसे ई.आर.डी.सी. के साथ इसके परीक्षण के बाद इसे केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो में लगाया जाएगा। मशीनी अनुवाद का दूसरा प्रोजक्ट है- **अनुभारती**-इसके अंतर्गत उदाहरण आधारित तकनीक का प्रयोग करके हिन्दी से अंग्रेजी अनुवाद पर शोध चल रहा है। इसे web पर डालने का प्रस्ताव है, अतः वेब के द्वारा अनुवाद किया जा सकेगा, इसके अंतर्गत एक Electronic Dictionary भी तैयार की जाएगी।

२. ओ. सी. आर. (Optical Charactor Recognition) पर हिन्दी

इस दिशा में यहां शोध कार्य १६६० से चल रहा है एवं इसके शीघ्र ही रिलिज होने की आशा है। यह कार्य आइएमई विभाग की डा. वीणा बंसल द्वारा किया जा रहा है। इस तकनीक से विभिन्न आकार एवं फोटो में मुद्रित, फोटोकापी या हस्तलिखित हिन्दी पाठ को कम्प्यूटर द्वारा पढकर इनपुट किया जा सकेगा। देवनागरी पर ऑनलाइन कार्य भी संभव है। इस प्रोजेक्ट के प्रभारी डा. आर.एम.के. सिन्हा के अनुसार उन्हें हाल ही में अपने अमेरिका प्रवास के दौरान अमेरिकी छात्रों से ओ.सी.आर. पर देवनागरी में काम कराने में सफलता प्राप्त हुई। अभी अनेक प्रतियोगी परीक्षाओं आदि की कापियों का मूल्यांकन इस तकनीक से किया जाता है। यह कार्य हिन्दी में भी संभव हो जाने से हिन्दी में तैयार अनेक दस्तावेजों/विस्तृत जानकारी को बिना फीड किए ही कम्प्यूटर में इनपुट करके अपेक्षित रिपोर्ट निकाली जा सकेगी।

३. रिसोर्स सेंटर

भारत सरकार के सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा भारतीय भाषाओं में सूचना प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के लिए जो १२ रिसोर्स सेंटर स्थापित किए गए हैं उनमें से आई. आई. टी, कानपुर भी एक है। यहाँ विशेषकर हिन्दी एवं नेपाली भाषाओं पर कार्य किए जाएँगे, इन कार्यों का फोकस अनुसंधान के बजाय विकास पर अधिक होगा। इससे हिन्दी एवं नेपाली के कम से कम १० गौरव ग्रंथों पर सुपर साइट्स, प्रौद्योगिकी प्रदर्शन एवं सर्च इजन के कार्य डा. प्रभाकर द्वारा किए जाएँगे। गीता पर सुपर साइट तैयार भी हो चुकी है। युनिक्स में देवनागरी के विकास डा. रंजन मूना एवं ओ.सी.आर. में हिन्दी/देवनागरी का कार्य डा. वीणा बंसल द्वारा किया जा रहा है। जबकि मशीनी अनुवाद संबंधी सेवा का दायित्व डा. आर.एम.के. सिन्हा एवं डा. अजय जैन पर है। शिक्षण/प्रशिक्षण अर्थात् विस्तार गतिविधियों का दायित्व डा. ढांढे पर है। इसके अंतर्गत कई कार्यक्रम प्रस्तावित हैं-मसलन नवम्बर २००० में एक कार्यशाला (लेखक, कवि एवं पत्रकारों के लिए) फरवरी २००१ में हिन्दी एवं नेपाली प्रोग्रामिंग (जिस्ट एवं अनुसारक तकनीक के आधार पर) अप्रैल-मई २००१ में शोध छात्रों के लिए कार्यक्रम आदि इसके अलावा वेबसाइट पर मल्टीमीडिया के साथ एक कवि सम्मेलन करने के साथ-साथ भारतीय एवं कम्प्यूटर पर अब तक हुए काम के बारे में एक वेबपेज भी बनाया जा रहा है।

— साभार - राजभाषा किरण, फरवरी

हर सिंगार

कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी और देवनागरी लिपि

✍ डा. अमरसिंह वधान

आज सूचना विस्फोट का युग है। शिक्षा, चिकित्सा, वाणिज्य, प्रशासन, सुरक्षा, वित्तीय संस्थाओं आदि में सूचनातंत्र का बहुत प्रयोग ओर महत्त्व बढ़ गया है। कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी की आम आदमी तक पहुंच बन रही है। जापान जैसे देशों ने तो ग्लोबल नेटवर्क की आवश्यकता को महसूस किया है तथा वे इस दिशा में अग्रसर भी हैं। दिलचस्प है कि कम्प्यूटरों के बारे में जैसा डर अपने यहां दिखता है, वैसा डर एक समय में यूरोप और अमेरिका में भी रहा है।

गौरतलब है कि कम्प्यूटर का विकास सर्वप्रथम ऐसे देशों में हुआ, जिनकी भाषा लिपि पर आधारित थी। शायद यही कारण है कि अन्य भाषाओं में कम्प्यूटर का विकास एवं प्रयोग कुछ देरी से हुआ। लेकिन इसका कोई तकनीकी कारण नहीं है कि रोमन लिपि में लिखी अंग्रेजी भाषा कम्प्यूटर के लिए आदर्श भाषा मानी जाए। दरअसल, कम्प्यूटर की भाषा तो दो संकेतों (०–१) वाली अपनी स्वतंत्र भाषा है और उसी में वह रोमन एवं रोमनेतर भाषाओं को गृहण करके अपना सारा काम करता है। इस संदर्भ में देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक, व्यवस्थित, परिपक्व एवं सम्पन्न लिपि है। ध्वन्यात्मक दृष्टि से यह अधिक सुनियोजित लिपि है। नागरी लिपि कम्प्यूटर में प्रयोग के लिए अधिकतम उपयुक्त है। अतः नागरी लिपि में कम्प्यूटर पर कार्य करना कठिन नहीं है। कम्प्यूटर विशेषज्ञों का तो यहां तक मानना है कि अपने वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक स्वरूप के कारण नागरी लिपि कम्प्यूटर के लिए सर्वश्रेष्ठ लिपि है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो भारत में कम्प्यूटर ६० के दशक में आया। लेकिन इसके प्रयोग की गति ८० के दशक तक धीमी रही। भारत सरकार ने १९८० से कम्प्यूटर के प्रयोग को तेजी से प्रोत्साहन देना शुरू किया और आने वाले समय में कम्प्यूटर के प्रयोग एवं महत्त्व को समझते हुए 'राष्ट्रीय सूचना केन्द्र' संस्थान की स्थापना की। भारतीय रिज़र्व बैंक ने १९८८ में 'रंगराजन समिति' गठित की, जिसने अपनी रिपोर्ट में यह विशेष सुझाव दिया कि भारतीय रिज़र्व बैंक तथा वित्त मंत्रालय, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय से अनुरोध करें कि सरकारी कार्यालयों, बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं में कम्प्यूटरों को देवनागरी में करने के मुद्दे पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाए।

नतीजे के तौर पर कम्प्यूटर में देवनागरी के प्रयोग का श्रीगणेश हुआ। आज स्थिति यह है कि केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों, बैंकों, वित्तीय संस्थाओ, उपक्रमों एवं अन्य कार्यालयों में ई–मेल, वेबसाइट, इंटरनेट, बी–सैट आदि सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यमों में नागरी लिपि का प्रयोग किया जा रहा है। सर्वप्रथम, भारतीय रिज़र्व बैंक ने देवनागरी में ई–मेल भेजने की शुरुआत की। इसके पश्चात् सरकारी क्षेत्र के बैंकों, वित्तीय संस्थाओं, उपक्रमों, संगठनों तथा केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों ने भी देवनागरी में ई–मेल भेजने शुरु कर दिए हैं। देवनागरी में वेबसाइट भी जारी की जा रही है। इंटरनेट पर नागरी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए ठोस कदम उठाए जा रहे हैं। वी–सैट पद्धति में भू–आधारित वी–सैट विभिन्न केन्द्रों पर लगाए जाते हैं, जो सीधे सैटेलाइट से जुड़े होते हैं। यद्यपि इन वी–सैटों पर केवल अंग्रेजी में कार्य किया जा रहा है, लेकिन इन केन्द्रों पर द्विभाषी सॉफ्टवेयर लगाकर नागरी में डाटा प्रेषित करने में कोई कठिनाई नहीं है। वी–सैट से नागरी में संदेश प्रेषण के लिए सर्वर में देवनागरी का फोन्ट लगाना जरूरी है और वह संभव भी है। देवनागरी में सर्वप्रथम कम्प्यूटरों में शब्द संसाधन का कार्य ही आरंभ हुआ।

अब भारतीय और विदेशी कम्प्यूटर कंपनियों ने शब्द संसाधन के अनेक पैकेज विकसित किए हैं, जिनमें नागरी में तथा द्विभाषिक रूप मे विभिन्न शब्द संसाधन कार्य किए जा सकते हैं।इनमें कुछ तो डॉस पर कार्य करने के लिए हैं तो कुछ विंडोज पर परिवेश में नागरी और अंग्रेजी में कार्य करने में सक्षम हैं। जहाँ शब्दरत्न और अक्षर डॉस में कार्य करने के लिए है, वही लीप, आकृति, आकृति ऑफिस, एपीएस जैसे पैकेज विंडोज के लिए भी है। कुछ पैकेज माईक्रोसॉफ्ट ऑफिस की सुविधाओं का लाभ उठाकर, वर्ड 'एक्सल', 'एक्सप्लोरर' और पावर प्वायंट में नागरी और अंग्रेजी में काम करने की सुविधा देते हैं। दिलचस्प है कि सॉफ्टवेयर विकल्प के अंतर्गत कम्प्यूटर में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती। वे पैकेज फ्लॉपी डिस्क के रूप में उपलब्ध होते हैं। इसमें भी रोमन लिपि के सभी सॉफ्टवेयर पैकेजों में देवनागरी में कार्य किया जा सकता है।

कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी की दृष्टि से नेटवर्क पर देवनागरी लिपि का सरलतापूर्वक उपयोग हो सकता है। नागरी लिपि को ग्राफिकल यूसर इंटरफेस के माध्यम से नेटवर्क में प्रयोग में लाने योग्य आसानी से बनाया जा सकता है। इसके लिए जरूरी बात यह है कि जिस सॉफ्टवेयर पैकेज में संदेश भेजा जा रहा है, वही पैकेज संदेश प्राप्त करने वाले कम्प्यूटर में भी लगा होना चाहिए, तभी संदेश का प्रिंट लिया जा सकता है। लेकिन स्क्रीन पर पढ़ने के लिए प्राप्तकर्त्ता के पीसी पर देवनागरी या द्विभाषिक सॉफ्टवेयर होना आवश्यक नहीं है, क्योंकि जीयूआई में प्रेषित संदेश भेजने वाले कम्प्यूटर में विंडोज एप्लिकेशन पर कार्य करने योग्य देवनागरी सॉफ्टवेयर लोड कर संदेश देवनागरी में प्रेषित किया जा सकता है। लेकिन संदेश प्राप्त करने वाले पीसी पर भी विंडोज परिवेश पर कार्य करने योग्य देवनागरी सॉफ्टवेयर का होना नितान्त आवश्यक है, जिससे संदेश देवनागरी में प्राप्त किया जा सकता है।

कम्प्यूटर पर शब्द संसाधन का कार्य देवनागरी में उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। शब्द संसाधन हेतु द्विभाषिक सॉफ्टवेयर एवं हार्डवेयर दोनों बाजार में उपलब्ध हैं। इस संदर्भ में लीप, आई–लीप, श्रीलिपि, प्रकाशक, आकृति, आकृति आफिस, शब्दरत्न, इंडिका, मल्टिस्क्रिप्ट, डॉस आदि देवनागरी में कई सॉफ्टवेयर मौजूद हैं। जिनसे देवनागरी में शब्द संसाधन का कार्य पूरी कुशलता एवं सफलता से किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि सी–डेक पुणे ने 'लीला प्रबोध' नामक एक सॉफ्टवेयर विकसित किया है। जिसकी सहायता से प्रबोध स्तर का हिन्दी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस सॉफ्टवेयर में देवनागरी में लिखने और उच्चारण करने की दोनो सुविधाएँ मौजूद है। इस सॉफ्टवेयर से देवनागरी वर्ण की लेखन विधि, ग्राफिक्स, के रूप में चित्रित होती है। इसी प्रकार 'लीला हिन्दी प्रवीण' तथा 'लीला हिन्दी प्राज्ञ' सॉफ्टवेयरों का विकास, डॉस, यूनिक्स और विंडोज परिवेश में सी–डेक, पुणे द्वारा किया जा रहा है। इन सॉफ्टवेयरों की सहायता से कोई भी प्रशिक्षार्थी हिन्दी स्वयं कम्प्यूटर पर सीख सकेगा। यूं तो तारघरों में देवनागरी में इलेक्ट्रो मैकेनिकल टेलीप्रिंटर पहले से ही उपलब्ध है। लेकिन सीएमसी लिमिटेड ने पीसी एक्स टी आधारित एक ऐसा संचार टर्मिनल बनाया है, जिसे टेलीप्रिंटर एवं टैलेक्स मशीनों के साथ जोड़कर देवनागरी में संदेश भेजे और प्राप्त किए जा सकते हैं। इसी क्रम में मैसेज स्विचिंग सिस्टम संचार प्रणाली का एक ऐसा सॉफ्टवेयर है जिसमें टेलीप्रिंटर लाइनों से प्राप्त संदेशों के संभरण, अग्रेषण और सिंचन करने की क्षमता है। एक केन्द्र पर देवनागरी में तैयार की गई खबरों को उससे जुड़े अनेकों केन्द्रों पर प्राप्त किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि कम्प्यूटरों पर देवनागरी लिपि में प्रिंटिंग के लिए ड़ॉट मैक्ट्रिक्स

प्रिंटर, डेस्कजेट प्रिंटर अथवा प्रिंटर का प्रेयाग ही किया जाना चाहिए। उच्च गति की प्रिंटिग के लिए लिपि एम.टी.६६१ का प्रयोग देवनागरी लिपि में लगभग ४०० लाईन प्रतिमिनट की गति से किया जा सकता है। सामान्यतः देवनागरी लिपि में प्रिंटिग की गति अंग्रेजी की तुलना में लगभग एक तिहाई रह जाती है। इधर 'सेंटर कम्प्यूटर एजुकेशन' ने सी.डी. के अंतर्गत 'आओ हिन्दी पढ़ें' को विकसित किया है। इसमें संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण सीखने और पचतंत्र की कहानियाँ को प्रस्तुत किया गया है। वह मल्टीमीडिया सी.डी. देवनागरी लिपि में संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण सिखाता है। सर्वनाम सी.डी. में परिशुद्ध देवनागरी टाइपिंग के लिए देवनागरी कुंजीपटल विन्यास और देवनागरी शब्द संसाधक शामिल हैं। उपर्युक्त व्यवस्थाओं के बावजूद कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी लिपि के संदर्भ में निम्नलिखित तथ्य भी ध्यान आकृष्ट करते हैं–

१. अंग्रेजी का मुकाबला करने के लिए देवनागरी में डायनामिक फोन्ट उन्नयन एवं उपयोग बहुत आवश्यक है। यह फोन्ट अनुकूल भी होना चाहिए।
२. नागरी लिपि के वर्तनी पक्ष को सुधारने की अभी भी गुंजाइश है।
३. भ्रम पैदा करने वाले हिन्दी शब्दों का मानकीकरण किया जाए।
४. अंग्रेजी मानसिकता को तिलांजलि देनी होगी। हिन्दी में गतिमान एवं उत्कृष्ट सॉफ्टवेयर विकसित करने की आवश्यकता है।
५. कम्प्यूटरों पर देवनागरी लिपि में प्रिंटिंग की गति रोमन लिपि में प्रिंटिंग की गति से लगभग एक तिहाई रह जाती है। इस दिशा में शोध कार्य जरूरी है।
६. देवनागरी लिपि और कम्प्यूटर विषयक वित्तीय एवं प्रशासनिक निर्णयों को निष्ठा एवं इच्छा शक्ति से अमल में लाना आवश्यक है।
७. प्रयोगकर्ता, उत्पाद और उत्पादक में स्वस्थ संधि–स्थल होना चाहिए। तकनीक में यदि देवनागरी लिपि की बारीकियां छूट जाएँगी तो अपेक्षित परिणाम हासिल करना कठिन होगा।
८. कम्प्यूटर की चुनौतियों और धमकियों का सामना करने के लिए देवनागरी सॉफ्टवेयरों का व्यापक स्तर विकास एवं प्रयोग करना होगा।
६ देवनागरी को भी सूचना प्रौद्योगिकी का उच्चतम एवं सफल माध्यम बनाने के प्रयास करने होंगे।
१०. प्रयोगकर्त्ता की ओर से कम्प्यूटर में देवनागरी लिपि के प्रयोग सम्बन्धी प्रतिसूचना भी आनी चाहिए।

इसमें कोई शक नहीं कि कम्प्यूटर क्रांति के इस युग में अंग्रेजी का वर्चस्व पहले से अधिक बढ़ गया है और ६० प्रतिशत से भी ज्यादा सूचनाएँ अंग्रेजी में ही उपलब्ध हैं। चूंकि हिन्दी भी व्यावसायिकता से जुड़ी हुई है, अतः देवनागरी लिपि के संदर्भ में डायनामिक फोन्ट का प्रयोग किया जाना चाहिए। कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी ने देवनागरी के सामने कई चुनौतियाँ पहाड़ की तरह खड़ी कर दी हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए न केवल मानसिकता को बदलना जरूरी है, बल्कि नागरी लिपि विषयक विनोबा के संदेश को जीवन में उतारना भी अत्यन्त आवश्यक है।

– साभार - राजभाषा किरण, मार्च ०१

हर सिंगार

सबके अहित का आन्दोलन

✍ राजेन्द्रशंकर भट्ट

समय ऐसा हो गया है कि जो व्यक्ति, क्षेत्र अथवा तत्व समस्त देश की दृष्टि से, उसके भविष्य में अपने स्थान की दृष्टि से और सारे संसार में अपनी संभावनाओं की दृष्टि से विचार तथा निश्चय नहीं कर सकते, वे अवश्य स्वयं अपना अहित कर रहे हैं। राजस्थानी को संविधान की भाषा सूची में सम्मिलित कराने का आग्रह, उसे राजस्थान में शासन और शिक्षा का माध्यम बनाने का यत्न और उसे" जीवन की कार्य प्रणाली में शामिल" करने का आन्दोलन इतना अस्वाभाविक, अप्रासंगिक, अनावश्यक और अहितकर है कि उसके समर्थक स्वयं अपने अनुभव तथा उदाहरण से उसको सबल नहीं कर सकते।

क्या राजस्थान में राजस्थानी के ऐसे साप्ताहिक और दैनिक निकलते हैं जिनमें राजस्थानी में लिखकर राजस्थानी का यह आह्वान सारे राजस्थान में पहुंचाया जा सके। जो भाषा अपने अस्तित्व और आदर का आग्रह ही अपने रूप में उनमें नहीं पहुंचा सकती जिन्हे उसको स्वाभाविक उपयोगकर्त्ता बताया जाता है, उसे कैसे जीवन, शासन, शिक्षा आदि अन्य विषयों के वाहक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। क्या राजस्थान में कोई सभा–संगोष्ठी–आयोजन ऐसा होता है जिसमें केवल राजस्थानी के उस रूप में विचारों का आदान–प्रदान होता हो जिसका राजस्थानी के नाम पर प्रतिपादित है ? भाषा के इतिहास का प्रश्न नहीं है, राजस्थान के इतिहास का प्रश्न है, और अवश्य देश के और संसार के इतिहास का, साथ में भूगोल और मानवीय विषयों के अध्ययन के अन्य अंगों का, आधुनिक आवश्यकताओं का कोई अंश ले लें या व्यापक बहुविध प्रचार का कोई प्रयोग, क्या केवल राजस्थानी के निर्धारित रूप में कहीं कोई चेष्टा हो रही है। राजस्थान में एक मुख्य सचिव हुए हैं, जिन्होंने पंचायती राज के विषय में एक राज्यस्तरीय संगोष्ठी उदयपुर में आयोजित की थी–वे स्वयं राजस्थान के थे, और राजस्थानी के सपोषक थे, परन्तु आरम्भिक आधे घंटे से अधिक वे उस संगोष्ठी को नहीं चला सके, शीघ्र हिन्दी को अपनाना पड़ा।

यह हिन्दी की उदारता ही नहीं, उसका स्वभाव और संस्कार है कि उसका अंगभंग करने के जो आन्दोलन हो रहे हैं उनके मंतव्यों और विवरणों को उसके समाचारपत्रों के कलेवर में पूरा स्थान प्रदान किया जा रहा है। कदाचित स्वयं हिन्दी से अधिक उसमें समाहित भाषाओं का पक्ष हिन्दी समाचारपत्रों में प्रस्तुत हो रहा है। राज्यसभा में राजस्थानी का प्रतिपादन हुआ, उसका हिन्दी में होना स्वाभाविक था, परन्तु यदि हिन्दी के समाचारपत्र उसके विवरण प्रकाशित नहीं करते तो क्या उससे राजस्थान अवगत होता ? राजस्थान व्यापक सब दैनिक साप्ताहिक केवल हिन्दी में निकलते हैं।

व्याकरण, कोश, कहानियों, बातों, उपन्यासों, कविताओं काव्यों, गद्य की रचना–विद्याओं को समृद्धि का प्रमाण बता दिया जाता है। तीन बातें इस बारे में हैं। "सभी आधुनिक विधाओं" की समाप्ति इनके साथ नहीं होती, मानवीय विषयों के ही अन्य अंग अनेक है, फिर ज्ञान–विज्ञान–तकनीक–अन्वेषण के सब विषय। इनके बिना किसी भाषा को परिपूर्ण कैसे माना जा सकता है। दूसरे, जो कुछ भी, आधुनिक कविताएं और कहानियां तक, इस समय राजस्थानी में उपलब्ध हैं वे पहले तो सारी केवल राजस्थानी के उस स्वरूप में नहीं हैं जिसका प्रतिपादन किया जाता है। फिर इसी कारण इनका सारे

राजस्थान में प्रचलन नहीं है, न हो सकता है। राजस्थानी के लिए यह बहुत ही बुरा हुआ कि उसके प्रबल समर्थक जोधपुर से प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक के हाल के विशेषांक में ही लिखने में आ गया–मारवाड़ी माने राजस्थानी। यह अहमन्यता, आग्रह और आन्दोलन ही, अध्ययन का यह स्वरूप ही, राजस्थानी की सबसे बड़ी बाधा है। राजस्थानी राजस्थान के जितने भाग में प्रचलित है, क्योंकि ब्रज का क्षेत्र अलग मान ही लिया गया है, उसमें उसके अनेक सीमित स्वरूप प्राचीन, प्रतिष्ठित और प्रचलित है। राजस्थानी की रचना जो जोधपुर में होती है, वैसी की वैसी मारवाड़ के बाहर के प्रदेश में नहीं होती, जिसे यह कहकर माना गया है कि "किसी भाषा के विकास के आरम्भ से ही एकरूपता होना संभव नहीं होता। "यह समय राजस्थानी के आरम्भ का नहीं है, उसे सब प्रकार से समृद्ध बताकर ही उसे संविधान की सूची में सम्मिलित करने का आग्रह हो रहा है।"

"राजस्थानी भाषा को मान्यता दिलाने का प्रश्न" पांच दशकों से सोया हुआ नहीं रहा है–राजस्थान के एकीकरण के पहले से इस को लेकर आन्दोलन होते रहे है, और वर्तमान राजस्थान के निर्माण के हर चरण के साथ उसके लिए आग्रह उग्रता से हुए हैं, और इस समय हो रहे हैं। आरम्भ से अब तक का निष्कर्ष वही है जो इस समय स्थिति है–राजस्थानी के हर स्वरूप के प्रोत्साहन के लिए पूरे प्रयत्न होंगे, साथ–साथ सारे राजस्थान के लिए व्यवहार, शिक्षा, शासन आदि हिन्दी में ही चलेगा। सर्वश्री जयनारायण व्यास, माणिक्यलाल वर्मा, हीरालाल शास्त्री ऐसे अग्रणी नेता रहे हैं जिनका नेतृत्व देश की स्वतन्त्रता के पहले भी व्यापक था, और देश की स्वतन्त्रता के बाद भी उनका प्रभाव रहा, राजस्थान के शासन पर ही नहीं, देश के राष्ट्रीय शासन पर भी। ये नेता संविधान सभा के सदस्य थे, जिन्होंने एक हिन्दी का क्षेत्र निर्धारित किया, एक हिन्दी के बाहर का। संविधान की भाषा–सूची में हिन्दी क्षेत्र की कोई भाषा नहीं है न राजस्थानी, न ब्रज, न अवधी, न मैथिली, न भोजपुरी। स्पष्ट है, इन सबके रचनाकारों ने भी अपने–अपने क्षेत्र में, व्यास जी आदि की तरह, शासनाधिकार प्राप्त किये, परन्तु किसी ने किसी हिन्दी क्षेत्र में "अपनी" भाषा को शिक्षा–शासन के लिए अंगीकार नहीं कराया। उनका यह निश्चय स्थिति के अनुरूप और भविष्य के लिए उपयोगी था। इसी के अनुसार देश का बड़ा भाग हिन्दी भाषी माना गया है। इसे तोड़ना होगा अगर राजस्थानी तथा ब्रज से आरम्भ करके इस क्षेत्र की सभी भाषाओं का पृथक अस्तित्व स्वीकार कर लिया जाता है। हिन्दी को, हिन्दी के क्षेत्र को, तोड़कर ही राजस्थानी ब्रज आदि को संगठित किया जा सकता है।

हिन्दी ने इस क्षेत्र को व्यापकता, हर स्थिति और संभावना को ही नहीं दे रखी है, उसे राष्ट्रीय संदर्भ में अग्रणी रहने का और विश्व में स्थान बनाने का अवसर भी दे रखा है। हिन्दी ही अभी इसके यत्न में है, उसमें समाहित भाषाएं, जिनके छोटे–छोटे क्षेत्र है, उन नयी चुनौतियों का सामना, और नये अवसरों का, नयी ऊंचाइयों का, उपयोग कर ही नहीं सकेंगी।

"हमें राजस्थानी भाषा को जीवन की कार्य प्रणाली में शामिल करना होगा। हमें राजस्थानी को व्यवहार में लाना होगा। स्वयं अपनाना होगा और अपनी वर्तमान पीढ़ी को उसे अपनाने केलिए तैयार करना होगा, ताकि भावी पीढ़ी को दीक्षित किया जा सके–" आमीन! ऐसा अभी तक तो हुआ नहीं इसकी सफलता की प्रतीक्षा करना ही शालीनता होगी। जो भाषा अभी अपने राज्य में व्यवहार में नहीं है–उसे संविधान में स्थान दिलाने का यत्न ऐसा है जिसके लिए उपयुक्त विशेषण उपयोग में नहीं लाये जा सकते।

राजस्थान नया–नया राज्य नहीं है। जब उसका

–शेष पृष्ठ ६५ पर

हर सिंगार

भारतीय संत तथा भारतीय भाषाएँ

डा. मनोहर गोरे 'सत्संगी'

संत प्रेम के सिन्धु है। अनहद नाद उनके हृदय में गुंजित रहती है। नाद ब्रह्म की तप: साधना और प्रेम पगी उनकी वाणी से जो भाव शब्द प्रकट होते हैं, उसमें प्रेम–प्रीति, भक्ति, शक्ति और रस माधुर्य होता है। जिस भाषा में ये लक्षण होते हैं वह पूर्ण और समर्थ होती है। भारतीय संतों की हृदय वीणा से झंकृत ऐसी भारतीय भाषाओं ने भारत को साहित्य की अनंत ऊँचाईयाँ और भक्ति की अनादि, अनंत गहनतायें प्रदान की है। भारतीय संतों के चरणारविन्दों में प्रतीति के साथ बैठकर जिन्होंने इन रस–माधुर्य भाषाओं का सोमपान किया है, उन्हें संतत्व और भाषाओं को अमरत्व प्राप्त हुआ है।

भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत में काव्य का प्रथम सृजन आर्य ऋषियों (संतों) ने किया। आर्यों की सबसे बड़ी निधि वेद है। वेदों में भी ऋग्वेद प्राचीन ग्रन्थ है। वेदों ने संस्कृत को जगवंदित किया।

भारतीय भाषाओं के इतिहास में मलयालम का नाम सबसे ऊपर है। केरल की सुरम्य धरणी से सर्वप्रथम आदि शंकराचार्य जी ने मलय ध्वज फहराकर भारत में शिव तत्व का विवेचन कर भक्ति का शंखनाद किया। केरल के कालड़ी गाँव मे जन्में आदि शंकराचार्य जी ने अपने जीवन में घोर संघर्ष कर भारत के सांस्कृतिक वैभव का सूत्रपात यहीं से किया। शंकराचार्य परंपरा का भारत चिर ऋणी है।

आचार्य महामंडलेश्वर अनंत श्री विभूषित स्वामी शिवेन्द्रपुरी जी महाराज इसी परंपरा में भारत का गौरव बढ़ा रहे हैं।

कर्नाटक में संत पुरंदरदासजी ने अलख जगाकर कन्नड़ भाषा को ईश्वरी भक्ति आराधना के साथ प्रतिष्ठित किया। आपने कन्नड़ भाषा में असंख्य पदों की रचना की। आज भी कर्नाटक की जनता आपके पदों को गाती है। कर्नाटक संगीत को आपके पदों ने अमर कर दिया है।

महाराष्ट्र में संत परंपरा की एक अविरल धारा प्रवाहित हुई है, गोदावरी के स्वर और राम की पंचवटी इसकी साक्षी हैं। संतों ने महाराष्ट्र के नाम को सार्थक करते हुए मराठी को महान बनाया। महाराष्ट्र के महान संतों में सत तुकाराम, गजानन महाराज, संत ज्ञानेश्वर, समर्थ गुरु रामदास, विठोबा, स्त्रैण संत शकुबाई और सांई बाबा ने यहाँ भक्ति ज्ञान और वैराग्य की सरितायें बहायी हैं। इन संतों के भजन, गीत, संकीर्तन, संगीत ने मराठी को समृद्ध बनाया है। समर्थ गुरु रामदास जैसे संतों ने महाराष्ट्र में भक्ति की रीति सिखाने के साथ ही मातृभूमि की वेदना को दूर करने तथा भारत का गौरव जागृत करने के लिये छत्रपति शिवाजी जैसे शूरवीर योद्धा को शिष्यत्व प्रदान कर भक्ति और शक्ति का इतिहास रचा।

मध्यप्रदेश जैसा देश का हृदयस्थल राज्य अपने हृदय की कोमलताओं के साथ जहाँ निमाड़ी और मालवी की मीठी मनुहार के लिये प्रसिद्ध है, वहीं बुंदेलखण्ड और बघेलखण्ड की शूरवीरता जग प्रसिद्ध है। इस प्रदेश ओंकार मांधाता में साधनारत् स्वामी रामकृष्ण परमहंस के गुरु तोतापुरी महाराज और संत सिंगाजी ने स्थानीय निमाड़ी भाषा में पदों की रचना कर निमाड़ी को रेवा (नर्मदा) सा पवित्र बना दिया।

मालवा के संत पं. कमलकिशोर नागर महाराज ने श्रीमद्भागवतगीता का मालवी में रूपांतरण कर अपनी मधुर वाणी से मालवी भाषा को शिप्रा सा सरल तरल बना दिया है। अविभाजित मध्यप्रदेश के चंपारण्य (अब रायपुर छत्तीसगढ़) में प्रकटे महाप्रभु श्री बल्लभाचार्य ने श्री कृष्ण की भक्ति परंपरा और उनकी लीलाओं के गुणानुवाद का श्रीगणेश यहीं से किया, जिससे सारा ब्रजधाम धन्य हो गया।

बंगाल में स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने अवतरित होकर ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और मुक्ति की आत्मिक भूख को शांत करने के लिये जो उपदेश दिये उससे बंगाली, भक्ति की भाषा बन गयी। कलकत्ते की मे

हर सिंगार

–पृष्ठ ६३ का शेषांश

काली इसकी साक्षी है, जो दक्षिणेश्वर मठ में विराजित होकर रामकृष्ण से बात करती है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानंद जैसा सुयोग्य शिष्य देकर भारत का विश्व में डंका बजा दिया।

पंजाब में गुरूनानक से लेकर गुरू गोविन्दसिंह तक की गुरू पदवी ने पंजाबी में उपदेश दिये। "गुरू ग्रन्थ साहब" और "सुखमनी" पंजाबी के अमर ग्रन्थ हैं। पंजाबी भक्ति और बहादुरी दोनों में बढ़ चढ़कर है।

संत नरसिंह मेहता से गुजरात की पहचान है। सांवरिया (श्री कृष्ण) की भक्ति से वैराग्य और वैराग्य से साक्षात ईश्वर का दर्शन कर उन्होंने गुजराती को धन्य कर दिया।

राजस्थान जहाँ वीरता के लिए प्रसिद्ध है वहीं भक्ति में भी इसकी सानी नहीं है। अकेली एक स्त्रैण संत मीरा से मेवाड़ और सारा राजपूताना धन्य हो गया। मीरा के पदों और विरह गीतों ने मारवाड़ी और ब्रज को कृष्णमय बना दिया।

कहने का अभिप्राय यह है कि भारतीय संतों महापुरूषों, मनीषियों, ऋषियों, संत कवियों ने अपनी कालजयी रचनाओं से जहाँ भारतीय भाषाओं का मान बढ़ाया है, वहीं भारत के जन–मन को ज्ञान, भक्ति का अवगाहन कराया है। सूर, तुलसी, कबीर, नानक, रैदास, मीरा, दादू, पलटू, मलूक, तुकाराम, चैतन्य महाप्रभु, रसखान, रहीम, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, परमानन्ददास, कुम्भनदास, कृष्णदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्ददास, छीतस्वामी, नरसिंह मेहता आदि सन्तों ने भारतीय भाषाओं को समृद्धता, सौम्यता, सौहार्द्रता, सरलता, शुचिता और सहजता प्रदान कर भारत के इतिहास को समृद्ध बनाया है। विश्व को वाणी, भाव और भाषा देने वाले भारत में भाषाओं का अथाह प्रेम सिन्धु लहरा रहा है। भारतीय संतों ने अपनी तपः साधना से इसमें ब्रह्म कमल खिलाकर उसके सौरभ से सारे जग को महकाया है।

– १६७, इंदिरानगर,
आगरा रोड़, उज्जैन

जन्म हुआ तभी से उसने हिन्दी अपनाई, उनके नेतृत्व में जो राजस्थानी के विभिन्न स्वरूपों में सशक्त रचनाकार थे, और राजस्थानी के आन्दोलन में भी जिनमें से कई अग्रणी थे। जो जयनारायण व्यास ने नहीं किया, उसे अशोक गहलोत से कराने की चेष्टा है।

राजस्थानी को 'लगभग आठ करोड़ लोगों की जुबान', कहना इसी के संदर्भ में इस कथन से मेल नहीं खाता कि राजस्थान के कुछ "निवासी इसे सर्वमान्य भाषा के रूप में स्वीकार नहीं करते", उसमें इस समय "एकरूपता" नहीं है। "सबको साथ लेकर चलने" के यत्न के यह विपरीत है कि जो अस्वीकार्य है उसी का आग्रह किया जाएगा। सर्वमान्य भाषा इस समस्त क्षेत्र की हिन्दी ही है।

राजस्थानी राजस्थान के जीवन की कार्य प्रणाली में इस समय सम्मिलित नहीं है, इसे पूरे रूप में स्वीकार किया जाता है। भविष्य की दृष्टि रह जाती है। यह भविष्य की दृष्टि है कि जोधपुर विश्वविद्यालय में राजस्थानी की पीठ न्यूनाधिक रूप से ही कार्यशील है, और जयपुर, उदयपुर, बीकानेर, कोटा में भी विश्वविद्यालय स्तर पर इस दिशा में ठोस कदम उठाए नहीं गये हैं। विद्यार्थी हों, चाहे प्राध्यापक, चाहे विश्वविद्यालय संचालक, सब हिन्दी ही में भविष्य का विकास देख रहे हैं। ऐसा का ऐसा ब्रज, अवधी, मैथली, भोजपुरी आदि के क्षेत्र में है। हिन्दी क्षेत्र के सब विश्वविद्यालय हिन्दी ही को माध्यम माने हुए हैं, चूँकि हिन्दी सौ करोड़ भारतवासियों की संविधान स्थापित भाषा है, और समस्त विश्व में इसका स्थान बन और बढ़ रहा है–इस समय ही संसार के सौ से अधिक विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ायी जा रही है। हम विश्व धारा से, राष्ट्र धारा से, राज्य–धारा से, अपने को अलग नहीं करें, हिन्दी के आगे राजस्थानी को इस तरह खड़ा नहीं करें कि इससे सभी का अहित हो।

-१, जयाचार्य मार्ग, जयपुर

हर सिंगार

राजभाषा हिन्दी: समस्या और समाधान

✍ डा. उमाशंकर शुक्ल 'उमेश'

हिन्दी भाषा भारत की अस्मिता और उसकी अन्तःशक्ति की पहचान की भाषा है। हिन्दी एक भाषा मात्र नहीं है, अपितु यह एक संस्कृति है–एक संस्कार है–एक आचार है, जिसका फलक विस्तृत एवं व्यापक है। विद्वान लेखक डा. विद्यानिवास मिश्र ने हिन्दी भाषा को एक 'मूल्य' माना है। उनके अनुसार–'जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा हिन्दी ने की थी, वे सार्वभौम थे। १८ अप्रेल सन् १६०० ई. को विधिक रूप से न्यायालय में प्रतिवेदन–प्रस्तुति के अधिकार से हिन्दी को राज्याश्रय मिला। तबसे सामान्यजन को अपनी भाषा में अपनी बात कहने का अधिकार प्राप्त हुआ। हिन्दी को राजकीय मान्यता दिलाने का यह प्रयास महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने किया। किन्तु अंग्रेजी शासकों के कारण अंग्रेजी ही शासन के कार्य–व्यवहार के लिए प्रतिष्ठित बनी रही। सन् १६४७ में जब देश स्वतन्त्र हुआ तो १४ सितम्बर १६४७ में हिन्दी को संवैधानिक रूप से राजभाषा का स्थान प्राप्त हुआ, पर कुछ आन्तरिक कारणों से हिन्दी को संवैधानिक रूप से अभी तक राष्ट्रभाषा का गौरव नहीं प्राप्त हो सका। यद्यपि हिन्दी ने अपने अनेक दुर्लभ गुणों के बल पर राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं, अपितु अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर अपना सम्मान प्राप्त कर लिया है। स्वतन्त्रता संग्राम में हिन्दी ने ही राष्ट्रीय एकता के स्वर को मुखरित किया था और उसी अवधि में वह जनमानस की राष्ट्रभाषा बन चुकी थी। श्री बालगंगाधर तिलक, दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी, कवीन्द्र रवीन्द्र, क्रान्तिकारी भगतसिंह, नेता जी सुभाषचन्द्र बोस, काका कालेकर, गणेश शंकर विद्यार्थी, लाला लाजपतराय, विनोबा भावे, बंकिमचन्द्र चटर्जी, केशवचन्द्र सेन जैसे राजनीतिज्ञों एवं समाज सुधारकों ने स्वतन्त्रता संग्राम काल में ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान कर दिया था।

१५ अक्टूबर १६१७ को गांधीजी ने कहा था–'मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के समान है। जो मातृभाषा का अपमान करता है वह स्वदेश भक्त कहलाने लायक नहीं है। यदि हम मातृभाषा की उन्नति न कर सके और हमारा यह सिद्धान्त रहे कि अंग्रेजी के जरिये हम ऊँचे विचार प्रकट कर सकते हैं, तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हम सदा के लिए गुलाम बने रहेगे।' इसी प्रकार विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ने भी कहा था–'उस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, जो देश के बड़े हिस्से में बोली जाती हो, अर्थात् हिन्दी ।' इस प्रकार १५ अगस्त १६४७ के पहले ही हिन्दी समूचे राष्ट्र की भाषा (राष्ट्रभाषा) बन चुकी थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी भाषा का फलक और भी विस्तृत एवं व्यापक हुआ है।

हिन्दी विश्व परिप्रेक्ष्य में

सम्प्रति हिन्दी भाषा ने भारत से बाहर देशों में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। अभी तक चीनी भाषा तथा आँग्लभाषा के पश्चात हिन्दी भाषा–भाषियों की संख्या विश्व में तृतीय स्थान पर थी, किन्तु अब वह द्वितीय स्थान पर पहुँच गई है। भारतीय विद्वान डा. रामजीलाल जांगिड़ ने साँख्यिकी–विश्लेषण के आधार पर यह निर्णय दिया है। उन्होंने कहा–'मेरी मान्यता है कि विश्व की प्रमुख भाषाओं में चीनी के बाद हिन्दी का दूसरा स्थान है।

आजाद विश्व के १३६ विश्वविद्यालयों में हिन्दी ढ़ाई जाती है। विश्व की कुल आबादी में हर ौदहवां व्यक्ति हिन्दी–भाषी है। बाहर देशों में हिन्दी ी लोकप्रियता इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि ब तक जो छह विश्व हिन्दी सम्मेलन हो चुके हैं नमें चार सम्मेलन भारत के बाहर देशों में हुए हैं। स प्रकार हिन्दी भाषा ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित र एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। मॉरिशस ; पूर्व प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने कहा ा–'हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा तो है, लेकिन हमारे लए इस बात का अधिक महत्व है कि यह एक न्तर्राष्ट्रीय भाषा है। मॉरीशस, सूरीनाम, गुयाना, ीजी, अफ्रिका के कई देश इस बात का मान अभिमान) करते हैं कि भारत की राष्ट्रभाषा को न्तर्राष्ट्रीय भाषा बनाने में उनका हाथ रहा है।'

आज अमेरिका, कनाड़ा, दक्षिणी अफ्रीका, ग्लैंण्ड, सिंगापुर, ट्रिनीदाद, हालैण्ड, नेपाल और ाकिस्तान आदि देशों में लगभग ६० लाख लोग हन्दी बोलते और समझते हैं। विश्व परिप्रेक्ष्य में हन्दी की गौरवपूर्ण स्थिति का उल्लेख करते हुए क हिन्दी सेवी ने लिखा है–'जिस प्रकार आज म्पूर्ण विश्व में गुलाब का फूल पाया जाता है, ठीक सी प्रकार भारत की सर्वाधिक सर्वप्रिय भाषा हिन्दी ी स्वाध्याय, अध्ययन और शोधकार्य के उद्देश्य से र देश में प्रयोग में लायी जाती है। इस प्रकार विश्व ; हर देश में हिन्दी का परचम लहराने लगा है।'

हिन्दी की यह लोकप्रियता उसकी अपनी कुछ विशिष्टता के कारण बढ़ी है। इन्हीं के कारण हिन्दी ी अपनी एक अलग पहचान बनी है। हिन्दी की ुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है–

(१) हिन्दी सर्वाधिक सरल भाषा है, जिसे सभी आसानी से समझ सकते हैं।

(२) हिन्दी प्यार और मनुहार की भाषा है, स्नेह और सौहार्द्र की भाषा है। हिन्दी से हमारा सांस्कृतिक रिश्ता है। वह मानव को मानव से जोड़ने का शाश्वत माध्यम है।

(३) पूर्व महामहिम राष्ट्रपति (भारत) श्री के. आर. नारायणन के शब्दों में–'हिन्दी एक जीवन्त भाषा है। इसमें बड़ी सुरम्यता एवं उदारता है। हिन्दी के यही तो वे गुण हैं जो इसे दूसरी भाषाओं के शब्दों और रूपों को आत्मसात करने की असीम क्षमता प्रदान करते हैं।' वस्तुतः हिन्दी में ग्राहिका शक्ति है। हिन्दी की शब्दावली में जितने और भाषाओं के शब्द हैं, भारत की किसी और भाषा में नहीं हैं।

(४) हिन्दी हमारी राष्ट्रीय अस्मिता की विशिष्ट पहचान है। हिन्दी हमारे राष्ट्र–प्रेम की भाषा है–देश गान की भाषा है। गांधीजी के शब्दों में हिन्दी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती और उसे दृढ़ करती है।

(५) हिन्दी मात्र भाषा नहीं एक आचार है। वह कुछ उत्तम जीवन मूल्यों की प्रतीक भी है। इसीलिए हिन्दी जीवन को एक नई दृष्टि प्रदान करती है।

(६) हिन्दी का शब्द भंडार समृद्ध है। उसके पास वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों का भी प्रचुर भंडार उपलब्ध है।

(७) हिन्दी भाषा में पारदर्शिता एवं शुद्धता के गुण विद्यमान हैं। हिन्दी में जो कुछ लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है।

(८) हिन्दी में संस्कृति के मानवीय सम्बन्धों की बारीकियों को यथावत रूप में प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता है।

(९) डा. विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में–'हिन्दी जनभाषा है और यही इसका गौरव है, वह अपरिभाषित जन की भाषा है यह दुहरा गौरव है, वह गुलदस्ते की सजावट नहीं, जूड़े की शोभा नहीं, वह उत्सव के मंडप की वन्दनवार है।

(१०) हिन्दी वाङ्मय में ऐसी श्रेष्ठ कृतियाँ उपलब्ध हैं जो विश्व साहित्य में उच्चतम कोटि में गिनी जाती हैं।

(११) हिन्दी सेवी डा. बद्रीनारायण तिवारी के शब्दों में–हिन्दी देश में सर्वाधिक बोली और समझी जाती है। यह हमारी राष्ट्रीय एकता और अखण्डता का प्रतीक है। यह हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आन्दोलन की अभिव्यक्ति की भाषा भी है। यह तो समस्त भारत की सदियों से सम्पर्क भाषा, धर्म और भक्ति की भाषा, तीर्थों की भाषा और छावनियों की भाषा रही है।

(१२) एक बार विदेशी मूल की महिला ने अपने वक्तव्य में भाव विह्वल होकर कहा था–'हिन्दी ही एकमात्र ऐसी मात्रा है, जिसमें हँसा जा सकता है–करणा दर्शायी जा सकती है और दुःख के अवसर पर रोया जा सकता है।' उसका यह वक्तव्य सुनकर मुझे व्यंग्यकार के. पी.सक्सेना का वह वाक्य स्मरण हो आया, जहाँ वह लिखते हैं–'मैंने अभी तक किसी हिन्दुस्तानी को अंग्रेजी में 'ओह पुअर पप्पाऽऽऽ' कहकर रोते नहीं देखा। टाई बंधी होने पर भी मुँह से 'हाय बापरे ऽऽऽ ' ही निकलता है।'

२१ वीं सदी में हिन्दी और हमारा दायित्व

नई सहस्राब्दी के आगमन पर, राजभाषा स्वर्ण जयन्ती वर्ष में हमें संकल्पबद्ध होकर निम्नलिखित कुछ बिन्दुओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए पूर्ण निष्ठा के साथ एक जुट होकर उनके कार्यान्वयन का ठोस प्रयास करना चाहिए, यही हिन्दी के प्रति हमारा गुरुतर दायित्व होगा–

(१) हम अपने सभी कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी में करें, 'क्योंकि किसी भाषा का विकास तभी हो सकता है जबकि उसको अधिकाधिक प्रयोग में लाया जाय। इसके लिए हम अपने हस्ताक्षर, आमंत्रण पत्र, परिचय पत्र, व्यावसायिक उपयोग की रसीदें तथा पट्टिकाएँ सभी में राष्ट्रभाषा हिन्दी का ही प्र करें। हमारे अंग्रेजी मोह पर व्यंग्य करते हुए रूसी विद्वान ने मानस संगम कानपुर के एक सम में कहा था–'सम्मेलनों और गोष्ठियों में भाषण सुन लगता है कि भारत में हिन्दी ही हिन्दी है, ले बाहर निकलकर सड़कों पर जब हम पहुँचते हैं लगता है कि हिन्दी अभी बहुत दूर है। न तो कि सड़क का नाम हिन्दी में दिखाई देता है, न कि दूकान का नाम हिन्दी में मिलता है। आम पढ़े–लि लोग अंग्रेजी में बोलना ही शान समझते हैं।'

(२) अपना सम्भाषण हिन्दी में करें। एक जाप लेखक के शब्दों में–'भारत में अंग्रेजी बोलना प्रकार का मानसिक रोग हो गया है। अंग्रेजी बो वाला अपने आपको कुछ अधिक गौरवशाली सम है।' इस सम्बन्ध में हमें गांधी जी से सीख चाहिए। गांधी जी से जब बी.बी.सी. लंदन के अंग्रेज प्रतिनिधि ने अंग्रेजी में संदेश देने का अ किया तो उन्होंने एक ही वाक्य में संदेश दे उसको चकित कर दिया कि' अंग्रेजी वाला गांधी गया है।'

(३) मोमबत्ती बुझाकर आयातित 'हैप्पी बर्थ यू'के अंधकार को दूर करते हुए शाश्वत भार दीप जलाकर बच्चे के भविष्य को प्रकाशवान ब हुए मांगलिक लोकगीतों से रससिक्त करें। बच्च नाम हिन्दी परम्परा के अनुसार रखे जाय।

(४) मित्रों, पड़ोसियों से अनुरोध करें कि वे हिन्दी भाषा का ही प्रयोग करें। हमें भाषायी क्र का अग्रदूत बनना होगा।

(५) अंग्रेजी में पत्रों का उत्तर हिन्दी में दें। करते समय पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के शब्दों को स्मरण रखें–

मुझ से पत्र–व्यवहार करते समय को व्यक्ति हिन्दी के अलावा किसी और भाषा का प्र

न करे। अगर कोई व्यक्ति हिन्दी के अलावा किसी दूसरी भाषा में पत्र भेजेगा तो मैं उसका उत्तर न दूँगा।'

(६) अंग्रेजी में प्राप्त आमंत्रण पत्र पर आप समारोह में सम्मिलित न हों। भारतीय भाषा में पत्र मिले तो सहर्ष सम्मिलित हों।

(७) हिन्दी के प्रयोग पर हमें गर्व होना चाहिए, संकोच, झिझक अथवा हीनभावना नहीं आनी चाहिए। जब हम हिन्दी की प्रतिष्ठा करेंगे तभी दूसरे लोग भी प्रतिष्ठा देंगे।

(८) राष्ट्रभाषा हिन्दी की प्रगति प्रान्तीय भाषाओं की प्रगति में बाधक नहीं होगी इसका व्यापक प्रचार होना चाहिए। अन्य भारतीय भाषाओं का समुचित आदर किया जाय और उनके अधिकाधिक उन्नयन के लिए ठोस प्रयास भी किये जाने चाहिए।

(९) सरकारी/गैरसरकारी कार्यों में हिन्दी का प्रयोग किया जाय। हिन्दी भाषा को रोटी–रोजी से जोड़ा जाय। ऐसा करने पर हिन्दी का प्रचलन स्वतः बढ़ेगा।

(१०) हिन्दी के लेखन में यथा सम्भव अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग न किया जाय। हिन्दी एक समृद्ध भाषा है। शब्दों की खोज का श्रम उठाना पड़ेगा।

(११) मॉरीशस के तत्कालीन युवा एवं क्रीड़ा मंत्री श्री दयानन्द बसंतराय ने १० जनवरी १९४५ को नागपुर में प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में यह प्रस्ताव रखा था कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को भी अधिकारिक भाषा की मान्यता प्राप्त हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु राजनीतिकों, राजनयिवों को उच्च स्तर पर ठोस प्रयास करने चाहिए। इसके लिए दृढ़ संकल्प और साहस की आवश्यकता है।

(१२) विश्व हिन्दी सचिवालय मॉरीशस दुनिया के अनेक देशों में हिन्दी का प्रचार–प्रसार तथा उसे सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने की दिशा में प्रयासरत है। राष्ट्रसंघ में हिन्दी को मान्यता दिलाने की दिशा में वह ठोस कदम उठा सकता है, उसे उठाना भी चाहिए।

(१३) यदि इजरायल हिब्रू भाषा को कब्र से खोदकर खड़ा कर सकता है, उसमें राज काज चला सकता है, उस भाषा में विज्ञान के नये–नये अनुसन्धान कर सकता है तो कोई कारण नहीं कि हम हिन्दी का उन्नयन करके काम न कर सकें। हमें इस ढंग पर सोचना चाहिए।

(१४) इसी सन्दर्भ में संविधान में संशोधन कराने के लिए एकजुट होने की आवश्यकता है ताकि हिन्दी भाषा को संवैधानिक रूप से राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया जा सके।

(१५) वस्तुतः जब तक हमारे मन में राष्ट्र के प्रति निष्ठा एवं भक्ति नहीं होगी तब तक हम भाषा के प्रति निष्ठावान न हो सकेंगे। आज हमें कमालपास जैसी भावना अपने अन्दर पैदा करनी होगी।

इस प्रकार हमें हिन्दी भाषा के उन्नयन के लिए सतत प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता है। विगत पचास वर्षों में हम जो कुछ नहीं कर सके उसके लिए हमें पूरी शक्ति से जुट जाना चाहिए। हम आशावादी हैं। डॉ. महावीर शरण जैन के मत से सहमत होते हुए हम कह सकते हैं कि जिस तरह १७वीं सदी फ्रेन्च और २० वीं सदी अंग्रेजी की थी उसी प्रकार २१वीं सदी हिन्दी की होगी। अन्त में तमिल भाषा के साधक कवि गुरुगनार की निम्नलिखित मार्मिक पंक्तियाँ, जिनका हिन्दी अनुवाद कविश्रेष्ठ डा. रामधारी सिंह 'दिनकर' ने किया है, पढ़ते हुए मैं अपनी वाणी को विराम देना चाहूँगा–

''जिस दिन भारत के सभी लोग
अपनी पसंद से चुनी हुई सबकी बोली
हिन्दी को अपनी जानेंगे
जानेंगे केवल नहीं, वरन् आसानी से
हिन्दी में करके काम काज सुख मानेंगे
बस उसी दिवस दासत्व न रहने पाएगा।
बस उसी रोज सच्चा स्वराज्य आ जाएगा।''

जय हिन्दी – जय नागरी

–साहित्य-सदन, फूलपुर-इलाहाबाद-२

हर सिंगार

हिन्दी के विकास में बाधाएं

✍ राजेन्द्रशंकर भट्ट

हिन्दी इस समय भयंकर संकट में है। ऐसा चतुर्दिक आक्रमण उस पर पहले कभी नहीं हुआ।

सौ करोड़ भारतवासियों के संविधान में स्थापित हिन्दी को अब तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार और विश्वव्यापक अध्ययन एवं अन्वेषण की भाषा बन जाना चाहिये था। जो प्रधानमंत्री अपने को हिन्दी समर्थक सिद्ध करने के लिए विश्व मंच पर हिन्दी में भाषण देते हैं, वे ही अपने देश में इस संविधान सम्मत भाषा की अवमानना करते हैं।

यह जड़ की बात है। जब तक हिन्दी भारत के केन्द्रीय शासन की भाषा नहीं बनती, उसके अस्तित्व का कहीं आदर नहीं होगा। दुर्बलता स्वतः दोष होती है, और इस कलंक ने हिन्दी को असमर्थ और अपाहिज कर रखा है, जिसके कारण ही उस पर अन्य आक्रमण हो रहे हैं, और सफल हो रहे हैं।

हिन्दी भाषा में अंग्रेजी और देवनागरी लिपि में रोमन का उपयोग हिन्दी में अपने को प्रतिष्ठित मानने वाले समाचारपत्र करने लगे हैं। जो हिन्दी का आरम्भिक काल था, उसमें उस समय के साहित्य महारथियों ने एक–एक शब्द के लिए सुदीर्घ शाब्दिक संग्राम किये हैं। हिन्दी के संपादकों ने हिन्दी साहित्य को सुदृढ़ और समृद्ध रखने में यशस्वी योगदान किया है। उनकी परम्परा को प्रदूषित किया जा रहा है। ऐसा लगता है कि हिन्दी वालों को अपने बल पर विश्वास ही नहीं रहा है। इसलिए इस समय की गंभीरतम आशंकाओं के संबंध में वे न सजग हैं, न सक्रिय।

हिन्दी, सभी भारतीय भाषाओं के साथ, स्वतन्त्रता संग्राम की भाषा बनी, लेकिन भारतीय भाषाओं को भारत की स्वतन्त्रता ने संचालन के योग्य नहीं माना जा रहा। केन्द्र एवं राज्य शासनों की और से जो वृहद प्रयत्न हिन्दी को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के हुए, उनका उपयोग शासन शासनिक कार्यों में करने से कतरा रहे हैं।

इतना ही नहीं, अंग्रेजी का आधितत्य बढ़ा है। केन्द्र शासन और भारत के अधिकांश राज्य हिन्दी में पत्र व्यवहार के लिए वचनबद्ध हैं, परन्तु उन्होंने अंग्रेजी के आदर में अपने वादे डुबो लिये हैं। इसी का परिणाम है कि हिन्दी एवं हिन्दी के बाहर क्षेत्रों में अंग्रेजी की शिक्षा प्राथमिक श्रेणियों से अनिवार्य की जा रही है। जिन्होंने हिन्दी का वर्तमान बिगाड़ा है, वे ही उसका भविष्य बिगाड़ रहे हैं इस राष्ट्र का उसकी सीमाओं में सम्मान, और विदेशों में आदर, निर्मित ही नहीं हो सकता यदि इस देश में सभी प्रमुख कार्य–संचालन परभाषा और परतन्त्रता की भाषा में होता रहता है। वास्तव में तो यह अंग्रेजी भाषियों का अपने ही हाथ में भारत की सत्ता बनाये रखने का षड़यंत्र है। इसे निरी भाषा की समस्या मानकर नहीं समझा जा सकता।

इन विपरीत और आक्रामक परिस्थितियों का सामना करने के लिए हिन्दी में जागरूकता और सक्रियता के साथ जो एकजुटता होनी चाहिये थी, उस पर अभी तक आघात हिन्दी की आन्तरिक परिधिक से आरम्भ हुआ है।

हर भाषा का अपना इतिहास होता है, तो अपना भूगोल भी होता है–एक के बिना दूसरा अधूरा रहता है। हिन्दी का विकास जिस प्रकार से हुआ, उससे एक हिन्दी क्षेत्र बना है–मोटे तौर पर राजस्थान से बिहार तक, हिमाचल प्रदेश से मध्यप्रदेश तक।

इसका अर्थ अपने आप यह होता है कि भारत के इस विशाल मध्य क्षेत्र मे जो प्राचीन एवं अब भी प्रचलित भाषाएं रही है, उनके विवेकशील उन्नायकों ने स्वविवेक और स्वनिर्णय से यह व्यवस्था स्वीकार की कि उनकी भाषाओं का उनकी सीमाओं में उपयोग अबाधित रखते हुए, इस समस्त भूभाग के सम्मिलित स्वरूप को निर्मित करने के लिए, हिन्दी को इस सारे क्षेत्र में समान उपयोग, शिक्षण, शासन की भाषा माना और बनाया जाए। हिन्दी इस क्षेत्र पर थोपी नहीं गयी थी, इसे समझदारी से स्वीकार किया गया था।

यह क्रम स्वतन्त्रता के पहले प्रारम्भ हुआ, स्वतन्त्रता संग्राम के समय संपुष्ट हुआ, और इसी के परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता के उपरान्त इस समस्त क्षेत्र में हिन्दी अपनायी गयी। जो भाषाएं इस क्षेत्र में बनी और बोली जाती रहीं, उनकी अभिवृद्धि के समायोजन पर्याप्त हुए, परन्तु ये हिन्दी की सार्वभौमिकता में बाधक नहीं बने। जिस प्रकार से संगम में सभी नदियाँ और समुद्र में, अनेक धाराएं उपधाराएं मिलकर समाहित हो जाती हैं, उसी तरह हिन्दी का प्रवाह बना।

इस क्रम को अवरूद्ध करने के यत्न, कई बार विस्तृत आन्दोलनों के रूप में, अनेक बार हुए, हिन्दी के समस्त क्षेत्र में, राजस्थान से बिहार तक। इसे अब भुला दिया जा रहा है कि इस क्षेत्र की प्राचीन भाषाओं में पारंगत और उनके प्रतिष्ठित रचनाकार देश की स्वतन्त्रता और रियासतों के उत्तरदायी शासन के आन्दोलनों में भी अग्रणी थे, और भारत की स्वतन्त्रता एवं रियासतों के एकीकरण के बाद उनमें से ही प्रमुख इस क्षेत्र में सत्तारूढ़ हुए। न अपने समय के आन्दोलनों में, न बाद के शासनाधिकारों में, इन सुविज्ञ, सावचेत और समर्थ राजनेताओं ने अपनी–अपनी भाषा का आग्रह किया। उदाहरण के लिए , (मारवाड़) जोधपुर के प्रतिष्ठित राजनेता श्री जयनारायण व्यास अपनी रियासत में ही नहीं, सारे देशी राज्य आन्दोलन में, अग्रणी नेता और प्रमुख पदाधिकारी बने। बाद में उन्हें अपने राज्य जोधपुर में, और एकीकृत राजस्थान में भी, शासनाधिकार प्राप्त हुए। उन्होंने न मारवाड़ी को जोधपुर (मारवाड़) में लागू कराया, न राजस्थान में राजस्थानी को चालू कराया। हिन्दी, उनके निर्देशन में, दोनों स्तरों पर शासन, शिक्षा आदि की भाषा बनी रही। उन्ही व्यास जी के नाम पर अब राजस्थानी (मारवाड़ी) को सारे राजस्थान में, जो भारत का सबसे विशाल राज्य है, लागू कराने के प्रयत्न हो रहे हैं। जैसा कहा गया, ऐसे ही प्रयत्न इस समय के हिन्दी क्षेत्र में अन्यत्र भी होते रहे हैं।

सर्वोपरि आश्चर्य इस समय यह है कि भारतीय जनता पार्टी की ओर से जो इस समय देश का शासन सम्हाले हुए हैं, प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी, वे इस पद पर आने के पहले भारत के हिन्दी क्षेत्र को विभाजित करने के आन्दोलनों के अनुकूल नहीं थे। उन्ही के नेतृत्व में इस समय का केन्द्रीय शासन राजस्थानी और ब्रजभाषा से आरम्भ करके हिन्दी क्षेत्र के विघटन का समारम्भ कर रहा है।

हिन्दी क्षेत्र के आन्तरिक भाषायी आन्दोलन पहले तो इस राज्य के सभी राज्यों के भीतर टूटन आरम्भ करेंगे, चूंकि इनमें कोई एक–एक भाषा नहीं है, जिसे उन राज्यों में स्वीकार कर लिया जाए जिनमें ये प्रचलित हैं। राजस्थान में ही राजस्थानी का प्रतिपादित रूप सारे राज्य में स्वीकार नहीं होगा, चूंकि इस समय भी यह इस राज्य में इस रूप में प्रचलित नहीं है, भिन्न–भिन्न भागों की अपनी–अपनी भाषाएं है।

फिर, जो एकता हिन्दी क्षेत्र की बनी है, वह विभक्त हो जाएगी। राजस्थानी और ब्रजभाषी क्षेत्रों से आरम्भ होकर, हिन्दी के सभी राज्यों में अलगाव के आन्दोलन उठेंगें, और सभी राज्यों के वर्तमान आकार टूटेंगे।

इसका प्रयोजन क्या है ? हो सकता है इस

–शेष पृष्ठ १०६ पर

हर सिंगार

हिन्दी भाषा-एक मुँह बोली कहानी एक अजीब दास्तां

✍ डा. सुषमा शर्मा

भाषा हृदय के विचारों के प्रकाशन का माध्यम है, जिसमें अभिव्यक्ति की शक्ति है। चाहे मनुष्य की भाषा हो, पशु पक्षियों की भाषा है, पेड़–पौधे की भाषा हो चाहे सांकेतिक भाषा हो। हर भाषा का अपना स्वरूप है। मनुष्य की भाषा का प्रश्न है, वह तो शिशु की तोतली आवाज में समाई है, जिसके लिए हमें शब्दकोष में अर्थ नहीं देखना पड़ता है। अपने आप एक नवजात शिशु की ध्वनि से मनः स्थिति का अंदाजा लग जाता है, आगे जब वह बोलने लगता है तो उसकी अभिव्यक्ति से ही अर्थ निकाल सकते हैं जो ईश्वरीय देन है। जैसे पप्पा का अर्थ है पानी, मम् मम् का अर्थ है भोजन, बज्जी का अर्थ है बाजार आदि आदि ...जैसे जैसे आयु बढ़ी तो भाषा में भी प्रौढ़ता आई।(१) जिसके दो रूप हुए। (२) लिखित और कथित। भाषा ने परिवार को जोड़ा है, समाज को जोड़ा है, प्रांत को जोड़ा है, देश को जोड़ा है, विश्व को जोड़ा है। एक प्रकार से वसुधैव कुटुंबकम् को भाषा ने ही दिशा दी है। देश का प्रतीक राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान और राष्ट्रभाषा से होता है। जहां स्वाभिमान है, गौरव है, अपनायन है। इसीलिए उचित कहा गया है–

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश पर अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है।"

हमारे देश में भिन्न–भिन्न भाषाएं हैं, विविधता होते हुए एकता है। आज हिन्दी दिवस पर हम हिन्दी साहित्य के इतिहास के पृष्ठों पर विहंगम दृष्टि डालेंगे। जिसने इतिहास बनाया है–जिसके स्वर्ण पृष्ठ हैं, स्वर्ण अक्षर हैं और सत्यं शिवं सुन्दरम् का आधार है। हिन्दी भाषा का अपना इतिहास है, जिसकी मुंह बोली कहानी है और एक अजीब दास्तां है।

परिचयात्मक दृष्टि से देखें तो हम पाएंगे कि वैदिक संस्कृत का प्राचीनतम रूप 'ऋग्वेद' में मिलता है। जो भारतीय आर्यों की भाषा थी। इस वैदिक भाषा में व्याकरण के नियम न होने से जनभाषा से अलग होकर नियमबद्ध हुई। संस्कारित, संशोधित, परिमार्जित होकर एकरूपता से देववाणी संस्कृत बनी। इस भाषा को व्याकरण में ढालने का श्रेय पाणिनी को है। संस्कृत साहित्य में जनमानस को कठिनाई आई। बुद्ध ने लोक भाषा 'पालि' को अपनाया " बुद्धं शरणं गच्छामि" को स्वर दिया। बौद्ध ग्रंथों, अशोक के शिलालेखों में प्राकृत भाषा के ये रूप दिखाई देते हैं। महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अर्ध मागधी, और अपभ्रंश, अपभ्रंश से तात्पर्य–बिगड़ा रूप। हेमचंद ने अपभ्रंश का व्याकरण, जैनाचार्यो ने इस भाषा में रचना की। शौरसेनी अपभ्रंश से ब्रजभाषा की उत्पत्ति हुई। यह अपभ्रंश आधुनिक हिन्दी के बीच में अग्रसर हुई वह है "डिंगल" इस प्रकार भाषा ने इतिहास तो बनाया भूगोल भी बनाया और गणित भी। भारतीय आर्य भाषा, मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा, आधुनिक आर्य भाषा का सूत्रपात हुआ जिसमें हमारी संस्कृति, सभ्यता, भाषा कला के दर्शन हुए। आधुनिक आर्य भाषा हिन्दी में संस्कृत तत्सम शब्दों के प्रयोग से हुए और खड़ी बोली का अभ्युदय हुआ। हिन्दी से हिंद और हिन्दी का अभिप्राय ही खड़ी बोली है। हिन्दी ही हमारे देश की भाषा है, १४ सितम्बर को हिंदी दिवस मनाया जाता है। संविधान में इसे राष्ट्र भाषा के रूप में दर्जा मिला है। जो देश की पहचान है, हृदय की धड़कन है और रोम रोम में बसने वाली है। जिसे सिखाया नहीं जाता, खुद ब खुद आ जाती है। ऐसी भाषा पर हमें नाज है इसीलिए यह कहना उचित होगा कि–

"मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।

हर सिंगार

हिंदी हैं, हम वतन हैं, यह हिंदोस्तां हमारा।।
स आलेख में हिन्दी भाषा की तीन अवस्थाओं में थान देकर सार में परिचय देने का अथक प्रयास किया है। 'शैशवावस्था २. यौवनावस्था और . प्रौढ़ावस्था

नव जागरण काल आया, स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए हर भारतवासी संगठित होकर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। एक ऐसी लहर आई, जिसमें साहित्य भी अपनी भूमिका निभाने में सजग रहा। र साहित्यकार ने अपनी लेखनी से जन–जन में चेतना जगाई, पत्रकारिता में भी साहित्यकार ने अपनी अहम् भूमिका निभाई।

खींचो न कमानों को, न तलवार निकालो।
जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।।"

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिककाल में खड़ी बोली का आविर्भाव हुआ। जिसके प्रणेता भारतेंदु थे। इसी काल से गद्य साहित्य का प्रारंभ हुआ। खड़ी बोली में लल्लूलाल, सदा सुखलाल, इंशाअल्ला, सदल मिश्र, राम प्रसाद निरंजनी हुए। निरंजनी ने "भाषा योग वशिष्ठ" का अनुवाद खड़ी बोली में किया। दौलतराज ने खड़ी बोली में जैन पद्मपुराण का अनुवाद किया। लल्लूलाल ने भागवत् पुराण के दशम स्कंध के आधार पर "प्रेम सागर" की खड़ी बोली में रचना की। सदासुखलाल ने "सुखसागर" की रचना की, स्वान्तः सुखाय का गुण होने से गति और स्वाभाविकता का निचोड़ था ही। सदल मिश्र ने "नासिकेतोपाख्यान" की रचना की। इंशाअल्ला ने "रानी केतकी की कहानी" में खड़ी बोली को चटपटी बनाकर मुहावरों का प्रयोग कर इसे हिन्दी साहित्य की पहली कहानी की संज्ञा दी। खड़ी बोली को साहित्य में लाने का श्रेय इन साहित्यकारों को है। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि पद्य में खड़ी बोली का प्रयोग सहजिया संप्रदाय के सिद्धाचार्यों की वाणी में हुआ है।

सभी प्रकार गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग गंगकवि जो अकबरकालीन नवरत्नों में थे के चंद छंद बरनन की महिमा में माना गया। खड़ी बोली की विकासयात्रा सत्यं शिवं सुन्दरम् से हुई, आज भी परिष्कृत रूप में अपना स्थान ग्रहण कर रही है।

खड़ी बोली का प्रचार प्रसार विविध क्षेत्रों से हुआ। ईसाई धर्म ने अपने धर्म के प्रचार में खड़ी बोली को अपनाया। बाइबिल का अनुवाद हुआ। विलियम केरे ने "इंजील" का अनुवाद किया। आर्य समाज स्कूलों ने हिन्दी का प्रचलन प्रारंभ किया। राजा शिवप्रसादसिंह सितारे हिंद ने बनारस अखबार निकाला। राजभोज का सपना शुद्ध हिन्दी में तत्कालीन अनुप्रास प्रियता का उदाहरण सिद्ध हुआ। इसमें तुकबंदी का पूरा निर्वाह हुआ। राजा लक्ष्मणसिंह ने "प्रजा हितैषी" कालिदास के अभिज्ञानशाकुंतल, मेघदूत, रघुवंश का अनुवाद किया। इस प्रकार अनुवादों के आधार पर खड़ी बोली ने स्थान प्राप्त किया, जो जनमानस के लिए उपलब्धि रही। खड़ी बोली ने संस्कृत गर्भित बनकर अपना स्वतत्व स्थापित किया, अपनी पहचान बनाई। भारतेंदु ने खड़ी बोली की प्राण प्रतिष्ठा की और उसे निजीरूप दिया, इसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग कर नवयुग की चेतना जगाई। जनमानस में खड़ी बोली मानसिक क्षितिज पर गौरवशाली सिद्ध हुई।'कवि वचन सुधा', हरिशचंद्र मेगजीन, भारत दुर्दशा, स्त्री शिक्षा के लिए बाला बोधिनी "जैसी रचनाएं खड़ी बोली में हुई। भारतेंदु काल के साहित्यकार बालकृष्ण भट्ट, पं. बदरीनारायण चौधरी, "प्रेमधन" लाला निवासदास, अंबिकादत्त व्यास, देवकीनंदन खत्री, बालमुकुंद जैसे साहित्यकारों ने खड़ी बोली साहित्य का विकास किया। भारतेंदु ने अपने साहित्य में राष्ट्रीय आंदोलन की आड़ में देश प्रेम के बीजारोपण के लिए हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तानी को आधार बनाया। शैशवावस्था में पलती खड़ी बोली ने धीरे–धीरे युवावस्था, किशोरावस्था में पदार्पण किया। जिसके अंतर्गत महावीरप्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली में संशोधन कर, परिमार्जित कर अपने युगीन

साहित्य में नए छंदों का प्रयोग, उदात्त तथा सामाजिक भावों का उदयान किया। भारतेंदु युग में गद्य की अन्य विधाओं का अभ्युदय हुआ तो द्विवेदीयुग में उत्थान क ुग का सूरज उदय हुआ, आगे चलकर सूरज ने गति ् अपनी किरणों से चारों ओर प्रकाश फैलाया,ऐसा प्रकाश जो तमसो मा ज्योतिर्गमय के रूप में सिद्ध हुआ। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कामता प्रसाद गुरू के हिन्दी व्याकरण के आधार पर अपनी भाषा को स्तरीय बनाया। क्योंकि इस युग के साहित्य के वर्ण्य विषय का विस्तार ही विविधायुक्त रहा। द्विवेदी युगीन साहित्य को गद्य का स्वर्णकाल कहें तो अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि छोटे–छोटे विषय भी अनंत क्षेत्रों में चित्रित हुए। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी, गोपाल शरण सिंह, लोचन प्रसाद पांडेय, गिरिधर शर्मा जैसे साहित्यकारों ने पराधीनता को अभिशाप समझा और पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं को स्वीकारते हुए स्वतंत्रता की प्राप्ति चाहे देश की हो या साहित्य की हो एक साधना माना, एक अनुष्ठान माना, एक संकल्प माना। इस प्रकार आत्माहुति और क्रांति का नारा बुलंद हुआ। इस क्रांति में अहिंसा तो थी जो शांति का प्रतीक बनी। हरिऔध जी के 'प्रियप्रवास' में कृष्ण के ब्रज प्रवास का चित्रण और तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक स्थिति का निरूपण हुआ। यह 'प्रियप्रवास' आधुनिक बोध से युक्त विश्व मानवता का समन्वय मौलिक सूझबूझ रहा। राधा का चरित्र कर्त्तव्य परायणता का केंद्र रहा–

"आज भूलूँ न प्रियतम को विश्व के काम आऊं।
मेरा कौमार व्रत भव में पूर्णता प्राप्त होवे।।"

"दिवस का आवसान समीप था, गगन का कुछ लोहित हो चला" प्रियप्रवास की ये पंक्तियां आज भी कंठ कंठ में समायी है। खड़ी बोली को रूप देने में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त भी रहे । भारतीय संस्कृति के अनन्य भक्त राष्ट्रीयता से ओतप्रोत, नवीनता के संदेशवाहक सिद्ध हुए। साकेत, यशोधरा आदि ऐसे उदाहरण है जो नारी के कर्त्तव्यपरायणता के उदाहरण हैं।

"सखि ! वे मुझसे कहकर जाते" इस प्रकार द्विवे युगीन साहित्य हिन्दी साहित्य के इतिहास में मी का पत्थर सिद्ध हुआ।

छायावादी साहित्य एक विशिष्ट भावधारा अ नई तकनीक लेकर उभरा। अनुभूति के आधार प जनमानस को रोमांचित करने वाला रहा। मानो य साहित्य अनुभूतियों का जीवित कोष हो,

"अरुणय मधुमय यह देश हमारा"-प्रसाद
"नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो"-प्रसाद
"जागो! फिर एक बार"-निराला
"वियोगी होगा पहला कवि-पंत
"बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हू"
–महादेवी वर्मा

इस युग के अन्य कवि भी राष्ट्रीय सांस्कृति काव्यधारा से जुड़े। माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृ शर्मा 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा आ उल्लेखनीय रहे।

"मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर देना तू फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक"– **माखनलाल चतुर्वे**

हरिवंशराय बच्चन ने 'हालावाद' में खुमारी भरी अंतर्वेदना को भुलाने का प्रयास कि मधुशाला से क्या भूलूं क्या याद करूं " आदि रचना से। प्रगतिवादी काव्य मनुष्य को यथार्थ से स्थि का परिचय दिलाने में सक्षम रहा और बढ़ने संदेश दिलाने वाला रहा।

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ।
जिससे उथल पुथल मच जावे।। – **नवीन**
"सुनो समय के रथ का घर्घर नाद सुनो।
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।।–दिनक
मेरा देश जल रहा है, कोई नहीं बुझाने वाला
–शिवमंगल सु
"खूब लड़ी मर्दानी वो तो झांसी वाली रानी थ
– सुभद्रा कुमारी चौह

''वीरो का कैसा हो वसंत'' ऐसी कविताएं जिसने चेतना जगाई और कुछ कर सकने का संकल्प करवाया, प्रेरणा दी।

प्रयोगवाद में नए बोध, नई संवेदनाएं, नए शिल्प आए। मुक्त क्षणों के महत्त्व को स्वीकारती उपलब्धियों को भोगने को प्रेरित हुई–

''मैं कल फिर देखूंगा यही सूर्य
ज्योति किरणों से भरा पूरा
उसी सूरज के दर्शन के लिए
जी रहा हूं मैं कल से अब तक–**दुश्यन्त कुमार**

इस प्रकार हिमालय से सेतुबंध तक हिन्दी भाषा ने सभृद्धि दी। आगे चलकर हिन्दी साहित्य सभी विधाओं में अग्रसर हुआ। भाषा विज्ञान में धीरेंद्र वर्मा, उदयनारायण जैसे उल्लेखनीय रहे। श्री वास्तव, बुल्के के शब्दकोष बने। हिन्दी ने अपना स्थान बनाया। हिन्दी के अतिरिक्त अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी हिंदी की गूंज रही। मराठी संतों की हिन्दी को देन, राजस्थान के राज घरानों ने भी हिन्दी की सेवा की, यहां तक कि पंजाब भी अछूता न रहा। हिन्दी भाषा ने पूरी प्रतिष्ठा बना ली। साहित्य के साथ–साथ पत्रकारिता में भी हिन्दी का प्रमुख स्थान रहा। दूरदर्शन, आकाशवाणी, फिल्म, विज्ञापन आदि ने जनसंचार के माध्यम से विश्व बंधुत्व की भावना जागृत की जनसेवा कर शांति की स्थापना की, लेखनी की क्रांति ने जनता को आगाह किया। हर पत्रकार कलम का धनी सिद्ध हुआ। अतीत का गौरव वर्तमान की विषमताओं को देख सुनहरे भविष्य की चिंता निवारण का बीड़ा उठाया। भारतीय संस्कृति, भाषा के प्रति आस्था व्यक्त कर सांस्कृतिक आधार को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया। पत्रकारिता से साहित्यकार का प्रारम्भिक सोपान शुरू हुआ। भारतेंदु, द्विवेदी, प्रेमचंद, पंत, धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मनोहर श्याम जोशी, राजेंद्र अवस्थी, मृणाल पांडे जैसे अगिनत पत्रकारों ने हिन्दी को विकसित किया। 'गौस्पल मेगजीन' हिन्दी की प्रथम पत्रिका कहलाई। बाल पत्रिकाओं ने बाल मनोविज्ञान का आधार बनाया और बालोपयोगी बनाया–चंदा मामा, पराग जैसी बाल पत्रिकाएं अन्य भाषाओं में भी प्रसारित हुई। पर्यावरण के क्षेत्र में स्लोकन के रूप में हिन्दी को बढ़ावा मिला।

''जन–जन को यह बताना है।
पर्यावरण को शुद्ध बनाना है!।''

हिन्दी पत्रकारिता के विकास में अहिन्दी भाषा भाषी भी पीछे नहीं रहे। पराड़कर, माधवराव सप्रे, वामनराव लाखे, रामराव चिंचोलकर आदि। गांधीजी ने तो अपनी कलम को पत्रकारिता का मिशन बनाया। गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे महान व्यक्तियों ने पत्र पत्रिकाओं को दिशा दी। पं. नेहरू शब्दों के पारखी थे। और उनकी तार्किक दृष्टि ने हिन्दी को मिसाल दी। खेल जगत में उनका नारा रहा ''खेल को खेल की भांति खेलो'' राजस्थान के पत्रकारों में जयनारायण व्यास, हरिभाऊ उपाध्याय, माणकजी, सिद्धराज, देवीशंकर तिवाड़ी, युगलकिशोर चतुर्वेदी, रामनारायण चौधरी, दुर्गाप्रसाद चौधरी, पथिक, गोपा, अगरचंद नाहटारा, अमरनाथ चतुर्वेदी उल्लेखनीय रहे । इन पत्रकारों के सपूतों ने भी अपने धरोहर को अक्षुण्ण रखा। जैसे दुर्गाप्रसाद चौधरी के पुत्र दीनबंधु चौधरी दैनिक नवज्योति के संपादक, युगलकिशोर चतुर्वेदी के सुपुत्र डा. सत्येन्द्र चतुर्वेदी ने पिताश्री के मिशन को कायम रखा। लोक शिक्षक आज भी अपने उद्देश्य पर कायम है। हमारे नेतागण भी हिन्दी प्रेमी हैं। अटल बिहारी वाजपेयी के भाषण में हिन्दी भाषा का प्रवाह उनकी कविताओं में भाषा का सौष्ठव आकृष्ट करता है। करतल ध्वनि के साथ हर शब्द ग्राह्य होते हैं। राजीव गांधी की पत्नी सोनिया गांधी भी हिन्दी सीख कर आम जनता के बीच उनके दर्द को सुनती हैं और अपनी हिन्दी भाषा में समाधान भी करती हैं। इस प्रकार हिन्दी भाषा ने सभी क्षेत्रों में अपनी पहचान दी है। खेद इस बात का है कि हिन्दी भाषा

पृष्ठ १०१ का शेषांश

को अंग्रेजी भाषा ने कमजोर कर दिया मानसिकता के आधार पर ! हमारी संस्कृति हमारी सभ्यता पर हाय! फाय संस्कृति का बोलबाला हो गया। नमस्कार, पधारिए की जगह हाय ! ने सभी को हाय!हाय! करवा दिया। ऐसे समय हमें हिन्दी भाषा को जगाना होगा ताकि ''जगे हम लगे जगाने विश्व जगत में फैला फिर आलोक'' की पुनरावृत्ति होगी। 'सर्व सुखिनः' भव की भावना से हिन्दी गुंजायमान हो, ताकि हम समवेत स्वर में जय हिन्द । जय भारती, जय हिन्दी कह सकें। फूट डालो राज्य करो की नीति, का सर्वनाश करना होगा। भाषा में राजनीति जैसी स्थिति का निवारण करना होगा। ऐसी स्थिति में एक कथा बाइबिल के बेवर की मीनार दृष्टव्य है–कहा जाता है कि आदम के बेटों ने आसमान तक पहुंचने के लिए एक बहुत बड़ी मीनार बनाई ताकि ऊपर चढ़ा जा सके और आसमान को छुआ जा सके। कोई उन्नति करे, यह कैसे मंजूर ? द्वेष, ईर्ष्या तो प्रवृत्ति है, स्वभाव है दूसरे का, उसने मीनार की सीढ़ियों को एक–एक कर तोड़ना शुरू कर दिया ताकि मीनार पर से चढ़कर कोई आसमान न छू सके। इसी प्रकार हमारी हिन्दी भाषा है जिसकी मीनार तो बन गई, मजबूती भी रही है। एक चरमावस्था पर पहुंचने को है। पर देश के दुश्मनों ने, छिपे गद्दारों ने भाषा में राजनीति डालकर कमजोर बना दिया है। ऐसी समस्याएं पैदा कर दीं जिनसे उबरना मुश्किल है। ऐसे समय हमें एक जुट होकर भाषा की रक्षा करनी है। हिन्दी विरोधी भक्षक का सर्वनाश करना है। खड़ी बोली की प्रौढ़ावस्था पूर्ण रूप से वलवती हो गई है। जर्जर न हो। इस बात का ध्यान रखना होगा ताकि भाषा का अक्षर अक्षुण रहे। वह शिव रहे, कल्याणकारी रहे, शव न बने। ऐसे समय भारत के प्रति, भारतवासी के प्रति, अपनी संस्कृति के प्रति, अपने धर्म, आस्था के प्रति समर्पण रखना है। कला के साथ भाषा, वह भी हिन्दी को अमृतमय चिरजीवी रखना होगा ताकि अपनी हिन्दी भाषा पर नाज हो और हम अपनी भाषा के प्रति नतमस्तक हों।

–'प्रेम मंजरी, जगन पथ, सी स्कीम, जयपुर

क्षेत्र की प्राचीन भाषाओं के आन्दोलनकारियों में से कुछ को व्यक्तिगत लाभ हो जाए। अब लगने लगा है कि राजनेताओं से इस पृथकतावादी आन्दोलन को समर्थन भी उनकी इस अभिलाषा के कारण मिल रहा है कि इससे उनके लिए अनेक नये–नये शासनिक पद खुल जाएंगे। जो राजनेता भारत की एकता और संविधान के प्रति निष्ठा की शपथें लेते रहे हैं, वे ही इन दोनों को भंग करने को तत्पर हैं।

हिन्दी के माध्यम से ये राज्य आपस में जुड़े ही नहीं हैं; इन राज्यों के सभी क्षेत्रों को इस विशाल भूभाग की सभी संभावनाओं में साझेदारी सहज ही प्राप्त है यही नहीं हिन्दी के राष्ट्रव्यापी रूप की विविध शक्तियां और संभावनाएं भी इस हिन्दी क्षेत्र को सहज ही उपलब्ध हैं।

भारत की एकता और भारत की प्रगति की हिन्दी सबल कड़ी है। हिन्दी का अंग–भंग सारे राष्ट्र की क्षति होगी। उसके आन्तरिक आन्दोलन न अतीत का आदर कर रहे हैं, न भविष्य की इन्हें चिन्ता है। देश पर जो संकट हैं, उन्हें वे बढ़ा रहे है।

यह समय हिन्दी को सुदृढ़, और समर्थ और उसका संविधान में निर्धारित स्थान दिलाने केलिए पूरी शक्ति लगाने का है। असमय अनावश्यक आन्दोलन आरम्भ किये जा रहे हैं।

राज्यसभा में केन्द्रीय शासन की ओर से जो आश्वासन कुछ भाषाओं को आठवीं सूची में सम्मिलित करने के लिए समिति बनाने का दिया गया है, उसके विचार की परिधि में हिन्दी क्षेत्र के भीतर की भाषाए लायी ही नहीं जानी चाहिएं। राजस्थानी और ब्रज जिन दो भाषाओं के नाम लिये गये, वे प्रस्तावित समिति की परिधि में नहीं आनी चाहियें।

जो प्रबलता इस प्रश्न को राज्य सभा में हाल में हुई चर्चाओं के कारण मिल गयी है, उसके खतरों को नहीं समझा गया तो भारत में आन्तरिक संकट इतना बढ़ जाएगा कि उसके आगे भारत के वाह्य संकट उतने गंभीर नहीं मालूम देंगे।

–''स्फटिक'', १, जयाचार्य मार्ग, जयपुर

हर सिंगार

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में धर्म संवाहकों एवं धार्मिक संस्थाओं का योगदान

डा. मनोहर गोरे 'सत्संगी'

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सरकार, संसद, संविधान और राजनीति से अधिक महत्त्वपूर्ण और अहम् भूमिका का निर्वहन धर्म संवाहकों और धार्मिक संस्थाओं ने किया है। इनके अमूल्य योगदान के अभाव में राष्ट्रभाषा हिन्दी आज इतनी विकसित, उन्नत व परिमार्जित स्वरूप में उभरकर कभी राष्ट्र के मानस क्षितिज पर उदित नहीं होती।

कोटि-कोटि कंठो की कोकिला हिन्दी आज भावों की सिन्धु और मन की मीत बनी हुई है। राष्ट्रभाषा हिन्दी आज के संदर्भ में भारत की भावात्मक और राष्ट्रीय एकता की सबसे मजबूत कड़ी है, तथा इस कड़ी को सद्ज्ञान और प्रेरणा देने वाले हमारे धर्म संवाहक और धार्मिकक संस्थाऐं हैं।

धर्म संवाहकों के उपदेश, प्रवचन, शिक्षा और आध्यात्मिक प्रेरणा ने हिन्दी की डगमग डोलती नैया को दृढ़ आधार देकर जन-जन के मन -प्राण में साकेत और वृन्दावन की तरह इसे बसा दिया है।

धर्म संवाहकों और धार्मिक संस्थाओं ने देश-विदेश के कोने-कोने में अपने धार्मिक व सत्साहित्य के प्रकाशन, प्रवचन, उपदेश, संकीर्तन, भजन पूजन, संगीत, यज्ञादि कर्मों के द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार कर भारत के जन-जन को हिन्दी के अथाह सिन्धु में जो अवगाहन कराया है, उसी का परिणाम है, कि आज काश्मीर से कन्याकुमारी तक हिन्दी के शंखनाद की ओजपूर्ण ध्वनि भारत सहित विश्व के १३६ देशों में बसे प्रवासी भारतीयों के हृदय कुंज में अनुगुंजित हो रही है।

नेपाल, मारीशस, सूरीनाम, फिजी जैसे १३६ देशों में हिन्दी के प्रति जो ममत्व और अपनत्व है, इसका सबसे बड़ा योगदान धर्म संवाहकों और धार्मिक संस्थाओं को है। उन्होंने धर्म की अवधारणा, धार्मिक आयोजनों और संस्कारों का संवर्धन कर हिन्दी के अलख को जगाये रखा है।

भारत की ऋषि परंपरा ने हिन्दी को ऋषित्व प्रदान किया है। आदि धर्म संवाहकों से लेकर युगविवर्ती यति चक्रवर्ती ऋषिकल्प आचार्य महामंडलेश्वर अनन्त श्री विभूषित स्वामी शिवेन्द्रपुरी जी महाराज तक हिन्दी इन महापुरुषों की चरण रज लेकर भारत के भाल पर हिमालय के सदृश्य सुशोभित हो रही है।

कबीर, सूर, तुलसी, नानक, रैदास, मीरा, दादू, पलटू और मलूक जैसे संतों की अमर वाणी ने हिन्दी को वरदान देकर उसे अमरत्व प्रदान कर दिया है। अमर हिन्दी की अजस्र धारा अब गंगा, यमुना, सरस्वती, सतलज, सिन्धु, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी, क्षिप्रा, रेवा सी कल-कल निनंदित हो रही है। इसके प्रवाह को अब कोई रोक नहीं सकता।

ऋषि और संतों की जिह्वा से सरस्वती बनकर जो मन-मंदिरों में संस्थापित हो चुकी है, ऐसी राष्ट्रभाषा हिन्दी अब पूजित और वंदित हो रही है।

धार्मिक संस्थाओं ने सेवा, स्नेह, सहयोग, सहकार, सद्भाव, सद्विचार, सदुपदेश, सत्संग व सत्साहित्य के प्रकाशन के अद्भुत मेल से हिन्दी के प्रचार-प्रसार में प्राणवायु का कार्य किया है।

आदि शंकराचार्य द्वारा भारत की चारों दिशाओं में धर्म ध्वजा फहराकर ज्योतर्मठों की जो स्थापना की गयी थी, आज हिन्दी उससे रस-सिक्त हुई है।

नाथ सम्प्रदाय के यम, नियम, ध्यान, धारणा, समाधि, हठयोग और प्राणायाम के प्रचार-प्रसार ने देश के आत्मिक विकास के साथ हिन्दी को योग बल प्रदान किया है। इसी क्रम में साधुओं के अखाड़े यथा-महानिर्वाणी, उदासी, वैरागी, पंचाग्नि और वीतरागी आदि अखाड़ों के महंतों व उनके शिष्यों ने राष्ट्रभाषा हिन्दी में ईश्वर आराधना कर हिन्दी को भक्ति प्रदान की है।

देश भर के पावन तीर्थो के तीर्थ पंडितों, तीर्थगुरुओं, तीर्थपंडों ने भी राष्ट्रभाषा हिन्दी को

हर सिंगार

जीवंत बनाये रखा हैं।

भारत में जन्मे जैन धर्म के मुनियों, आचार्यो और साध्वियों ने भी देश के भूभाग पर पैदल भ्रमण करते हुए गाँव–गाँव में महावीर वाणी का संदेश हिन्दी में अनुगुंजित कर हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार में महान सहयोग दिया है।

वल्लभ संप्रदाय के संस्थापक आचार्य श्री वल्लभाचार्य जी महाराज ने श्री कृष्ण के प्रेम माधुर्य और विश्व सखा भाव की जिस धारा को धरती पर प्रकट किया और अष्टछाप के कवियो को शिष्यत्व प्रदान कर ब्रजमंडल, नाथद्वारा और भारत के पावन स्थलों में विराजित प्रभु श्री की बैठकों में योगेश्वर श्री कृष्ण की लीलाओं का गुणानुवाद जिन मधुर भावों से किया इससे हिन्दी का माधुर्य भारत ही नहीं विश्व में व्याप्त हो गया। "हरे रामा हरे कृष्णा" अंतर्राष्ट्रीय भक्ति संस्था इसी का परिणाम है।

हिन्दी को राममय बनाने वाले संत रामानन्द जी ने रामानन्द सम्प्रदाय की स्थापना कर सियाराम की मन मोहिनी मूरत की भक्ति से हिन्दी को मोहिनी स्वरूप प्रदान किया। देश भर में स्थित रामद्वारे आज हिन्दी के द्वार खोल रहे हैं।

आर्यों की वैदिक संस्कृति की पुनरर्थापना, वैदिक यज्ञों की ऋचाओं तथा वेदो की ईश्वरीय वाणी का संदेश जन–जन तक पहुँचाने के लिये स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर देश भर में अपने उपदेश हिन्दी में देने प्रारंभ किये। मूलतः गुजराती होते हुए भी स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी को देश की संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया। "सत्यार्थ प्रकाश" और "गोकरूणानिधि" जैसे ग्रन्थों की कालजयी रचना से देशभर में हिन्दी की अविरल धारा प्रवाहित की। शिक्षा के क्षेत्र में लाहौर में दयानन्द वैदिक पाठशाला और हरिद्वार में गुरुकुलों की स्थापना कर हिन्दी का वर्चस्व बढ़ाया। आज भी आर्य मनीषियों द्वारा हिन्दी में रचित सत्साहित्य घर–घर में श्रद्धा से पढ़ा जा रहा है।

सन् १८६१ में आगरा में स्वामी जी महाराज द्वारा राधास्वामी मत की स्थापना की गयी। उन्होंने "सारवचन" नामक अलौकिक धर्मग्रन्थ की रचना कर हिन्दी का महान उपकार किया। संत परंपरा में इसी मत के आचार्य हुजूर महाराज ने "प्रेमबानी" औ साहबजी महाराज ने "यथार्थ प्रकाश" नामक ग्रन्थ की हिन्दी में रचना कर इसे संतों की वाणी होने क गौरव प्रदान किया।

कबीर पंथ के काशी में स्थित कबीर चौरा र लेकर भारत भर के कबीर मठों में महंतों ने कबीर क अगम वाणी का संदेश हिन्दी में देकर इस फक्कड़ भाषा बनाया। कबीर के सबद, साखी व दोहे हिन्द की सरलता व भाव प्रवणता के साक्षी है।

वेदमाता गायत्री का गुणगान करने वाले यु पुरुष श्री राम शर्मा आचार्य ने गायत्री शक्ति पीठ क स्थापना कर गायत्री तपोभूमि मथुरा से हिन्दी धार्मिक सामाजिक व युगान्तरकारी साहित्यिक ग्रन्थ की रचना कर इसे जन–जन के हाथों में पहुँचाय वहीं शांति कुंज हरिद्वार से युग संगीत और युगांतका संदेशों का प्रज्ञामंडल गाँव–गाँव में विस्तीर्ण हो र है। देश भर के गायत्री शक्ति पीठ राष्ट्रभाषा हिन् के संवाहक बने हुए है।

इसी पुनीत शृंखला में गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा हिन्दी के प्रति की जा रही वर्णनातीत सेवा व भुलाया नहीं जा सकता है। भाईजी श्री हनुमानप्रस पोद्दार, जयदयाल गोयनका और जमनालाल बजा आदि के संकल्प ने लागत मूल्य से भी कम कीमत मासिक प्रकाशन कल्याण, धार्मिक व शिक्षोपयो साहित्य आदि का अनवरत प्रकाशन कर इसे भा के घर–घर में पहुँचाकर हिन्दी की देवी की घर– में प्राण प्रतिष्ठा कर दी है।

इस प्रकार भारत में ऐसी अनेकों धार्मिक संस्थ हैं जिन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अप तपः साधना की दिव्य आभा से इसे मुखरित कि है। इस देश के अनेकों धर्म संवाहकों–संतों, साधु ऋषियों, महर्षियों, आचार्यों, मुनियों, महंतों ने हि की अमर बेल को अपनी सुधामयी वाणी से भा माता के आँगन में पुष्पित–पल्लवित करने में मह योगदान दिया है।

–प्रान्तीय साहित्य मंत्री, (मध्यप्रदे
हि.सा. सम्मेलन, प्र

हर सिंगार

राष्ट्रभाषा/राजभाषा और संस्कृति

✍ इंजी. विश्वंभर प्रसाद गुप्तबंधु

हिन्दी हमारी राजभाषा है। यह राष्ट्रभाषा भी है। राजभाषा से राष्ट्रभाषा का पद ऊँचा है क्योंकि राज्य की अपेक्षा राष्ट्र बहुत बड़ा होता है राष्ट्र में कई राज्य होते हैं जिनकी भाषाएँ अलग–अलग (हिन्दी से भिन्न) भी हो सकती हैं। राष्ट्र का क्षेत्र बहुत बड़ा वेदानुसार सारी पृथ्वी है। राष्ट्रीयता में परिवार भावना निहित है जिसकी व्यापकता का आदर्श सारी पृथ्वी है (वसुधैव कुटुम्बकम्, विश्वैक नीड़म् और कृण्वन्तो विश्वमार्यम्) । हिन्दी विश्व भाषा बनने की ओर लगातार अग्रसर है, जैसे पृथ्वी को विश्वमार्यम् (श्रेष्ठ विश्व) बनाने हेतु संयुक्त–राष्ट्र संगठन अग्रसर है। हिन्दी का उद्‌भव ही विश्वभाषा बनने हेतु हुआ है और विद्वान लोग शताधिक वर्षों से इसे आर्य (श्रेष्ठ) भाषा कह रहे हैं। हिन्दी बोलने–समझने वाले संसार में सबसे अधिक हैं। यह सुभाषा ही नहीं बल्कि विश्व की सर्वश्रेष्ठ भाषा भी है, इसमें सन्देह नहीं।

हिन्दी सभी मनीषियों द्वारा पारस्परिक व्यवहार की, आपस में मिलने–जुलने की भाषा के रूप में विकसित होकर एक महान राष्ट्र भारत की राष्ट्रभाषा, राजभाषा, सम्पर्क भाषा, योजक भाषा के आसन पर प्रतिष्ठापित है। यह संस्कृत से भी सुधरी हुई भाषा है। जैसे संस्कृत शब्द 'देवर' का अर्थ है पति का भाई (जेठा या छोटा)। महाभारत के बाद भारतीय संस्कृति में आये परिवर्तन के फलस्वरूप, नियोग के लिए केवल छोटा भाई उपयुक्त समझा जाता है, जैठा वर्ज्य है–'अनुज–वधू, भगिनी, सुत–नारी, सुनु शठ कन्या सम ये चारी ; इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई ; ताहि बधे कछु पाप न होई'–रामचरित मानस। हिन्दी में पति का छोटा भाई देवर या बड़ा भाई जेठ कहलाता है–'जेठ स्वामी सेवक लघु भ्राता'।

हिन्दी व्याकरण में लिंग और वचन के प्रकरण भी सुधरे हुए हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत में 'ते' सर्वनाम पुल्लिंग में बहुवचन है किंतु स्त्रीलिंग और नपुसंक लिंग में द्विवचन है, और इनके विशेष्य (पूर्वपदी) दूर होने पर भ्रम की स्थिति पैदा होती है। हिन्दी में सर्वनाम लिंग से अप्रभावित रहते हैं और क्रिया प्रभावित होकर यह भेद खोलती है। संस्कृत में संख्यावाची शब्द 'एकम्' सदा एकवचन, 'द्वि' सदा द्विवचन और शेष सभी सदा बहुवचन होते हैं किंतु इन सभी के तीनों लिंगों में अलग –अलग रूप होते हैं। हिन्दी ऐसी विसंगतियों या जटिलताओं से मुक्त है।

हिन्दी का प्रयोग राष्ट्रभाषा के रूप में देश में सर्वत्र हो रहा है। राजभाषा के रूप में प्रयोग केलिए भी सरकार के पर्याप्त प्रयास, आदेश, अनुदेश हैं। कहीं–किसी काम के लिए संविधान–सम्मत प्रयोग में कोई अड़चन नहीं है। फिर भी इस आर्य (श्रेष्ठ) भाषा के प्रयोग पर भारत में ही झिझक के कारणों पर प्रकाश डालते हुए भारत के गृह–मंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी ने १४ सितम्बर २००० को राजधानी दिल्ली में हिन्दी–दिवस समारोह में कहा था कि आजादी मिलते ही इजराइल की भाँति हम भी अपनी भाषा अपना लेते तो कोई कठिनाई न हीं होती किंतु हमने १५ वर्ष तक अंग्रेजी से चिपके रहने का निर्णय किया

हर सिंगार

और उसके शिकंजे में फँस गये। यह हमारी भारी भूल थी। उन्होंने सामयिक सलाह दी कि हम हीन भावना त्यागकर अपनी भाषा और संस्कृति पर गर्व करें। हिन्दी के उत्थान हेतु सास्कृतिक चेतना पैदा करना जरूरी है। (नवभारत टाइम्स–विद्या टाइम्स ३.१०.२०००)।

हमें हीनभावना त्यागकर अपना खोया स्वाभिमान जगाना है। यह हमारी शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिये। इसी से मानव संस्कृति या मानव–संसाधन का अपेक्षित विकास/परिष्कार सम्भव है। हमारा भारत (विश्वभारत) लगभग २००० साल गुलाम रहा है। एक आक्रान्ता गया तो उसकी जगह दूसरे ने ले ली। अन्ततः अंग्रेजों की गुलामी से १९४७ में हम आजाद हुए। अंग्रेज चले गए, लेकिन हमारी जीवन–शैली और आचार–विचार में अंग्रेजियत अभी भी समायी है और हमें दिन में अनेक बार अंग्रेजियत का स्मरण कराती रहती है। हमें इससे पीछा छुड़ाना है। साक्षरता भी किसी विदेशी भाषा की नहीं, श्रेष्ठ विश्व भाषा हिन्दी की चाहिये। हमारे विद्यालय फैलते जाते हैं उनसे निकलने वाले दिमाग सिकुड़ते जाते हैं। भवन उठते जाते हैं आसमान में, चरित्र गिरता जाता है गड्ढे में। हमारी शिक्षा ऐसी संकीर्ण मानसिकता की नहीं, उदार विश्व–राष्ट्रीयता की होनी चाहिए।

चारित्रिक पतन का कारण श्रेष्ठ भारतीय (पर्यावरण मैत्री वाली) संस्कृति मिटाने के लिए श्रेष्ठ भाषा हिन्दी को जड़–मूल से उखाड़कर पर्यावरण–विरोधी भाषा अंग्रेजी रोपन की जी भर कोशिश ही है। सहसा कोई विश्वा नहीं करेगा कि कोई भाषा भी पर्यावरण को हानि पहुंचा सकती है। पर्यावरण विरोधी पश्चिमी अपसंस्कृति के प्रवाह के माध्यम से संस्कृत/हिन्दी को ही मिटाने की कोशिश है। शिक्षा में इनको स्थान न देकर और बच्चों को बचपन से ही इनसे वंचित रखकर दूसरी और पर्यावरण–विरोधी भाषा अंग्रेजी लादकर बचपन से ही पर्यावरण–विरोधी–मानसिकता भी पैदा की गयी।

इसकी गहराई से छान–बीन आवश्यक है। भारत
पहिचान इसकी चारित्रिक और सांस्कृतिक श्रेष्ठ
के कारण है। इसलिये यह राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्री
अस्मिता का प्रश्न है। कोई भाषा जिनके द्वारा विकसि
की जाती है उनकी मानसिकता झलकाती तथा उ
का प्रसार एवं सीखने वाले में अध्यारोपण करती
उदाहरण–'एक पन्थ दो काज' या 'नौ नगद न ते
उधार' साधारण कामकाजी–महाजन लोगों की कहा
हैं। जिनके लिये अंग्रेजी अभिव्यक्तियाँ हैं–'टु किल
बर्ड्स विद वन स्टोन' और 'ए बर्ड इन हैण्ड इज
टू इन दि बुश'। इनसे परपीडक, शिकारी–मांसाह
मानसिकता साफ झलकती है। यही मानसिकता इ
सीखने वाले की बन जाएगी। अमेरिकी संत ए
फॉक्स के शब्दों में भोजन का हमारे जीवन
सर्वाधिक महत्व है। यही हमारे जीवन–चरित्र
निर्धारण करता है। अवधी में कहावत है जैसा
पानी, वैसी बने बानी, जैसा खाए अन्न, वैसा बने म
अतः, इमरती, खोवा, गुलाब–जामुन, घेवर, जले
बर्फी रसगुल्ला आदि स्वादिष्ट मिठाइयाँ सब
मांस (स्वीट मीट) ही दिखती हैं। कहाँ मिठाई
कहाँ मांस, पर हाय रे अंग्रेजी! स्वीट पहिले जोड़
हर मिठाई को माँस बना दिया।

सबको जोड़ने वाली हिन्दी विश्व–मैत्री
प्रसार, श्रेष्ठ विश्व निर्माण का अनवरत प्रयत्न
बाधाओं–विरोधों का सफलतापूर्वक सामना अ
सत्य–निष्ठा के बल पर करती रही है। डॉ. मैग्रे
(इंग्लैण्ड) के शब्दों में हिन्दी दुनिया की महान भाष
में से एक है। भारत को समझने के लिये हिन्दी
ज्ञान अनिवार्य है। भारत शिक्षा, उद्योग, तकनीक
दुनिया का अग्रणी देश है। भारत में जब अंग्रे
शिक्षा रोपी जा रही थी, तभी ब्रिटिश सरकार
विरोधी दल के सदस्य हागसन ने
संस्कृति–अपहारक प्रयास कहकर विरोध किया
चालाक मैकाले ने योजनाबद्ध शैक्षिक कुचक्र रच
सरकार से स्वीकृत करा लिया कि किसी

हर सिंगार

भारतीय अपना स्वत्व –इतिहास, अपनी भाषा–संस्कृति भूलकर विदेशी वेश–भूषा ग्रहण करले। उसने ईसाई मिशनरियों से हिन्दी में इतिहास, भाषा–विज्ञान, लिपि–विज्ञान पुरातत्व के ग्रन्थ लिखवाये तथा एक मुहावरा उछाल दिया कि हिन्दी शब्द विदेशी है। उन्होंने आर्यों को विदेशी आक्रान्ता बताकर आर्यों–अनार्यों के बीच भीषण संघर्ष की कहानी भी गढ़ दी। डॉ. हार्नले और ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने आर्यभाषाओं का वर्गीकरण कर आर्य तथा द्रविड़ मूल के भाषा–परिवारों की संकल्पना कर उत्तर भारत और दक्षिण भारत में भेद–भाव तथा अलगाव पैदा करने का प्रयास किया। दुर्भाग्यवश आजादी के बाद अंग्रेजी के मानस–पुत्रों ने इस विवाद को और गहराया। कुछ राजनेता भी इस मरीचिका में फँस गये, जबकि वास्तविकता कुछ और थी। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार अंग्रेजी१ प्रतिशत से भी कम भारतीयों की मातृभाषा है। यह भारतीय भाषा ही नहीं है। फिर भी हम इसके शिकंजे में कसे हुए हैं, यह हमारी दासता का अभिशाप है। पहले यवन–आक्रांता आये तो स्वभाषा भूल फारसी, फिर अंग्रेज आये तो अंग्रेजी श्रेष्ठता की प्रतीक ; उन्नति का साधन बनीं। देशी भाषाएँ गँवारपन की निशानी (अपवित्र भाषा, गाली की भाषा) कही गयीं। वेदों के भ्रष्ट अंग्रेजी अनुवाद विश्व में प्रचारित कर हमारे दिमागों में ठूँसा गया कि हम मूर्ख चरवाहों, गड़रियों की सन्तानें हैं और अंग्रेजी शासन हमें सभ्य बनाने आया है। हमें अपने सत्साहित्य–श्रेष्ठ संस्कृति व उत्कृष्ट परम्पराओं से काटकर दरिद्र, दीन–हीन घोषित कर हमारा स्वाभिमान नष्ट किया गया। हम जर–खरीद गुलाम बने 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' गाते रहे। अर्थ काम–सिद्धि का साधन बताकर हमें दासता–पाश में ऐसा कसा गया कि आजाद होकर भी हम उनके दास–भक्त ही बने रहे।

आक्रान्ता करता सदा, जन–संस्कृति का नाश।
शिक्षा पर अधिकार कर, कसे दासता–पाश।।(अनल प्रकाश पृ.३००)

हिन्दी जोड़ने वाली भाषा है, मैत्री वाली भाषा है। इसके विपरीत अंग्रेजी भाषा के विकास में द्वेष–भावना प्रमुख है। उदाहरण के लिये जवान (युवा) के लिये शब्द है 'एडल्ट' और उससे व्युत्पन्न है 'एडल्टरी'। 'ब्रेव–ब्रेवरी' (बहादुर–बहादुरी), ड्रज–ड्रजरी' (चाकर–चाकरी), 'नेव–नेवरी' (धोखेबाज–धोखेबाजी), 'स्लेव–स्लेवरी' (गुलाम–गुलामी), 'राइवल–राइवलरी' न्यूयार्क द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ 'क्रेजी इंग्लिश' (पागलपन की भाषा अंग्रेजी) छपने के बावजूद अंग्रेजी में सुधार के स्थान पर स्वभाववश अपसंस्कृति का विषवमन जारी है। विद्वानों ने प्रोग्राम की वर्तनी (इंग्लैण्ड) के बजाय (अमेरिका) सुझायी किंतु उनकी तूती भाषा के दुराग्रही कठमुल्लाओं के नक्कारखाने में ठप हो गयी।

द्वेषभाव की उपज अलगाववाद ही आधार है अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' नीति की सफलता का, जिसका शिकार होकर भारत अपना क्षेत्र खोता रहा है। इतिहास साक्षी है कि राज्य, भाषा, धर्म, खान–पान, रीति–रिवाज की स्थान –स्थान पर विभिन्नता होने पर भी आचार–विचार से एकात्म अर्थात एक सामान्य संस्कृति के उपासकों का यह भारत (ज्ञान प्राप्ति में लगा हुआ) वेद–काल से एक विशाल राष्ट्र था, जिसे 'वृहत्तर भारत' कहा जा सकता है। इसकी प्रशंसा में विष्णु–पुराण रचयिता ने पूरा एक अध्याय (२/३/१) लिखा है। ऋषि कहते हैं 'जो भूखंड समुद्र (हिन्द महासागर) के उत्तर और हिमाद्री (हिमालय पर्वत–श्रेणी) के दक्षिण में है वह भारत है और उस भूमि की संतान भारती (भारतीय हैं) इस सीमांकनानुसार पश्चिम में गान्धार पर्वत (अफगानिस्तान) और फारस या ईरान (आर्य–आर्यन–ईरान) भारतीय (आर्यों) के देश थे। पूर्व में ब्रह्म–देश (म्यॉमार), दक्षिण में श्रीलंका (सिंहल–सिहल द्वीप–सीलोन) भारत के ही भाग थे जिन्हें अंग्रेजों ने काटकर अलग किया। सुदूर पूर्व में स्याम, जावा (यव–द्वीप), सुमात्रा, मलाया (मलयद्वीप), बाली–द्वीप तक भारतीय संस्कृति का प्रसार था। इसके अनेक प्रमाण अब भी जगह–जगह मिलते हैं। यह वृहत्तर भारत 'एक विश्व–श्रेष्ठ विश्व' की कल्पना साकार

करने वाले 'विश्वभारत' की प्रगति का एक पडाव था। अंग्रेजों ने फूट डाल अपनी सत्ता स्थापित की और भारत छोड़ते–छोड़ते भी इसके तीन खड कर दिये।

अमेरिका–सहित सारे पश्चिम को भरपूर विषाक्त करके भारत पर भी अंग्रेजी के विष–दन्त गड़ने लगे। सभी शिक्षा–शास्त्री, राष्ट्र–प्रेमी राजनेता और उच्चतम–न्यायालय तक बार–बार कह चुके हैं कि बच्चों को शिक्षा उनकी मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। राष्ट्र–पिता म. गांधी ने २५ दिसम्बर १९१७ को कोलकाता में अंग्रेजी शिक्षा आरम्भ होते ही इसे 'दुर्गति' और 'राष्ट्रीय शोक' कहकर आजादी मिलते ही निकाल फेंकने का आह्वान किया था, किंतु अंग्रेजी से चिपके रहने की भयंकर भूल हो चुकी है। अब इसका फल तो भुगतना ही होगा। दुर्भाग्य यह कि यही अंग्रेजी भाषा भारत के दुधमुँहे बच्चों को घुट्टी में पिलाकर उन्हें अपसंस्कृति में दीक्षित कर, मातृभाषा से वंचित रखकर उनसे स्वस्थ विकास का अधिकार छीना जा रहा है। पढ़ाने का ढंग और पाठ्य–पुस्तकों की रचना ऐसी है कि वे भाषा–ज्ञान देने की अपेक्षा प्रच्छन्न मत–आरोपण अधिक सफलता–पूर्वक कर सकें । उदाहरण–छोटे बच्चों की वर्ण–माला की सचित्र पुस्तक में अंग्रेजी वर्ण एफ् (F) से आरंभ होने वाले फैन (Fan), फॉक्स (fox), फाउन्टेन (Fountain), फ्रेम (Frame), फोर (Four), फ्लो (Flow), फुट (Foot) आदि अनेक सरल शब्द हैं जिनके चित्र देकर इस वर्ण का ज्ञान दिया जा सकता है किंतु तीन शब्द चुने गये फिश (Fish), फायर (Fire) और फ्राइंग (Frying) जिनको व्यक्त करता हुआ एक ही चित्र दिया गया है जिसमें नीचे आग (Fire) जलती है और ऊपर एक धागे से लटकी हुई मछली (Fish) भूनी (Fry) जा रही है। इसे देखकर सन् १८५७ के बावनी इमली (फतेहपुर,उ.प्र.) में डालों से लटकते शहीदों के शवों के चित्र याद आते हैं, जिन्हें कोई व्यवस्था न कर गाँव–बाहर इमली के पेड़ से लटकाकर सामूहिक फाँसी दी गयी थी।

अबोधता का जामा पहिनकर वर्ण–परिचय के लिए प्रस्तुत जिस चित्र को देखकर किसी श्रेष्ठ (आर्य) पुरुष के मन में सामाजिक अन्याय–अन्यायी के प्रति रोष, घृणा, जुगुप्सा तथा उत्पीड़ित के प्रति करुणा और सहानुभुति के भाव मूर्त हों, वही चित्र बच्चों को सामान्य परिचय के रूप में दिखाने से उनके कोमल मानस–पटल पर निर्दयता, उत्पीड़न, अभक्ष्य–भक्षण और हत्या को दुनियावी दस्तूर समझने के आसुरी भाव अंकित हो कर उन को अपसंस्कृति की ओर मोड़ेंगे। भाँति–भाँति के उपाय कर पर्यावरण–विरोधी मानसिकता वाली अंग्रेजी के प्रति ललक, आकर्षण और मोह बढ़ाने पर तत्काल रोक लगानी चाहिए।

उपर्युक्त छान–बीन का उद्देश्य तथ्यों तथा विद्वानों, राष्ट्रप्रेमियों व न्यायाधीशों के मत की जानकारी देना है ताकि न्यायालय की उपेक्षा बद हो, परदोष दर्शन या द्वेष प्रसार उद्देश्य नहीं है। हमें भले–बुरे किसी से घृणा नहीं है, क्योंकि 'जड़–चेतन गुण–दोष–मय विश्व कीन्ह करतार'। अंग्रेजी भाषा के जानकार इसमें भी कोई गुण खोज सकते हैं। हमे जब इसी दुनिया में रहना है तो जिन्हें अंग्रेजी जाननी जरूरी हो, वे अवश्य सीखें किन्तु पहिले अपनी सुभाषा का अमोघ मन्त्र पढ़कर उसे भली–भाँति कीलित कर 'सन्त हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि बिकार' के अनुसार अंग्रेजी के विषदंत उखाड़कर ही । युधिष्ठिर और विदुर ने भी म्लेच्छ भाषा सीखी थी जिसका प्रयोग १२ वर्षीय वनवास हेतु जाते समय युधिष्ठिर को संभावित लाक्षागृह–षड़यत्र से सावधान करने के लिये विदुर ने किया था, जिसे कोई और न समझ सका। अतः, अंग्रेजी या अन्य किसी भाषा को मातृभाषा हिंदी पर वरीयता नहीं दी जा सकती।

–साभार नर्मदा, जबलपुर
(प्रवेशांक)

हर सिंगार

राष्ट्रभाषा हिन्दी की संरक्षा आवश्यक

मनोहर कोठारी

प्रत्येक जागृत, संवेदनशील जीवन्त और स्वतंत्र राष्ट्र की अपनी भाषा होती है, जो उस राष्ट्र की राष्ट्रभाषा के नाम से अभिहित और महिमा मण्डित होती है। राष्ट्र भाषा ही किसी राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति गौरव और उस की लोक शक्ति तथा जन चेतना की संवाहक होती है। जिस राष्ट्र की अपनी स्वयं की भाषा नहीं होती, उसको पंगु ही नहीं वरन निर्जीव राष्ट्र माना जाता है, क्योंकि राष्ट्रभाषा के अभाव में कोई भी राष्ट्र अभीष्ट प्रगति और विकास नहीं कर सकता। यदि निर्विकल्प दृष्टि से विचार किया जाय तो इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं कि भाषा ही किसी विकासशील राष्ट्र की धड़कन, उस की राष्ट्रीय अस्मिता और उस की अन्तरात्मा का प्रतीक है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उसके अनन्तर ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अंग्रेजी को अपने शासन काल में उसके दैनन्दिन व्यवहार और कामकाज की भाषा बनाया। इसके मूल में भाषायी सुविधा ही नहीं अपितु उसमें तत्कालीन शासकों की एक गुप्त और प्रच्छन्न योजना यह भी थी कि शासन के सभी नीतिगत और महत्त्वपूर्ण निर्णय व विनिश्चय अंग्रेजी भाषा में हों ताकि भारत की सामान्य जनता उस को समझ ही नहीं सके।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में जब भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा गया, उस में भी हिन्दी भाषा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली भूमिका रही है। इस वास्तविकता को हमारे देशवासी कभी भी और किसी भी काल अथवा युग में नहीं भुला पायेंगे। इसके साथ ही इस वास्तविकता से भी कभी इन्कार नहीं किया जा सकता कि हमारी स्वाधीनता के संघर्ष में भी हिन्दी का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

यहां इस बात का उल्लेख करना भी अनुचित नहीं होगा क्योंकि बापू ही नहीं नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और मदन मोहन मालवीय प्रभृति नेतागण भी हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने के प्रबल पक्षधर और समर्थक थे। यह भी एक ऐतिहासिक यथार्थ है कि सन् १९३५ में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद से बोलते हुए महात्मा गांधी ने इन्दौर में इस आशय की स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि "अंग्रेजी किसी भी स्थिति में भारत की राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती, हिन्दुस्तान की सचमुच एक भाषा बनना है तो हिन्दी ही हो सकती है, क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को नहीं मिल सकता।" और तो और बापू तो हिन्दी को आर्य भाषा मानते थे और यह महत्त्वपूर्ण सुझाव देते थे कि काँग्रेस में भारतीय स्तर के नेतृत्व के लिये हिन्दी भाषा का ज्ञान और व्यवहार बहुत आवश्यक है। उनकी तो यह भी मान्यता थी कि हिन्दी के द्वारा ही सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

इसी संदर्भ में दक्षिण भारत के अपने युग के एकछत्र नेता कामराज का विचार भी दृष्टव्य है:-

"यह कहना गलत है कि दक्षिण की जनता हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने के विरुद्ध है। दक्षिण भारत के राष्ट्रवादी भावनाओं के लोग हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में हैं।

वे चाहते हैं कि कोई आर्ष लिपि हो किन्तु साथ ही उनका यह भी कहना है कि उनकी लिपि खत्म न हो।...............भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी ही होगी।"

भारतीय संविधान के शिल्पी तथा निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भी कहा था–"यदि सब भारतीय लोग एक होना चाहते हैं और एक सामान्य संस्कृति का विकास करना चाहते हैं तो उनको हिन्दी भाषा को ही, सामान्य जन की भाषा, सरकारी काम काज की भाषा बनाना होगा।"

अंग्रेजी साम्राज्यवाद की दासता से मुक्त होने के पश्चात् स्वाधीन भारत के संविधान निर्माताओं ने संविधान में इस आशय की स्पष्ट व्यवस्था कर दी कि १६ जनवरी, १६६५ को हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले लेगी और उसी दिन से भारतीय संघ तथा राज्य सरकारों का समग्र कामकाज हिन्दी में प्रारम्भ हो जायेगा। किन्तु यह बात हमारे देश की नौकरशाही के गले नहीं उतरी। उसने अत्यन्त ही नियोजित ढंग से उक्त संवैधानिक व्यवस्था को उलट ही नही दिया बल्कि उस की धज्जियाँ भी उड़ा दी। उक्त विधिक व्यवस्था के अन्तर्गत जहाँ सभी शासकीय आदेश अनिवार्यतः अंग्रेजी में प्रकाशित किये जाने लगे तो हिन्दी भाषा के समर्थक लोगों के आँसू पौंछने के उद्देश्य से उसका हिन्दी अनुवाद भी उसके साथ प्रकाशित किया जाने लगा। इस प्रकार वैधिक दृष्टि से अंग्रेजी का आधिकारिक प्रयोग निर्बाध और धड़ल्ले के साथ चलता रहा और वह अद्यावधि निरन्तर चल रहा है। सच तो यह है कि राजकाज में अंग्रेजी की तुलना में आज हिन्दी वस्तुतः उसकी मात्र अनुगामिनी और सहचरी बन कर रह गयी है। कहने का अभिप्राय यह है कि शासकीय नौकरशाही की दुरभिसंधि और चतुराई के परिणाम स्वरूप शासन में अंग्रेजी मुख्य और हिन्दी गौण होकर रह गई है। हिन्दी के प्रति यहां स्पष्टतः शासन का अवैधानिक, दोगला और सौतेला व्यवहार है, जो संविधान की व्यवस्था और संविधान निर्माताओं की आकांक्षाओं के विरुद्ध ही नहीं अपितु भारतीय जन सामान्य की अभिलाषा और भावना के सर्वथा विरुद्ध है।

हमारे राष्ट्र की नौकरशाही ने इतना ही नहीं किया, जहाँ वर्ष के तीन सौ पैंसठ दिन हिन्दी की अर्चना होनी चाहिये उसके स्थान पर उसने पूरे वर्ष में केवल एक दिन, प्रतिवर्ष १४ सितम्बर को, हिन्दी दिवस आयोजित करने के नाम पर हमारे रिसते घावों पर नमक अवश्य छिड़का। यह निश्चय ही हमारा अपमान करने का मात्र नियोजित षड़यन्त्र था।

यदि भाषा विज्ञान की दृष्टि से विश्व की सभी भाषाओं का गहन और तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो यह सर्वथा सत्य है और निर्विवाद रूप में सिद्ध होता है कि हिन्दी भाषा अन्य सभी भाषाओं की तुलना में सर्वाधिक सरल, सुगम एवं वैज्ञानिक है। हमारी देवनागरी लिपि की तो कहीं कोई समानता है ही नहीं, उसकी वैज्ञानिकता पूर्णतः प्रमाणित है। हम जैसा बोलते हैं देवनागरी लिपि में ठीक वैसा ही लिखा जाता है और जैसा लिखा जाता ठीक वैसा ही बोला भी जाता है।

इस को दुर्भाग्य नहीं तो भला और क्या कहा जाय कि भारत में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि जैसी समृद्ध और वैज्ञानिक भाषा और लिपि होते हुए भी हम आज तक भी हमारी राष्ट्र भाषा संवैधानिक अधिकार से वंचित है।

दूसरी ओर देश के छोटे से छोटे गाँव में भी अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की कुकुरभुत्तों की भाँति बाढ़ आ रही है। आज की शिक्षा सेवा भावना से नहीं अपितु अंग्रेजी शिक्षा के नाम पर निर्लज्ज व्यापार और खुली लूट खसोट है।

निश्चित ही पीड़ा का विषय तो यह है कि हमारे देश की अखिल भारतीय ख्याति की हिन्दी की प्रतिनिधि संस्थायें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेल प्रयाग, नागरी प्रचरिणी सभा, काशी और

हर सिंगार

राष्ट्र भाषा प्रचार समिति वर्धा भी शासकीय नौकरशाही की दुरभिसंधि और षड़यन्त्र की शिकार बन गयी हैं और १४ सितम्बर को हिन्दी दिवस मनाने की होड़ में बढ़–चढ़ कर भाग लेने लगी हैं। इस संस्थाओं ने इस तथ्य पर कभी भी गम्भीरता पूर्वक विचार ही नहीं किया कि आज हिन्दी दिवस के नाम से आयोजन किया जाता है, वह अप्रत्यक्षतः हिन्दी सेवी संस्थाओं का, कार्यकर्त्ताओं का स्पष्ट अपमान है।

देश को अंग्रेजों की दासता से मुक्त हुए पचपन वर्ष बीत चुके हैं और देश शान के साथ अपनी स्वाधीनता की स्वर्ण जयन्ती भी मना चुका है किन्तु दुर्भाग्य की बात तो यह है कि देश में भाषायी पराधीनता आज भी यथावत विद्यमान है। यह यथार्थ में हमारे राष्ट्र की सब से बड़ी विडम्बना है। प्रतिवर्ष १४ सितम्बर को केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा हिन्दी दिवस मनाने के औपचारिक निर्णय भी हमारे देश की प्रबुद्ध और जागरूक जनता को मूर्ख बनाने का नियोजित प्रयास मात्र है।

इस दृष्टि से साहित्य–मण्डल, नाथद्वारा का सोच बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और व्यावहारिक है। साहित्य–मण्डल १४ सितम्बर को हिन्दी दिवस के रूप में न मना कर अंग्रेजी हटाओ अथवा अंग्रेजी भगाओ दिवस के रूप में मनाता है तथा इस का शनैः–शनैः जन सामान्य पर भी प्रभावशाली असर भी हो रहा है। मेरी यह स्पष्ट मान्यता और विश्वास है कि यदि साहित्य–मण्डल ही की शैली व तर्ज पर हिन्दी की अन्य प्रतिनिधि संस्थाओं द्वारा भी १४ सितम्बर को हिन्दी दिवस के रूप में न मना कर अंग्रेजी हटाओ अथवा अंग्रेजी भगाओ दिवस के रूप में मनाया जाय और सभी हिन्दी सेवी लोग उस के लिये निश्चित रूप में संकल्प करें तो केन्द्र सरकार के साथ ही साथ राज्य सरकारों के बहरे कानों पर कभी न कभी जूँ अवश्य ही रेंग सकती है। अतः प्रत्येक देश भक्त और हिन्दी सेवी व्यक्ति को इस के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

- अध्यक्ष, साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

हिन्दीः सत्ता और स्वार्थ की शिकार भाषा

✍ गिरजेश व्यास

हमारी मातृभाषा या कहें भारत की जनभाषा हिन्दी अवश्य है, किन्तु विड़म्बना यह है कि सत्ता की भाषा, शक्ति की भाषा हिन्दी नहीं है। बीसवीं सदी में हिन्दी ने कई उतार–चढ़ाव देखे हैं, एक लंबा सफर तय किया है। सदी के पूर्वार्द्ध में, स्वतंत्रता के पूर्व, स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े सभी नेताओं ने यहाँ तक कि अहिन्दी भाषी नेताओं ने भी, हिन्दी को हथियार बनाया, जन–जागरण का और तख्ता पलटा अंग्रेजी साम्राज्य का। जबकि सदी के उत्तरार्द्ध में, इन्हीं लोगों ने सत्ता प्राप्ति के उपरांत, हिन्दी को हाशिये पर डाल दिया। भाषा का तख्ता पलट दिया। अंग्रेजों को भगाया, अंग्रेजी को सिंहासन दे दिया। हिंदी के हथियार से स्वतन्त्रता प्राप्ति की ओर उसे याने हिन्दी को अस्त्र समझ, जंग लगने हेतु संग्रहालय में बंद कर दिया। सत्ता के केन्द्र, शक्ति के केन्द्र जन आन्दोलनों के दबाव में आकर हिन्दी की खोज खबर लेने का नाटक करने लगे और हिन्दी को भाषा के रूप में अपनाने के स्थान पर हिन्दी शब्दावली से जूझते रहे और उस पर क्लिष्टता का लेबल चस्पा कर दिया। रेवड़ियाँ बाँटने के दिन आ गये थे, इसलिये आयोग समितियाँ, रिपोर्ट, दौरे, निरीक्षण, आवभगत, मिलीभगत का दौर चल निकला और चल रहा है। काम हो रहा है, काम चल रहा है, प्रचार सौ गुना हो रहा है। विदेशों में हिन्दी की उन्नति के लिए भ्रमण भी हो रहा है । आज सोचने का काम हमारा है, आपका है, उन सब लोगों का है जो मां भारती के सपूत हैः उपासक हैं आराधक हैं स्व प्रेरित हैं, निःस्वार्थ हैं और सर्वोपरि राष्ट्रभक्त हैं। खलील जिब्रान ने कहा था राष्ट्र स्वयं का उगाया अन्न नहीं खाता तो भूखा ही रहता है, स्वयं का बनाया वस्त्र नहीं पहनता तो नग्न ही रहता है, स्वयं की भाषा नहीं बोलता तो गूँगा ही रहता है, तो आईये राष्ट्र के मूल स्वरूप को राजभाषा की वाग्मिता से मूल स्वरूप में वापस लाने का हम संकल्प करें, साहस करें और मा भारती को शिकारियों से बचायें।

–"राजभाषा चेतना"अक्टूबर ०१ से

हर सिंगार

जनभाषा हिन्दी और जनसेवा

हिन्दी भारत की राजभाषा, राष्ट्रभाषा और सम्पर्क भाषा है और अब अंतर्राष्ट्रीय आंकड़े भी यह बता रहे हैं कि विश्व में चीनी भाषा के बाद हिन्दी बोलचाल की दूसरी सबसे बड़ी भाषा है। आंकड़ों के अनुसार दुनिया में ८७.४ करोड़ लोग चीनी, ३६.६ करोड़ लोग हिन्दी, ३४.१ करोड़ लोग अंग्रेजी बोलते हैं। लेकिन ये आंकड़े विश्वसनीय नहीं लगते। वज़ह यह, कि भारत की आबादी सौ करोड़ की संख्या पार कर चुकी है और उसमें क्या केवल ३६ प्रतिशत लोग ही हिन्दी बोलते हैं ? यह संख्या उनकी तो हो सकती है जो हिन्दी को अपनी मातृभाषा मानते हैं। लेकिन सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी समझने और बोलने वालों की संख्या कहीं अधिक है।

दरअसल हिन्दी आर्य भाषा–परिवार की शाखा है और देश की अनेक प्रमुख भाषाएँ, जैसे उर्दू, मराठी, गुजराती, बंगला, पंजाबी, सिन्धी आदि भी इसी भाषा–परिवार की हैं। इन भाषाओं के लोग भी हिन्दी ठाठ से समझते हैं और अपनी–अपनी शैली के हिसाब से बोलते भी हैं। दक्षिण भारत में केवल तमिलनाडु को छोड़कर अन्य तीनों राज्यों में हिन्दी पढ़ने, समझने और बोलने वालों की संख्या भी तेजी से बढ़ती जा रही है। यदि निष्पक्ष आंकलन किया जाए तो हिन्दी समझने और बोलने वालों की संख्या ६० करोड़ से कम नहीं होगी। लेकिन विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की सम्पर्क भाषा होने के नाते हिन्दी जिस गौरव की अधिकारिणी है, उससे उसे वंचित रखने का प्रयास अभी भी बदस्तूर जारी है।

इस प्रयास अथवा षड़यंत्र के लिए स्कूल की परीक्षा पद्धति गढ़ने वालों से लेकर संघ लोक सेवा आयोग तक वे सभी जनता को दोषी दिखते हैं, जो सत्ता की सभी सुख–सुविधाओं पर अपना एकाधिकार बनाए रखने की लोकतंत्र–विरोधी सामंतवादी मानसिकता से ग्रस्त हैं। हिन्दी अथवा स्थानीय भाषा में वोट माँगने वाले वरिष्ठ अधिकारियों का चयन करने वाला संघ लोक सेवा आयोग तो हिन्दी का विरोध और अपमान करने के कारण विश्व के सबसे लम्बे धरने के लिए चर्चित हो चुका है। प्रतियोगी परीक्षाओं में हिन्दी माध्यम से लिखने की अनुमति उसने कई साल बाद ही दी। आयोग की भारतीय–भाषा विरोधी नीतियों के खिलाफ़ उसके मुख्यालय के बाहर कई साल तक चले धरने में समय–समय पर अटलबिहारी वाजपेयी, विश्वनाथप्रतापसिंह, ज्ञानी जैलसिंह आदि नेता भी शरीक हुए, लेकिन आज भी यह हाल है कि भारतीय प्राशासनिक सेवा आई.ए.एस. की लिखित परीक्षा में हर प्रतियोगी को अंग्रेजी के प्रश्न–पत्र में उत्तीर्ण होना पड़ता हैं। मतलब यह, कि वह हिन्दी का ज्ञाता हो तो हो, उसे अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान होना जरूरी है। साक्षात्कार में यदि कोई फर्राटे से अंग्रेजी नहीं बोल पाता है तो उसका सपना चकनाचूर हो जाता है। सभी जानते हैं कि अपने यहाँ फर्राटे से अंग्रेजी केवल वे बोल पाते हैं जो भारी–भरकम फीस वाले पब्लिक स्कूलों में पढ़े हुए होते हैं। हमारे संविधान में अवसरों की समानता के मूल अधिकार का संघ लोक सेवा आयोग उल्लंघन करे, यह हमारे लोकतंत्र के लिए किसी त्रासदी से कम नहीं है। इस प्रणाली से निकले अफसर कैसे 'जनसेवक' होंगे, किस हद तक जनता से संवाद बना पाएँगे, यह सहज ही समझा जा सकता है।

-'हिन्दुस्तान' से साभार

-भारतीय वाङ्मय जून-जुलाई २००

हर सिंगार

हिन्दी बोलते-बोलते अँगरेजी 'स्पीक' करने की यह आदत!

✍ अनन्त श्रीमाली

प्रखर चिंतक एवं कवि श्री बालकवि वैरागी ने पिछले दिनों अहमदाबाद दूरदर्शन की एक भेंटवार्ता में बताया कि आजकल हिन्दी पाँच जगह से नया आकार ले रही है—पश्चिम में गुजराती, मराठी, कोंकण और आंचलिक बोलियों से, दक्षिण में संस्कृत, तमिल, कन्नड़, मलयालम और दक्षिण की दूसरी बोलियों से, पूरब में बंगला, उड़िया, असमिया, मणिपुरी और वहाँ की स्थानीय भाषा से तथा उत्तर में डोंगरी, कश्मीरी, उर्दू से परन्तु एक विशेष हिन्दी तैयार हो रही है बीच के हिस्से मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और बिहार में। वहाँ जो हिन्दी तैयार हो रही है वह शब्द ले रही है अँगरेजी से, और एक नई हिन्दी तैयार हो रही है !

आज बोलचाल की हिन्दी 'हाय' से शुरू होती है और 'बाय' पर समाप्त होती है। बीच में ओ.के. थैंक्यू, एक्सीलेंट, वेरी गुड जैसे शब्द भी आते रहते हैं। ऐसा अनुमान है कि पिछले दो दशक से बोलचाल की हिन्दी में अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग बढ़ा है। किसी भी भाषा में अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों का मेल कब, कैसे और क्यों हुआ ? इसके निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। हिन्दी में भी अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों की यात्रा कहाँ से शुरू हुई, यह कोई नहीं जानता । हालाँकि राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने 'हिन्दी की हिन्दी व्याकरण' (१८७६) में लिखा है कि रेलवे के ब्रेक व सिग्नल जैसे शब्दों से इसकी शुरुआत हुई । सन् १८८७ तक कोच, क्लास जैसे अनेकानेक शब्द हिन्दी में अपनी जड़ें जमा चुके थे।

यह निर्विवाद और सर्वविदित तथ्य है कि भाषा अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है। भाषा ही हमें एक—दूसरे से निकटता के साथ जोड़ती है। भाषा का पहला गुण है—अस्तित्व में रहना। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। लोगों की आवश्यकता, परिवेश, शिक्षा स्थानीय भाषा और परिस्थितिजन्य उद्‌गार बोलचाल की भाषा का रूप ले लेते हैं, जिसका कोई तयशुदा शब्दानुशासन और लिखित व्याकरण नहीं होता है। यही कारण है कि अँग्रेज लोग भी मजबूरी में टूटी—फूटी हिन्दी बोलते थे अन्यथा मानक अँग्रेजी में आए हुए हिन्दी सहित भारतीय भाषाओं के २० हजार शब्दों का प्रचलन कैसे हुआ? अँग्रेजी साहित्यकारों ने भाषा की शुद्धता के संदर्भ में उदारता का परिचय दिया। सन् १७५५ में डॉ. जॉनसन द्वारा प्रकाशित अँग्रेजी के प्रथम प्रामाणिक शब्दकोश 'ए डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश लैंग्वेज' में ऐसे सभी शब्दों का समावेश है जो अँग्रेजी में प्रयुक्त हो सकते थे, फिर भले ही वे अन्य भाषाओं से आयातित हों। 'ए हिस्ट्री ऑफ दि इंग्लिश लैंग्वेज" के लेखक अल्र्वड सी. बाफ के अनुसार अँग्रेजी ने पचास से अधिक भाषाओं से हजारों शब्द लिए हैं। अँग्रेजी में जब अन्य भाषाओं से लेकर शब्दकोष में शामिल किए जाते हैं तो 'खबर' बनती है और बाकायदा उनकी घोषणा की जाती है। हिन्दी में भी इस तरह की स्वस्थ परम्परा का पालन होना चाहिए।

प्रश्न यह है कि दूसरी भाषाओं के आने वाले इन शब्दों को (विशेषकर अँग्रेजी के) किस सीमा तक समाहित किया जाए? एक बानगी देखें और बताएँ कि यह कौन सी भाषा है ? 'लेडिज एंड जेंटलमैन, आज हिन्दी—डे के प्रोग्राम में मुझे आपने

लैक्चर देने के लिए इनवाइट किया इसके लिए थैंक्स। हिन्दी हमारी मदर टंग है और नेशनल लैंग्वेज है। इसलिए हमें इसे और डेवलप करना है। यह हमारी कांस्टिट्यूशनल रिस्पांसबिलिटि है। इतने अच्छे प्रोग्राम के लिए कांग्रेच्युलेशन....।' अब हिन्दी–अँग्रेजी वाले आपस में प्रेम से लड़ें कि यह तो हमारी भाषा है। सवाल यह है कि क्या हम एक नई भाषा गढ़ने में लगे हैं ? क्या इन अँग्रेजी शब्दों के हमारे पास सहज, सरल विकल्प नहीं हैं ? क्या भाषा के इस भुर्ते को स्वीकार कर लिया जाए ?

प्रश्न यह भी है कि इस 'हिन्गलिश' के कर्णधार कौन हैं ? एक तो यह महाविद्यालयीन सुकुमार–सकुमारियों के मुँह लगी हुई है। दूसरे, वे लोग जिनके पास हिन्दी शब्द सम्पदा की कमी है, फिर भले ही मातृभाषा हिन्दी ही क्यों न हो ! तीसरे, अँग्रेजी से सामाजिक प्रतिष्ठा जुड़ी है–इस भ्रम के तहत अटपटे और बनावटी ढंग से अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग करके यह जताने की कोशिश की जाती है कि हम भी शिक्षित और काबिल हैं। चौथे, वे लोग जो अहिन्दी भाषी हैं या जिन्हें हिन्दी भाषा का ज्ञान कम है, वे अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं। चौथी श्रेणी के लोगों की बात समझ में आती है। लेकिन जो लोग जानबूझकर अँग्रेजी शब्दों की घुसपैठ करते हैं, उनका क्या ?

कुछ लोग बेशर्मी से कहते हैं कि हिन्दी में पर्याप्त शब्द सम्पदा नहीं है, जबकि हिन्दी में सात लाख से अधिक शब्द हैं और अँग्रेजी में मात्र ढाई लाख। प्रसिद्ध खगोलशास्त्री जयन्त नार्लीकर, नाभिकीय चिकित्सा विशेषज्ञ डॉ. लेले, वैज्ञानिक एवं कम्प्यूटर विशेषज्ञ गुणाकर मुले आदि बहुत ही सरल–सहज हिन्दी में अपने–अपने विषय की बातें करते हैं, कहीं कोई परेशानी नहीं। एक जमाने में अमीन सयानी का बिनाका गीतमाला और आज के दौर का कौन बनेगा करोड़पति कार्यक्रम बिना अँग्रेजी शब्दों के लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचा। तब हम कैसे मान लें कि अभिव्यक्ति का पैमाना अँग्रेजी शब्द हैं। हाँ, संस्कृतनिष्ट अनुपयोगी शब्दों से बचना चाहिए।

प्रसिद्ध लेखक–आलोचक प्रो. नामवरसिंह ने कहा है कि शब्द तो करेंसी हैं। जब तक वह चलेगा नहीं, लोग उसे जानेंगे नहीं, पहचानेंगे नहीं। जरूरत है हिन्दी के शब्दों को प्रयोग में लाकर अपनाने की। अँग्रेजी के शब्द जुबान पर चढ़ रहे हैं इसलिए हिन्दी के शब्द कठिन लगते हैं। हिन्दी की बोलचाल में भी अँग्रेजी के शब्द सहज, सरल और स्वाभाविक रूप से आएं तो कोई ऐतराज नहीं। कबीर ने भी कहा है कि भाषा/बोली तो बहता नीर है लेकिन बहता नीर अपने आसपास की तमाम चीजों को समेटता बहता चलता है। उसे ध्यान नहीं होता कि इसमें अच्छी बुरी दोनों चीजें हैं। यही स्थिति हिन्दी की हो रही है।

क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि हममें भाषाई अस्मिता, निष्ठा और आत्मविश्वास की कमी है ? कहीं अँग्रेजी शब्दों का अनावश्यक प्रयोग हमारी हीनभावना का प्रतीक तो नही? यह हमारी भाषाई पहचान को नष्ट कर हमें शब्दों की गुलामी की तरफ ले जा रहा है। सीधे–सीधे शब्दों में कहें तो अँग्रेजी सही ढंग से बोलना नहीं आएगा तो चलेगा, परन्तु गर्व से गलत हिन्दी बोलें। कहीं ऐसा न हो कि ''न खुदा ही मिला न विसाले सनम।' न इधर के रहे, न उधर के रहे ।''

भारतीय भाषाओं के शब्दों से कोई गुरेज नहीं है क्योंकि वे तो सहोदर भाषाएँ हैं। ऐतराज अँग्रेजी शब्दों पर भी उतना नहीं है, बशर्ते वे हमारी हिन्दी में शक्कर की तरह घुल जाएँ । यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि हिन्दी शब्दों का समर्थक होना अँग्रेजी विरोधी होना नहीं है, विरोध अँग्रेजी शब्दों को बेवजह आसमान पर बिठाने से है।

-साभार - नई दुनिया,३ अप्रेल २००२

हर सिंगार

हिन्दी की प्रगति में प्रमुख बाधाएं

✍ राजीव खानापुरकर

राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय चिन्ह किसी राष्ट्र की राष्ट्रीयता के परिचायक होते हैं। इनमें राष्ट्रभाषा का स्थान सबसे अहम् है क्योंकि राष्ट्रभाषा ही राष्ट्र के निवासियों के बीच विचार सम्प्रेषण में प्रयुक्त होती है। सम्पूर्ण राष्ट्र के निवासियों को एकता के सूत्र में बांधती है। भारत के सन्दर्भ में राष्ट्रभाषा हिन्दी का महत्त्व इसलिये भी और बढ़ जाता है क्योंकि 'भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान हिन्दी हमारी राष्ट्रीय अस्मिता की प्रतीक बनी और राष्ट्रीय आन्दोलन की उत्प्रेरणा में इसका एक महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

यदि हम आज से ५४ वर्ष पूर्व के परिदृश्य को देखें, जबकि हमारा देश स्वतंत्र हुआ था, तो यह सहज ही पता चलता है कि तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता देने के प्रमुख कारण निम्नांकित थे–

(१) हिन्दी सर्वाधिक जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली भाषा है।

(२) हिन्दी ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के उद्‌भव और विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी राष्ट्रवासियों के दिलों में राष्ट्रीय अस्मिता के प्रतीक के रूप में अमिट रूप में अंकित रहेगी।

(३) हिन्दी और अन्य कई अहिन्दी भाषाओं का मूल स्रोत एक होने से अहिन्दी भाषियों को भी हिन्दी सीखने में विशेष दिक्कतों का सामना नहीं करना पड़ेगा।

अतः तत्कालीन परिदृश्य में हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि ५० से भी अधिक वर्षों के बाद स्वतंत्र भारत में हिन्दी राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं पा सकेगी और उसके साथ इस तरह की उपेक्षा की जाएगी।

अतः हमारी विचारोत्तेजना की मुख्य प्रेरणा यही है कि वे क्या कारण रहे जिनके चलते, एक देशी भाषा, एक जनसामान्य की भाषा, एक सर्वाधिक प्रयुक्त भाषा, एक राष्ट्रीय अस्मिता की प्रतीक भाषा, तमाम सरकारी तामझाम और सरकारी प्रयासों के बावजूद राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं पा सकी।

इन्हीं विचारों के क्रम में तथ्यों को तर्क की कसौटी पर कसने पर निम्न प्रमुख कारण राष्ट्रभाषा हिन्दी की प्रगति धीमी होने में प्रतीत होते हैं:–

(१) हिन्दी को कमजोर मानने की गुलामी मानसिकता

यद्यपि हिन्दी भारत में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। २०० वर्षों की गुलामी और अंग्रेजी प्रभुत्त्व के चलते हम हिन्दी को कमजोर मानने की गुलामी मानसिकता से उबर नहीं पाये। विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में अंग्रेजी के प्रभुत्व के कारण अंग्रेजी को विकास के लिये आवश्यक मानते रहे और अंग्रेजी को हिन्दी से प्रतिस्थापित नहीं कर पाए।

(२) नौकरशाही में हिन्दी लागू करने की इच्छा शक्ति का अभाव

जब भारत स्वतंत्र हुआ तब की भारतीय नौकरशाही पूर्णतः अंग्रेजी परिवेश में पली–बढ़ी हुई थी। उसके तौर–तरीके पूर्णतः अंग्रेजियत के थे,

इसके अतिरिक्त मुख्य बात यह भी थी कि वे अंग्रेजी को हिन्दी से श्रेष्ठ मानते थे एवं हिन्दी को अपनाकर अपनी बरसों से जमी कार्य पद्धतियों में परिवर्तन करना नहीं चाहते थे। अतः विधि, नियमों के प्रारूपण में उन्होंने ऐसी खामियां रखीं जिनके चलते हिन्दी के प्रयोग का दिखावा भी होता रहे, साथ ही उनके द्वारा अंग्रेजी प्रयोग के रास्ते भी खुले रहें। इसी कारण उन्होंने तत्कालीन नेताओं को अंग्रेजी का पूर्णरूपेण हिन्दी से प्रतिस्थापित करने पर व्यवस्था में संकट आने का भय दिखा कर अंग्रेजी को हिन्दी की सहभाषा के रूप में मान्यता देने के लिये राजी कर लिया और इसी अंग्रेजी की बैसाखी के सहारे चलते रहे। उनके उत्तराधिकारी भी उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करते रहे।

(३) अंग्रेजी को हिन्दी की सह राजभाषा का दर्जा दिया जाना

हिन्दी की प्रगति धीमी होने का एक प्रमुख कारण अंग्रेजी को हिन्दी की सह राजभाषा का दर्जा दिया जाना भी है। इसीके चलते यद्यपि हिन्दी राष्ट्रभाषा है, लेकिन प्रत्येक नागरिक हिन्दी या अंग्रेजी दोनों में से किसी भी भाषा का उपायोग करने के लिये पूर्ण स्वतंत्र है। यदि आज ही अंग्रेजी को हिन्दी की सहभाषा होने का दर्जा खत्म कर दिया जाय और हिन्दी को अनिवार्य कर दिया जाय तो हिन्दी पूर्णरूपेण लागू हो जायेगी। विश्व में इस तरह के कई उदाहरण हैं जबकि राष्ट्रों ने बरसों से चल रही अंग्रेजी को त्याग कर क्षेत्रीय भाषाओं को अपनाया और विकास के पथ पर अग्रसर हुए।

(४) नागरिकों में हिन्दी लागू करने की दृढ़ इच्छा शक्ति का अभाव

भारतीय स्वतंत्रता के समय जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया गया था उस समय हमारे राजनेताओं, नागरिकों में जो भावना और उत्साह था वह पीढ़ी दर पीढ़ी ठंडा होता गया और वे प्रबल भावनाएँ जो समुद्र के ज्वार की तरह उफान पर आयी थीं, समय बीतते भाटे की तरह उतर गईं। वे भावनाएँ समय के साथ तिरोहित होकर अतीत बन गईं। इन भावनाओं को नवचेतना, स्फूर्ति और प्रगति लाने का कोई ठोस कार्यक्रम न तो बनाया गया ना ही अमल में लाया गया।

(५) सरकारी अमलों द्वारा फर्जी आंकड़ों का प्रस्तुतिकरण

हिन्दी की प्रगति धीमी होने में फर्जी आंकड़ों के प्रस्तुतिकरण का भी प्रमुख कारण है। आज हिन्दी भाषी क्षेत्रों में पूर्ण कार्य हिन्दी में किये जाने के वार्षिक कार्यक्रम एवं लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। तद्नुसार सरकारी कार्यालयों द्वारा शत–प्रतिशत कार्य करना फर्जी तौर पर दर्शाया गया है। इन रिपोर्टों के आधार पर उच्च पदासीन नेता/अधिकारी संतुष्ट हैं कि शत–प्रतिशत कार्य हिन्दी में हो रहा है जबकि वास्तविकता ऐसी नहीं है। यदि इसके स्थान पर सरकारी अमलों द्वारा वास्तविक आंकड़े प्रस्तुत किये जाएं और पूर्ण कार्य हिन्दी में न किये जाने की वास्तविक कठिनाइयां बतायी जायें तो इन कठिनाइयों पर विचार कर कोई हल निकाला जा सकता है जिससे हिन्दी की प्रगति सुनिश्चित हो।

(६) उच्च शिक्षा, विज्ञान-तकनीकी संबंधी सामग्री हिन्दी माध्यम में उपलब्ध न होना

उच्च शिक्षा विशेषतया विज्ञान–तकनीकी क्षेत्र में हिन्दी माध्यम में उपलब्ध नहीं है। जिसके कारण जनसामान्य जो उज्ज्वल भविष्य की महत्वाकांक्षा रखता है हिन्दी का प्रयोग करने से कतराता है क्योंकि अंग्रेजी सीखना उसकी मजबूरी है, जिसके बिना वह उच्च स्तर पर नहीं पहुंच सकता। अतः वह चाह कर भी हिन्दी नहीं अपना सकता।

(७) सरकारी मैनुअल, विधि पुस्तकें हिन्दी में उपलब्ध न होना

सरकारी कर्मचारियों का एक बहुत बड़ा हिस्सा

अपना कार्य हिन्दी माध्यम में करना चाहता है जो कि उसके लिये सर्वाधिक आसान है लेकिन सरकारी मैनुअल, विधि पुस्तकों का हिन्दी में उपलब्ध न होना, उसके मार्ग की सबसे बड़ी रुकावट है, जिसके चलते वह हिन्दी का प्रयोग करने से कतराता है।

(८) उच्च सरकारी पदों की भर्ती परीक्षाओं का केवल अंग्रेजी माध्यम में आयोजित होना

स्वतंत्रता के ५४ वर्षों के बाद भी कई उच्च सरकारी परीक्षाएं जैसे भारतीय वन सेवा परीक्षा, सम्मिलित रक्षा सेवा परीक्षा, सम्मिलित चिकित्सा सेवा परीक्षा, भारतीय आर्थिक एवं सांख्यिकी सेवा परीक्षा, इंजीनियरी सेवा परीक्षा, संघ लोक सेवा आयोग द्वारा केवल अंग्रेजी माध्यम में आयोजित की जाती हैं एवं इनके उत्तर भी अंग्रेजी में ही देने होते हैं । अतः देश का युवा वर्ग जो इन सेवाओं में अपने सुनहरे भविष्य के सपने देखता है, अपने उज्ज्वल भविष्य की खातिर अंग्रेजी माध्यम अपनाने को मजबूर हो जाता है।

उपर्युक्त कारणों के विश्लेषण से हिन्दी के प्रयोग की प्रगति के धीमे होने के कारणों को मोटे तौर पर तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। (१) आधारभूत सामग्री की कमी संबंधी कारण (२) कानूनी कमियों बाबत कारण और (३) मानसिकता संबंधी कारण

इनमें से आधारभूत सामग्री की कमी का निदान तो इन क्षेत्रों से सम्बन्धित सामग्रियों को त्वरित रूप से हिन्दी में अनूदित करवा कर ही किया जा सकता है। जैसे उच्च शिक्षा विज्ञान तकनीकी, सरकारी कोडों, मेनुअलों विधि ग्रंथों को हिन्दी में अनूदित करवाने के ठोस एवं प्रभावी कार्यक्रम बनाकर तत्परता से कार्यान्वित किये जायें। कानूनी कमियां दूर करने हेतु अंग्रेजी को सहभाषा का दर्जा तत्काल समाप्त किया जाना चाहिए। मानसिकता सम्बन्धित कारणों के निदान हेतु लोगों को जागृत करना आवश्यक है, ऐसे ठोस उपाय किये जाने आवश्यक हैं जिनसे उनके दिलों में हिन्दी की वह पुरानी छवि अंकित हो सके जिसने अंग्रेजों के विरूद्ध कठिनतम संघर्ष की उन्हें प्रेरणा दी थी।

आजादी के ५४ वर्षों के पश्चात् आज हम उस जगह खड़े हैं जहाँ आत्मचिंतन आवश्यक है कि क्या हमने इन ५४ वर्षों में उन मूल्यों, सिद्धान्तों, भावनाओं को संजोकर रखा है जिन्होंने आजादी के संघर्ष को प्रेरित किया था। यदि वे मूल्य, सिद्धान्त, भावनाएँ तिरोहित हो चुकी हैं, तो हमें अपने गौरवशाली अतीत पर गर्व करने का कोई कारण नहीं है। यदि विकास की अंधी दौड़ में हम उन मूल्यों, सिद्धान्तों, भावनाओं से दूर हो रहे हैं, तो हमें चेतना होगा, तभी हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी सही अर्थों में राष्ट्रभाषा का दर्जा पा सकेगी।

–साभार – राज तंरगिणी

–पृष्ठ ८० का शेषांश

जिन प्रदेशों ने अपने प्रदेश की भाषा को महत्ता प्रदान की थी, उन्हें भी अंग्रेजी की मांग स्वीकार करनी पड़ी। इस मानसिकता से आज देश में राष्ट्रीयता का विकास नहीं हो रहा है। भौतिकता की दौड़ में नेक–विवेक सभी लुप्त होते जा रहे हैं। अंग्रेजी के माध्यम से अधकचरा ज्ञान अपनी भाषा के स्वरूप को भी विकृत कर रहा है। न उन्हें अंग्रेजी भाषा का सही ज्ञान है और न अपनी भाषा का।

हमारे देश की संस्कृति, सभ्यता और ज्ञान–विज्ञान, जो हमारे संस्कृत तथा भाषायी ग्रंथों में सुरक्षित है, जो हमारी धरोहर है, उनसे हटकर अंग्रेजी के माध्यम से प्राप्त ज्ञान से हम चमत्कृत होते हैं, जबकि हम अपने देशज ज्ञान से अनभिज्ञ रह जाते हैं। आज आवश्यकता है कि अपने देश की बौद्धिक धरोहर और विरासत को पहचानें और उसे जन–जन तक पहुँचाएँ तभी देश में सौहार्द उत्पन्न होगा और समृद्धि आयेगी।

''भारतीय-वाङ्मय''-जून-जुलाई-२००२

हर सिंगार

राजस्थानी का जनून

✍ भगवतीप्रसाद देवपुरा

राजस्थान देश का हिन्दी प्रदेश है। यहाँ के निवासी वीरता में ही अग्रणी नहीं हैं–देश की आर्थिक, सामाजिक, नैतिक उन्नति में भी अग्रगण्य हैं। अनेक रियासतों को मिला कर राजस्थान प्रदेश बना है प्रत्येक रियासत की अपनी विशेषता के साथ ही अपनी भाषा और बोली भी थी। जब सभी रियासतों का एकीकरण हुआ तो निश्चित ही तत्कालीन सभी रियासतों ने अपनी–अपनी विशेषताओं और भाषा–बोली को नवनिर्मित राजस्थान प्रदेश में विलीन कर दिया। हिन्दी पूरे प्रदेश की भाषा बनी और विगत ५५ वर्षों में राजस्थानी साहित्यकारों ने अपने पूर्ण प्रयत्न से हिन्दी को राजस्थान में स्थापित ही नहीं की अपितु उसके समुचित विकास के लिए प्रयत्न भी किये।

यह कहना उचित होगा कि तत्कालीन सम्पूर्ण रियासतों में वहाँ की भाषा–बोली के साथ उर्दू–फारसी का पूर्ण आधिपत्य था–अँग्रेजी भी राजकीय भाषा के रूप में हावी थी। गत वर्षों में सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्रों से उर्दू–फारसी तथा क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव कम हुआ, उनका स्थान शनैःशनैः हिन्दी ने ले लिया। रही अँग्रेजी–उसके लिए भी पूरे प्रदेश में विरोध के स्वर उठ रहे हैं, हमारे यहाँ तो हम गत ५० वर्षों से 'अँग्रेजी हटाओ आन्दोलन' में लगे हुए हैं। हिन्दी सेवियों के अथक प्रयत्नों से, लगता था कि वह दिन समीप है जब राजस्थान में हिन्दी पूर्ण प्रतिष्ठित हो जाती। इसी बीच कुछ लोगों पर राजस्थानी का जनून चढ़ बैठा। वे यह कहने लगे कि "राजस्थान की राजभाषा राजस्थानी है, हिन्दी नहीं। हिन्दी ने राजस्थानी की जड़े खोद रखी हैं।"

राजस्थानी के इस जनून में राजनीतिबाज तो हैं ही, राजस्थान के वे पूँजीपति और उद्योगपति भी शामिल हैं जो कोलकाता में बैठे हुए यह षड़यन्त्र रचने में संलिप्त हैं। राजस्थान को बिखेरने में उनके अपने स्वार्थ हैं। अगर उनके स्वार्थ सिद्ध हुए तो उनके उद्योग तो बढ़ेंगे ही राजस्थान के विभाजित होने पर कई मंत्रिमण्डल बन जायेंगे जिससे उन्हें अपनी अर्थसिद्धि करने में सफलता प्राप्त होगी।

किन्तु यह निश्चित है कि राजस्थान के सभी भागों के निवासी राजस्थानी के पक्ष में नहीं हैं। जो पक्ष में हैं उनकी संख्या भी मात्र ४ प्रतिशत है। इन चार प्रतिशत में भी जोधपुर के वे लोग हैं जो मारवाड़ी कहलाते हैं और मारवाड़ी को ही राजस्थानी के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। किन्तु उन्हें यह मानना ही होगा कि मारवाड़ी राजस्थानी नहीं मानी जा सकती। मारवाड़ी केवल तत्कालीन जोधपुर रियासत की राजभाषा थी जो एकीकरण के समय हिन्दी में विलीन हो गई। उसके पश्चात् जोधपुर ने हिन्दी के विकास के लिए अथक प्रयत्न किये हैं। प्रजा सेवक, जलतेदीप आदि पत्रों ने हिन्दी का बहुमुखी विकास किया है। वर्तमान में कुछ लोगों को मारवाड़ी का जनून चढ़ा है किन्तु उन्हें यह ध्यान रखना ही होगा कि राजस्थान के पूर्वी भाग में ब्रजभाषा का आधिपत्य है। उत्तर में पंजाबी, दक्षिण में मेवाड़ी–बागड़ी–गुजराती, दक्षिण–पूर्व में हाड़ौती आदि पूर्ण विकसित भाषा–बोलियाँ हैं जिन्हें मारवाड़ी की भेंट नहीं चढ़ाया जा सकता। अतः अच्छा तो यही है कि हम लोग ऐसे लोगों से सावधान रहें जो हिन्दी का अहित करते हुए मारवाड़ी थोप कर राजस्थान का विभाजन चाहते हैं। यों भी 'मारवाड़ी माने राजस्थानी पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि–

१. मारवाड़ी का प्रचलन केवल जोधपुर तक ही सीमित है।
२. बीकानेरी में भी वहाँ की भाषा पर पंजाबी का प्रभाव है।

३. मेवाड़ में मेवाड़ी और डूंगरपुर–बाँसवाड़ा में बागड़ी तथा उस पर गुजराती प्रभाव है।
४. कोटा, बूँदी, झालरापाटन में हाड़ौती का स्पष्ट प्रभाव है।
५. भरतपुर, अलवर, धौलपुर, करोली ब्रजभाषी क्षेत्र हैं।
६. राजस्थान में कोई समाचार–पत्र इस कथित राजस्थानी (मारवाड़ी) में नहीं निकलता। पूरे राजस्थान के घरों, दूकानों, होटलों, कार्यालयों में हिन्दी के समाचार पत्र पढ़े जाते हैं।
इस मारवाड़ी में एक पत्रिका का प्रकाशन भी हुआ था जिसका नाम माणक था, उसे राजस्थान में कितनों ने अपनाया ? 'वाणी और 'वातांरीफुलवाड़ी' की भी यही दशा हुई।
७. राजस्थान के सिनेमाघरों में प्रायः सभी फिल्में हिन्दी में ही दिखाई जाती हैं। कतिपय राजस्थानी फिल्में बनी भी किन्तु उन्हें भी क्षेत्र विशेष ने ही देखना पसन्द किया।
८. हिन्दी के कोष से ही शब्द लेकर राजस्थानी कोष बनाने की कुचेष्टा की गई है। 'डिंगल हिन्दी की ही एक शैली है, उसे मारवाड़ी मानना उचित नहीं माना जा सकता। उसका सम्पूर्ण साहित्य–हिन्दी साहित्य का प्रथम काल–वीरगाथा काल के नाम से विख्यात है।
९. कोलकाता से प्रकाशित 'नैणसी' में हिन्दी क्षेत्र को 'हिन्दी का नरक' लिखा जाता है और उसके साहित्यकारों, विशेषरूप से श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट और डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी को राजस्थान में विदेशी कहा जाता है तथा उन पर अनर्गल आरोप लगा कर कलंकित किया जाता है। क्या ऐसा करने से कोई राजस्थानी भाषा बनेगी भी।
१०. 'वीर सतसई', बेलिक्रिसनरूक्मणी री', 'ढोला–मारू' जैसे ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद होने से ही उनकी वास्तविक प्रसिद्धि हुई है। यदि मारवाड़ी में इनका उल्था होता तो देश में इन ग्रंथों की महत्ता स्थापित नहीं हो सकती थी।

हालांकि मारवाड़ी लॉबी बड़ी जोर–शोर से मारवाड़ी को राजस्थानी के रूप में थोपने की कुचेष्टा कर रही है किन्तु इस प्रदेश के निवासी उन्हें सफल नहीं होने देंगे। प्रदेश की भाषा हिन्दी है, हिन्दी रहेगी।

इसी में प्रदेश का हित है, देश का हित है और राष्ट्रभाषा हिन्दी का हित है।

- प्रधानमंत्री, साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलनः कई प्रस्ताव पारित

श्रीनाथद्वारा। 'साहित्य मण्डल' द्वारा अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन के अवसर पर साहित्य मण्डल प्रेक्षागार में कई प्रस्ताव पारित कर भारत सरकार एवं राज्य सरकारों को प्रेषित किये गये। इन प्रस्तावों में केन्द्रीय परीक्षाओं के माध्यम से अंग्रेजी को हटाया जाना, केन्द्रीय सरकार सभी राज्य सरकारों से उनकी भाषायें या हिन्दी में ही पत्र व्यवहार करे, देश के बच्चों पर अनावश्यक रूप से अंग्रेजी नहीं लादी जाए, केन्द्रीय सरकार देश में गृह मंत्रालय के अर्न्तगत संचालित राष्ट्रभाषा विभाग समाप्त करे, अनुवादकों द्वारा जो अनुवाद हो रहे हैं वह भी हिन्दी को जनता से दूर करने का षडयंत्र है, अतः ऐसा अनुवाद बंद किया जाये, राज्यों पर प्रतिबन्ध लगाया जाए कि वे अपने राज्यों में पहली से पांचवीं कक्षा तक अपने बच्चों पर अंग्रेजी न लादें एवं पब्लिक स्कूलों पर पाबन्दी लगाई जानी सम्मिलित है।

साहित्य-मण्डल के प्रधानमंत्री श्री भगवती प्रसाद देवपुरा द्वारा जारी विज्ञप्ति के अनुसार इस अवसर पर श्री नाथद्वारा के कई वरिष्ठ नागरिक एवं विद्वतगण उपस्थित थे।

हर सिंगार

माँ

'माँ' शब्द में निहित सौन्दर्य का कवियों और दार्शनिकों ने सदैव गुणगान किया है। बच्चा सब से पहले 'माँ' शब्द सीखता है और बड़ा व्यक्ति दुःख में स्वभावतः माँ को ही याद करता है।

अपनी सुन्दर भाषा में हम 'माँ' शब्द को अधिक सम्मान का स्थान प्रदान करते हैं। क्योंकि हम पिता के नाम से पहले माता के नाम का उच्चारण करते हैं।

कहा जाता है कि 'जो हाथ पालने को चलाता है वही हाथ संसार को चलाता है।' यह कहावत बड़ी सच्ची है। संसार के सभी महान् व्यक्ति किसी समय छोटे बच्चे थे और उनकी माताओं ने उनका पालन–पोषण वैसे ही किया होगा जैसा अन्य माताएँ अपने बच्चों का करती हैं।

बच्चे का चरित्र–निर्माण औरों की अपेक्षा माता से अधिक सम्बन्धित है। विचारों की उदारता और सद्व्यवहार इत्यादि बहुत से गुण और विशेषताएँ माता के चरित्र से बच्चों में आते हैं। बच्चे का सब से प्रथम शिक्षण माता की गोद में होता है।

स्कूल जाने पर भी सुमाता का अपने बच्चों पर नियन्त्रण होता है और चरित्र–निर्माण का कार्य घर पर जारी रहता है। अध्यापक तो प्रायः बच्चे को पुस्तकीय ज्ञान देता है, परन्तु माता अपने अनुभव से उत्पन्न हुआ बहुत–सा ज्ञान दे सकती है। संसार के बहुत से महान् पुरुषों ने इस बात को और अपनी माताओं के प्रभाव को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है।

इतिहासकार हमें बताते हैं कि स्त्रियों ने जिनमें कई माताएँ भी थीं, बहुत प्राचीन काल से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना महत्त्व स्थापित किया था। स्त्रियों को सेनाओं का संचालन करते हुए तत्त्व ज्ञान और अध्यात्म ज्ञान पर आश्चर्य में डालने वाली व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हुए पढ़ते हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि स्त्रियों ने केवल पारिवारिक जीवन में सफलता प्राप्त की थी।

मातृभाषा में शिक्षा का दिया जाना अन्य भाषाओं के शिक्षण से कहीं अधिक आवश्यक है। यह अभिप्राय नहीं है कि अंग्रेजी की अवहेलना की जाय। अपने बच्चों को हिन्दी–भाषा द्वारा शिक्षण पर बल देना चाहिए।

श्री स्व. गोखले 'स्त्री–शिक्षा' के विषय पर कहते हैं–शिक्षा, ज्ञानमय स्वाधीनता और समाज में सम्मानित स्थान–पर्दा और अज्ञान नहीं, हिन्दू देवियों की वास्तविक बपौती है।

-'वेद प्रकाश' के सम्पादकीय से साभार

हिन्दी और महादेवी

(भारतीय वाङ.मय की प्राण शक्ति, महीयसी महादेवी वर्मा स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान की जीवन्त मशाल थी। राष्ट्रभाषा हिन्दी के पक्ष में स्वतन्त्रता एवं स्वाभिमान की पुजारिन महादेवी जी के उद्‌गार पाठकों के लिये प्रस्तुत हैं।) सं.

संस्कृति तब तक गूँगी रहती है, जब तक राष्ट्र की अपनी वाणी नहीं होती। राजनैतिक पराधीनता की हमारी हथकड़ी–बेड़ी जरूर कटी हैं, किन्तु अंग्रेजी और अंग्रेजियत के रूप में हमारे मनोजगत में जो दासता के चिह्न विद्यमान हैं, उन्होंने हमें निष्क्रिय बना रखा है। भाषा परिधान मात्र नहीं, राष्ट्र का व्यक्तित्व है। हमारे बहुभाषी देश के ही समान रूस भी बहुभाषी देश है, जिसमें ४२ भाषाएँ बोली जाती हैं किन्तु उनकी राष्ट्रभाषा रूसी है। हमारी संस्कृति के गोमुख से निकली हुई सब भारतीय भाषाएँ हमारी हैं किन्तु उनमें अपनी व्यापकता, आरम्भ से ही जनविद्रोह और जनसंघर्ष को वाणी देते रहने के कारण एवं जीवन के हर क्षेत्र को सँभालने में समर्थ होने के कारण हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। केवल संविधान में लिख देने मात्र से यह बात पूरी नहीं हो पाती इसे राष्ट्र के जीवन में प्रतिष्ठित करना होगा, अन्यथा स्वतन्त्रता का क्या मूल्य है? विश्व चेतना जगाने के पहले देश में राष्ट्रभाषा की चेतना जगाएँ।

❒ भारत को चाहिए जीवन–मूल्य, चरित्र, देश प्रेम एवं भाषा प्रेम। इनके बिना कोई राष्ट्र कैसे महान बन सकता है ?देखिए न, हमारी राष्ट्रभाषा की कितनी दुर्दशा की जा रही है? राष्ट्रीय अस्मिता, साम्प्रदायिक सामंजस्य, भारतीय संविधान के प्रति निष्ठा रखने वाले सभी व्यक्तियों से हम अपेक्षा रखते हैं कि हिन्दी को गरिमा च्युत करने वाले कुचक्र के विरोध में अपनी आवाज बुलन्द करें। इस प्रकार के षडयन्त्र से देश का विभाजन करने वाली अलगाववादी प्रवृत्तियों को पुनः बल मिलेगा।

स्वाधीनता के ४० वर्ष बाद भी भारतीयों में दासता के संस्कार मिटे नहीं और अंग्रेजी का मोह इसी दासता का प्रमाण है।

❒ राष्ट्र की अनेक समस्याओं के बीच वाणी की समस्या भी मुख्य है, क्योंकि राष्ट्र को जोड़े रखने के लिये वाणी भी आवश्यक है। राष्ट्र को जैसे अपनी भूमि, अपना ध्वज अपना आदर्श वाक्य चाहिए वैसे ही उसके लिये अपनी वाणी भी आवश्यक है। वाणी के बिना मौलिक विचार तथा राष्ट्र की प्रतिभा कुंठित हो जाती है।

❒ अन्तर्राष्ट्रीय होने से पूर्व हमें राष्ट्रीय होना चाहिए, विश्व में मैत्री सम्बन्ध जोड़ने से पूर्व हमें देख लेना चाहिए कि कहीं घर में अपरिचय के काले बादल तथा अशान्ति की घोर बिजली तो नहीं कड़क रही है।

राजभाषा विकास विवरण

हर सिंगार

गाजियाबाद में सम्पन्न तृतीय राजभाषा विकास सम्मेलन

यू.एस.एम. पत्रिका एवं अखिल भारतीय राजभाषा संगठन के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक २८ अप्रेल २००२ को आयोजित एक दिवसीय 'तृतीय राजभाषा विकास सम्मेलन गाजियाबाद स्थित हिन्दी भवन में सम्पन्न हुआ। इसका उद्घाटन नगर प्रमुख श्री दिनेशचन्द्र गर्ग, मेरठ वि.वि. के पूर्व कुलपति डॉ. आर. बी. एल. गोस्वामी एवं प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. जे. एल. रैना ने किया।

संयोजक एवं यू.एस.एम. पत्रिका के सम्पादक डॉ. उमाशंकर मिश्र ने विषय का प्रवर्तन करते हुए कहा कि इस सम्मेलन का मुख्य विषय 'राजभाषा हिन्दी : कथ्य और तथ्य' इसलिए निर्धारित किया गया है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में ऊपर से नीचे तक कथनी और करनी में कोई साम्य नहीं दिखाई दे रहा है। हिन्दी भाषी राज्यों में आज तक अंग्रेजी में शासन के समस्त कार्य करना और हिन्दी के प्रति घोर उपेक्षा एवं हीन दृष्टि से देखना जारी है जो अंग्रेजी की मानसिक गुलामी का प्रतीक है। आज दिल्ली सहित उत्तर प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में पत्र–व्यवहार की भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग ही किया जा रहा है – ऐसा क्यों ?

हिन्दी भाषा एक सक्षम भाषा है जो सूचना विज्ञान के इस युग में उभर कर सामने आई है। यहाँ तक कि कम्प्यूटर शिक्षा की पुस्तकें भी हिन्दी में उपलब्ध हैं। इसने सिद्ध किया है कि यह भ्रामक प्रचार अब बन्द होना चाहिए कि सूचना विज्ञान की बारीकियां समझना हिन्दी भाषा से सम्भव नहीं है।

सन् १९७५ में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने गृह मन्त्रालय के अधीन राजभाषा विभाग की स्थापना की जिसका उद्देश्य था राजकीय विभागों, बैंकों एवं सार्वजनिक उपक्रमों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग को बढ़ावा देना। किन्तु करोड़ों रूपयों के सरकारी धन के अपव्यय के अतिरिक्त इसका कोई सार्थक परिणाम आज तक नहीं मिल पाया। राजभाषा विषयक गठित संसदीय समिति सहित सभी समितियाँ इस देश की जनता के गाढ़े खून की कमाई को उदरस्थ करने वाली बन कर रह गई हैं और देश पर निरर्थक भार सिद्ध हो रही हैं।

राजस्थान से आए श्री भरत मिश्र प्राची ने कहा कि हिन्दी हमारे घर–आंगन की भाषा है। हमारे कविवर प्रधानमंत्री और हिन्दी के प्रबल समर्थक श्री अटल बिहारी वाजपेयी भी अब इस भाषा के प्रति अपनी पूर्व संवेदनशीलता को त्यागने को बाध्य दिखाई दे रहे हैं।

गीतकार ब्रजेश भट्ट ने गाजियाबाद में हिन्दी के नाम पर जीवनयापन करने वालों पर कटाक्ष करते हुए इस सम्मेलन में उनकी उपस्थिति नगण्य रहने पर खेद व्यक्त किया और कहा कि ऐसे हिन्दी सेवी जिनकी कथनी करनी में व्यवहारगत भेद स्पष्ट है, कैसे इस राष्ट्रभाषा हिन्दी का भला कर सकेंगे?

डॉ. रत्न प्रकाश ने कहा कि हिन्दी को अनुवाद की भाषा बना दिया गया है जो दुर्भाग्यपूर्ण है। डॉ. जे.एल. रैना ने कहा कि पहले इंगलैण्ड में अंग्रेजी की जो स्थिति थी वही आज भारत में हिन्दी की बना दी गई है।

चैन्नई के श्री बधवा ने बताया कि आज दक्षिण भारत में हिन्दी सीखने एवं पढ़ने वालों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। वे यह मानने लगे हैं कि उत्तरी भारत में रोजगार के लिए हिन्दी का ज्ञान आवश्यक है।

सत्र के मुख्य अतिथि डॉ. आर. बी. एल. गोस्वामी ने कहा कि हिन्दी को हीनदृष्टि से देखना हमारी

हर सिंगार

कुण्ठित मानसिकता को दर्शाता है। लोग अंग्रेजी में बातचीत करके अपने आपको विद्वान् समझते हैं। भाषा केवल संवाद का माध्यम ही नहीं यह हमारे संस्कार की अभिव्यक्ति भी है। हमें सोचना होगा कि हम अपनी भावी पीढ़ी को कैसे संस्कार देना चाहते हैं। आज हिन्दी भाषा एक समर्थ एवं सक्षम भाषा है तथा इसने रोजगार के अनेक क्षेत्र उपलब्ध कराये हैं।

सम्मलेन के दूसरे सत्र में वैज्ञानिक औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी डॉ. पूरनपाल ने बताया कि सरकारी विभागों और सार्वजनिक उपक्रमों में कार्यरत हिन्दी अधिकारियों की जवाबदेही सीधे वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी से होती है। प्रशासनिक अधिकारी प्रायः अंग्रेजी को ही महत्त्व देते हैं – अतः इन विभागों में हिन्दी अधिकारियों की योजनाओं की उपेक्षा की जाती है। हिन्दी का प्रयोग इन विभागों में केवल दिखावे का ही रह गया है। इस स्थिति को बदलने के लिए इन विभागों में कार्यरत हिन्दी अधिकारियों को स्वेच्छा से मौलिक कार्य करने की छूट दी जानी चाहिए।

भारत कृषक समाज के डॉ. कृष्णवीर चौधरी ने कहा कि हम यदि ऊपर से नीचे तक की यात्रा करेंगे तो वह अत्यन्त सहज रूप से की जा सकेगी, किन्तु यदि नीचे से ऊपर की ओर जाना पड़े तो यह सफर अत्यन्त कठिन होता है। हिन्दी के विकास में भी यही स्थिति हो रही है। इस बारे में पं. उमाशंकर मिश्र एवं यू. एस.एम. पत्रिका जो कार्य कर रही है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

मुख्य अतिथि पद्म श्री डॉ. श्याम सिंह 'शशि' ने डॉ. उमाशंकर मिश्र के हिन्दी प्रसार सम्बन्धी प्रयासों एवं उनकी साहित्य–संस्कृति की जगाई जा रही अलख के लिए उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा की और कहा कि इनके इन प्रयासों से यह नगर आज देश–विदेश में विशेष ख्याति प्राप्त कर रहा है। यदि डॉ. मिश्र की तरह के सार्थक प्रयास ऊपर की ओर से किए जाते तो ऐसे राष्ट्रभाषा विकास सम्मेलन आयोजित करने की आवश्यकता ही नहीं होती। राष्ट्रभाषा की इस दशा के पूर्णतः जिम्मेदार हमारे नेता हैं।

प्रसिद्ध शिक्षाविद् डॉ. रत्नाकर पाण्डेय ने राष्ट्रभाषा की वर्तमान दुर्दशा के लिए अंग्रेजी परस्तों की दकियानूसी विचारधारा को जिम्मेदार बताते हुए कहा कि हिन्दी तो हमारे रक्त की भाषा है। यह भाषा किसी बैसाखी की मुखापेक्षी नहीं है।

इस अधिवेशन के सभी वक्ताओं के संयुक्त उद्गार हैं – 'पूरी दुनिया में भारत ही एक ऐसा देश है जिसकी अपनी कोई राष्ट्रभाषा नहीं है। राजनेताओं के छल–कपट के कारण स्वाधीनता के पश्चात् हिन्दी को राष्ट्रभाषा का वांछित सम्मान नहीं मिल पाया है। यह राज–काज की भाषा नहीं बनाई जा सकी है। आज देश में हर विषय की उत्तमोत्तम पुस्तकें हिन्दी में उपलब्ध हैं जो हमारे अधुनातन जीवन को सुसंचालित सुशिक्षित करने में पूर्णतः सक्षम है। कमी है तो बस मानसिकता में बदलाव की एवं दृढ़ संकल्प शक्ति की।'

इसी अवसर पर अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रभाषा पत्रिकाओं में से निम्न की सराहना करते हुए सम्मानित किया गया और प्रशस्ति पत्र प्रदान किए गए – (१) ग्रिड दर्पण (पावर ग्रिड कारपोरेशन, नई दिल्ली) प्रथम, (२) बैंक परिवार – (स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर) द्वितीय एवं (३) दक्षिण – दर्पण (पंजाब नेशनल बैंक – चैन्नई) तृतीय।

प्रति वर्ष की भाँति इस सम्मेलन में भी निम्नांकित हिन्दी सेवियों को सम्मानित करते हुए प्रशस्ति–पत्र, स्मृति चिन्ह एवं पुस्तकें भेंट की – 'राजभाषा रत्न' सम्मान आई. एफ. सी. आई के महाप्रबन्धक श्री रामगोपाल निर्मल को प्रदान किया गया।

सम्मेलन का सत्रों के संचालन डॉ. उमाशंकर मिश्र ने बड़े प्रशंसनीय ढंग से किया। सह संयोजन श्री के. पी. यादव ने सभी आगन्तुक महानुभावों के प्रति आभार प्रकट किया।

–श्यामप्रकाश देवपुरा,
साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

राजभाषा विकास विवरण

हर सिंगार

राष्ट्रीय हिन्दी सेवी महासंघ, इन्दौर

हिन्दी राजनेताओं की मोहताज नहीं है : प्रो. त्रिपाठी

"हमे गंभीरता से सोचना होगा, आजादी के ५५ सालों के बाद भी हिन्दी को वह पद नहीं मिला जिसकी वह हकदार है। इसके लिये स्वयंसेवी संस्थाओं को आगे आना होगा। हिन्दी किसी राजनेता की मोहताज नहीं है। दक्षिण के लोगों ने हिन्दी को बहुत परिश्रम से सीखा है, एक दिन आएगा जब दक्षिण के लोग, उत्तर के लोगों को सही हिन्दी सिखाएँगे। हमारा प्रयास हो कि हम शुद्ध हिन्दी लिखें और शुद्ध हिन्दी बोलें। हिन्दुस्तान के लोग, अंग्रेजों से ज्यादा अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं। भाषा में अधिक शुद्धता की चिन्ता न करें। अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को हिन्दी में बेझिझक प्रयोग करें इससे हिन्दी समृद्ध होगी।"

उपर्युक्त उद्गार सुप्रसिद्ध चिन्तक प्रो. गणेशदत्त त्रिपाठी जी ने राष्ट्रीय हिन्दी सेवी महासंघ के आठवें प्रकाशन का लोकार्पण करते हुए समारोह के अध्यक्ष पद से व्यक्त किये।

विशिष्ट अतिथि के रूप में मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति के प्रधानमंत्री प्रो. वेंकटाचार्य स्वामी तथा आकाशवाणी की केन्द्र निदेशक श्रीमती गीता मरकाम ने अपने विचार व्यक्त किये।

चर्चाकार के रूप में डॉ. योगेन्द्रनाथ शुक्ल और डॉ. शोभना जोशी के महासंघ के आठवें प्रकाशन पर अपनी समीक्षात्मक टिप्पणी प्रस्तुत की।

महासंघ की राष्ट्रीय उपाध्यक्ष प्रो. बी.वै. ललिताम्बाजी ने विषय प्रवर्तन किया। राष्ट्रीय संयोजन व "हिन्दी सेवी" प्रकाशन के संपादक राज केसरवानी ने महासंघ की गतिविधियों की जानकारी दी। श्री इस्माइल खान और श्री प्रमोदकुमार राजपूत ने भी अपने विचार व्यक्त किए। लोकार्पण पर सभी को प्रकाशन की प्रतियां वितरित की गई। प्रारंभ में अतिथियों ने वाग्देवी प्रतिमा पर माल्यार्पण किया। सर्वश्री डॉ. प्रतिभा सोलंकी, डॉ. माया चौधरी, राज केसरवानी, डॉ. रवीन्द्र पहलवान, चन्द्रकिरण गुप्ता, प्रदीप नवीन ने अतिथियों का स्वागत किया।

समारोह की कार्यवाही का संचालन संयोजन प्रो. डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव ने किया तथा सचिव डॉ. रवीन्द्र पहलवान ने आभार व्यक्त किया।

–राज केसरवानी, राष्ट्रीय संयोजक

सागर में छठे अ.भा. अम्बिकाप्रसाद दिव्य स्मृति प्रतिष्ठा पुरस्कार घोषित

साठ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के सर्जक, प्रख्यात उपन्यासकार, कवि एवं चित्रकार स्व. अम्बिकाप्रसाद दिव्य की स्मृति में अ. भा. स्तर पर दिये जाने वाले छठे प्रतिष्ठापूर्ण साहित्यिक पुरस्कारों की घोषणा मंगलवार दिनांक ५ मार्च को सागर में आयोजित एक पत्रकार वार्ता में की गई। दिव्य स्मृति पुरस्कार समिति के संरक्षक एवं सागर जिला के कलेक्टर श्री बी.आर. नायडू ने पुरस्कारों की घोषणा करते हुये बताया कि उपन्यास और कहानी विधा के लिए पाँच हजार रुपए राशि का अंबिकाप्रसाद दिव्य पुरस्कार, "यह जग काली कूकरी" उपन्यास के लिए इंदौर के उपन्यासकार श्री सूर्यकांत नागर को, काव्य विधा के लिए दो हजार एक सौ एक रुपए राशि का दिव्य पुरस्कार, बुन्देली गज़ल संग्रह "चलो अब घर कों चलिये" के लिए जबलपुर के कवि श्री राज सागरी को, एवं ललित निबंध, व्यंग्य, नाटक एवं बाल साहित्य के लिए, दो हजार रुपए राशि का दिव्य पुरस्कार निबंध संग्रह "थोड़ी यात्रा थोड़े कागज" के लिए भायन्दर के साहित्यकार श्री सांवरमल सांगानेरिया को प्रदान किये जायेंगे। इनके अलावा काव्य संग्रह "मेरी इक्यावन कवितायें" के लिए श्री अटलबिहारी वाजपेयी एवं उसके कोंकणी अनुवाद के लिए गोवा के डॉ. पी.ए.शेजवाडकर को दिव्य–रजत–अलंकरणों से सम्मानित किया जायेगा। इसी क्रम में आरा के प्रो. राकेशकुमार सिंह को उनके कथा संग्रह 'हांका', डोंविवली के कथाकार श्री आलोक भट्टाचार्य को उनके कथा संग्रह "आंधी के आस पास", पिपरिया के व्यंग्यकार श्री रविशंकर परसाई के व्यंग्य संग्रह 'पानी डूब रहा है', भोपाल की व्यंग्यकार श्रीमती मालती बसंत को उनके व्यंग्य संग्रह "कुर्सी तेरे रंग हजार", खण्डवा के निबंधकार डॉ. श्रीराम परिहार को उनके निबंध संग्रह 'बजे तो बंशी, गूंजे तो शंख',

शाजापुर के कवि श्री राजीव शर्मा को उनके काव्य संग्रह "उम्र की इक्कीस गलियाँ", खण्डवा के श्री ओम ठाकुर को उनके काव्य संग्रह "कागज की नाव", सागर के कवि श्री विवेक श्रोतिय को उनके काव्य संग्रह "चेहरे", इलाहाबाद के लेखक श्री रविशंकर शर्मा को उनके बालकथा संग्रह "अपनी धरती" और भोपाल की श्रीमती विनय राजाराम को काव्यानुवाद "प्रणय से प्रणव तक" के लिए दिव्य–रजत–अलंकरणों से सम्मानित किया जायेगा।

इस अवसर पर दिव्य पुरस्कार घोषणा समारोह के मुख्य अतिथि एवं दिव्य पुरस्कार समिति के वरिष्ठ संरक्षक, पूर्व कुलपति श्री शिवकुमार श्रीवास्तव ने दिव्य जी के कृतित्व एवं दिव्य पुरस्कारों की विश्वसनीयता एवं लोकप्रियता पर प्रकाश डाला। आपने कहा कि दिव्य पुरस्कारों ने छह वर्ष के अल्प समय में ही राष्ट्रव्यापी ख्याति अर्जित कर ली है। यह श्रेय दिव्य जी के सुपुत्र श्री जगदीश किंजल्क एवं उनके परिवार को जाता है। दिव्य पुरस्कारों के संयोजक श्री जगदीश किंजल्क ने बताया कि वर्ष २००२ के दिव्य–पुरस्कारों हेतु देश के कोने-कोने से ११० ग्रंथ प्राप्त हुये, जिनमें तीन ग्रंथों को प्रतिष्ठापूर्ण दिव्य पुरस्कारों के लिए चुना गया है। ग्यारह श्रेष्ठ ग्रंथों की गुणवत्ता को देखते हुये उनके रचनाकारों को दिव्य–रजत–अलंकरणों से सम्मानित किये जाने का निर्णय लिया गया है। दिव्य स्मृति पुरस्कारों एवं दिव्य–रजत–अलंकरणों की चयन समिति के विद्वान सदस्य हैं – प्रो. कांति कुमार जैन, प्रो. आर. डी. मिश्र, प्रो. श्याम कश्यप (सागर) एवं सतना के प्रसिद्ध व्यंग्यकार श्री संतोष खरे। ये पुरस्कार निकट भविष्य में, सरस्वती वाचनालय एवं साहित्य सदन सागर के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित एक गरिमापूर्ण समारोह में प्रदान किये जायेंगे। समारोह में स्व. दिव्य जी के ताजा प्रकाशित उपन्यास "जोगी राजा", श्री अंशलाल पन्द्रे के काव्य संकलन "गीत गुंजन" एवं दिव्य पुरस्कार समिति की सचिव श्रीमती जयन्ती खरे के काव्य संकलन "अभियान" का लोकार्पण भी किया जायेगा दिव्य पुरस्कार समिति की लोकप्रिय पत्रिका "दिव्यालोक" का भी विमोचन किया जायेगा। पुरस्कार घोषणा समारोह एवं पत्रकार वार्ता में 'दिव्यालोक' पत्रिका के कार्यकारी संपादक प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी भी उपस्थित थे। पुरस्कार समिति की सचिव श्रीमती जयन्ती खरे ने इस अवसर पर सभी उपस्थित पत्रकार बन्धुओं, विद्वानों एवं संरक्षक मंडल के सदस्यों का आभार माना।

– जगदीश किंजल्क, संपादक - दिव्यालोक

हिंदी से जो असर पड़ता है, वह अंग्रेजी में कहाँ

मैं कहना यह चाहता हूँ कि मुझे आज इस पवित्र नगर में, इस महान् विद्यापीठ के प्रांगण में अपने ही देशवासियों से एक विदेशी भाषा में बोलना पड़ रहा है। यह अत्यंत अप्रतिष्ठा और लज्जा की बात है। पिछले दो दिनों में यहाँ जो भाषण दिये गये यदि उनमें लोगों की परीक्षा ली जाए और मैं परीक्षक होऊँ तो निश्चित है कि अधिकांश लोग फेल हो जाएँगे। क्यों? इसलिए कि इन व्याख्यानों ने उनके हृदय को स्पर्श नहीं किया है। मैं गत दिसम्बर में राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में उपस्थित था। वहाँ श्रोता केवल उन भाषणों से प्रभावित हुए जो हिन्दी में दिये गये थे। ध्यान दीजिये, यह बंबई की बात है, बनारस की नहीं जहाँ सभी लोग हिन्दी बोलते हैं। बंबई प्रांत की भाषाओं (उन दिनों गुजराती और मराठी प्रायः समान रूप से मुंबई की महत्त्वपूर्ण भाषाएँ थीं) और हिन्दी में उतना अंतर नहीं है जितना अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं में है, इसीलिए श्रोता हिन्दी में कही बात अधिक आत्मीयता से समझ सके।

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ४ फरवरी १६१६ को मूल अंग्रेजी में दिये गये भाषण के अंश)

–गांधी वाङ्मय से

निकष

यू.एस.एम. पत्रिका वर्ष १८ अंक ४
सम्पादक - उमाशंकर मिश्र
प्रकाशन- अशोक नगर, गाजियाबाद
इस अंक का मूल्य -२०/- वार्षिक ११०/-

यू एस एम पत्रिका का उपर्युक्त अंक हिन्दी संसार के लिए मेरी दृष्टि से एक अनमोल विधि है। यों आज इतनी सारी पत्रिकाएँ निकलती हैं कि उनकी गणना भी संभव नहीं है, किन्तु उन सब में एक साहित्यिक पत्रिका का अनवरत अनवधान प्रकाशन कितना कठिन कार्य है, इसे वे ही लोग जानते हैं जो इसे करते हैं। सरकारी पत्रिकाओं की तो यह स्थिति है कि वे यदि दो चार माह विलम्ब से प्रकाशित न हों तो उनकी प्रतिष्ठा में बट्टा लग जाय। ऐसी स्थिति में यूएसएम पत्रिका आज नहीं अठारह वर्षों से अपनी पहचान बनाने में सफल हुई है। जैसे 'कल्याण' ने गोरखपुर को पर्याप्त प्रतिष्ठा दी वैसे ही बन्धुवर मिश्र जी द्वारा सम्पादित 'सच का साया' और उपर्युक्त पत्रिका निश्चित ही गाजियाबाद को गौरवान्वित करेगी।

इस अंक के 'नाम में क्या रखा है' सम्पादकीय में मिश्र जी ने एक यक्ष प्रश्न समाज के सामने रखा है उन्होंने साहित्यिक पत्रिका में अपने प्रयत्नों का इज़हार करते हुए सम्पादकों का आह्वान किया है कि आज हमें अपने विचारों को प्रकाशित ही नहीं करना है, अपितु उनके क्रियान्वयन हेतु ठीक उसी प्रकार जन आन्दोलन का नेतृत्व करना है, जिस प्रकार स्वाधीनता आन्दोलन में लेखकों, कवियों और पत्रकारों ने अपनी राष्ट्रहितैषी भूमिका का निर्वाह किया था। मैं इन विचारों से शतशः सहमत हूँ।

पत्रिका के लेखों में सबसे महत्त्वपूर्ण और गवेषणात्मक लेख है–डा. अम्बेडकर की दृष्टि से महर्षि मनु। यह लेख निश्चित ही उन लोगों को मार्गदर्शन देगा जो महर्षि मनु के विरुद्ध विषवमन करते रहते हैं। ऐसे राजनीतिबाजों ने इस देश को बरबाद करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। 'पर्व सन्देश' राम का सई तट पर विश्राम' होली बाल मेला, गढ़वाल के शक्तिपीठ, पुस्तकालयों की उपयोगिता, दिव्य कम्प्यूटर आदि लेख एक अनोखी और नवीन जानकारी देने में सक्षम है। गांधीवादी कवि मैथिलीशरण गुप्त की सम्बद्ध कृतियों की डा. पाण्डेय रामेन्द्र ने समीचीन समीक्षा की है। जो सटीक उद्धरण उन्होंने दिये हैं, वे उनकी अध्ययन क्षमता को प्रदर्शित करते हैं। कालिंजर में प्रार्णोत्सर्ग की परम्परा एक पौराणिक और धार्मिक लेख है जिसने पुराणकालीन कालिन्जर को वर्तमान में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। हो सकता है आज के वाममार्गी विचारक इसे ठीक न समझें, किन्तु इस देश के रग–रग में, अपने तीर्थ स्थलों के प्रति जो आस्था लोगों में है उसको नकारना उनके लिए भी संभव नहीं है।

'आयोग दर आयोग व्यंग्य, मिट्टी का तेल' कहानी और आसान सवाल लघुकथा भी अच्छी रचनाएँ हैं।

'राधा की मटकी से' ब्रजभाषा की अच्छी रचना है अन्य कविताएँ माधुर्य और लालित्य से सराबोर हैं।

गजलें भी वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में अच्छी बन पड़ी हैं। पत्रिका के ४८ से ५२ पृष्ठों में देश के विभिन्न भागों में आयोजित समारोहों का बेलाग विवरण है, जिससे पत्रिका का सम्मान बहुत बढ़ जाता है। अन्य स्थानों के समारोह विवरण देना इस पत्रिका की अनोखी विशेषता भी है। पुस्तक समीक्षाएँ भी उच्चकोटि की है।

सब मिलाकर यह अंक अत्यन्त उपादेय है। इसे हमें धरोहर के रूप में स्वीकारना होगा, अन्यथा जो स्थिति आज माधुरी, सुधा, सरस्वती की है वही स्थिति हमारी हो जाएगी। यदि हम पत्रिका को सहेज कर न रख सके। पत्रिका के सम्पादक श्री उमाशंकर मिश्र एक निष्पक्ष, निर्भीक और स्वाभिमानी पत्रकार हैं। प्रभु श्रीनाथ जी उन्हें इतनी अधिक क्षमता प्रदान करें। जिससे वे पत्रकारिता जगत को अपनी निर्भीक वाणी से उद्‌बोधित करते रहें।

–भगवतीप्रसाद देवपुरा,
प्रधानमंत्री, साहित्य-मण्डल,श्रीनाथद्वारा

हर सिंगार

नाम पुस्तक - 'आकल्प'
लेखक- धर्मेन्द्र तिजोड़ीवाले 'आजाद'
प्रकाशक-आजाद प्रकाशन,टालरोड़, तेन्दूखेड़ा
मूल्य-सजिल्द १००/- पेपरबैक ५०/- पृष्ठ-५२

मनुष्य के ज्ञान को परिपुष्ट करने में कहानियों का बहुत बड़ा योगदान होता है। शैशवावस्था से ही सभी व्यक्ति कहानी के प्रति अनुरक्त हो जाते हैं और यह रुचि आजीवन बनी रहती है।

'पंचतन्त्र' के माध्यम से आचार्य विष्णु शर्मा ने उदण्ड राजकुमारों की जिस प्रकार इन कहानियों द्वारा सम्पूर्ण ज्ञान दिया, यह सभी को ज्ञात है। कहानी आगम ज्ञान का प्रमुख स्रोत होने के साथ मनोरंजन भी करती हैं। कहानी कहना एक कला मानी जाती है। अतः यदि कोई अपनी अनुभूतियों को बाँटना चाहता है तो वह सर्वश्रेष्ठ माध्यम के रूप में कहानी को ही चुनेगा।

श्री धर्मेन्द्र 'आजाद' ने भी 'आकल्प' नाम से एक कहानी संग्रह ही प्रस्तुत किया है जिसमें इनकी १२ लघुकथाएँ संकलित हैं। इनकी विशेषता यह है कि सभी में प्राकृतिक अवदानों को प्रतीक बना कर लेखक ने मानवीय संवेदनाओं को जिस अन्दाज में उकेरा है, वह आज की समकालीन कहानी से सर्वथा हट कर है।

धोखा, प्यार, त्याग, विवशता, क्रूरता, अपमान दंश, अस्तित्व और अतृप्त आकांक्षा आदि अनुभूतियों को अन्योक्तियों में अभिव्यक्त करने वाली ये कहानियाँ पाठकों के हृदय में एक टीस-सी उत्पन्न करती हैं। पढ़ने वाला उनमें कहीं तो स्वयं को नायक अनुभव करने लगता है और कहीं तटस्थ दर्शक। वस्तुतः ये कहानियाँ गद्य काव्य का आभास देती हैं। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है। पृष्ठ संख्या को देखते हुए मूल्य अधिक लगता है और पाठक क्रय करने में हिचक सकता है।

–पुरुषोत्तम पालीवाल, साहित्य-मण्डल,श्रीनाथद्वारा

नाम पुस्तक - 'याद रहेंगे देर तक'
सम्पादक- श्री प्रबोध कुमार गोविल
प्रकाशक-राही सहयोग संस्थान (पंजीकृत)
६०, शिव कॉलोनी, रीको औद्योगिक क्षेत्र,रूपवास
पृष्ठ-६६ मूल्य- ५०रु.(संस्थान सदस्यों हेतु निःशुल्क)

संस्मरण मानव मन–आत्मा को सदैव मार्गदर्श देने वाले धन के समान हैं। यह वह अजस्र सम्पत्ति है प्रेरणा एवं उत्साह से उसे सतत परिपूर्ण करती रहती ये संस्मरण कड़वे, मीठे, तिक्त सभी तरह के होते बाल्यावस्था में माँ और शिक्षक के प्रति जो संवेदनाएँ हो हैं, उन्हें उस समय अभिव्यक्त करने की उसमें क्षमता न होती। किन्तु परिपक्वावस्था होते ही वे स्मृतियाँ उस सम्बल बन जाती हैं और आगे बढ़ने में सहायक होती

शिक्षा और शिक्षक से जुड़े संस्मरणों का संकल 'याद रहेंगे देर तक' अपने आप में एक अनूठा प्रयास जिसके माध्यम से लेखक अपने संस्मरणों को समाज समक्ष रखते हुए अपनी अत्यन्त गुह्य अनुभूति से सभी परिचित कराते हुए अपने गुरुजनों को श्रद्धान्जलि अ कर रहा है।

इस संकलन में ऐसे ३७ व्यक्तियों के संस्मरणों संजोकर श्री प्रबोध कुमार जी गोविल ने एक ऐसी दीपमालि दी है जो लेखकों के साथ–साथ पाठकों का भी मार्गदर्श करते हुए उन्हें सतत प्रेरणा प्रदान करती है। आज शिक्षक केवल नौकरी समझ कर अध्यापन कर रहे हैं, उ विशेष रूप से अपने दायित्वों का बोध कराने में संकलन अवश्यक उपयोगी रहेगा। राही सहयोग संस्थ की यह वार्षिकी–७ अत्यन्त उपयोगी है।

इसमें जिन–जिन महानुभावों के संस्मरण दिये हैं उनके साथ विभिन्न समुदाय एवं दायित्व से जु कतिपय जाने–माने महानुभावों के संस्मरण और जुड़ ज तो इस संकलन की उपादेयता और पहुँच में निःसन्दे बढ़ोत्तरी होती ।

त्रुटि रहित स्पष्ट रूप से मुद्रित यह पुस्तक पठनी होने के साथ ही ज्यादा से ज्यादा व्यक्तियों तक पहुँच ब सकेगी।

–पुरुषोत्तम पालीवाल,साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्व

नाम पुस्तक - 'वल्लभ-काव्य-विभा' द्वितीय खण्
सम्पादक - श्री श्याम श्रोत्रिय
प्रकाशक-श्रोत्रिय प्रकाशन, मथुरा मूल्य-६५ रु.

पुस्तक के प्रारम्भ में श्रद्धेय श्री गोपाल प्रसाद व्यास की संक्षिप्त भूमिका है, जिसमें 'वल्लभ सखा जी' साहित्यिक जीवन का पूर्ण विवरण दिया है। उनके अनुस श्री वल्लभ सखाजी एक साहित्यिक विभूति थे।

हर सिंगार

ब्रज कला केन्द्र के अध्यक्ष माननीय श्री रामनारायण जी अग्रवाल तथा श्री मोहन स्वरुप जी भाटिया ने भी श्री सखाजी के ग्रंथों के बारे में पूरी जानकारी दी है जिससे सिद्ध होता है कि सखाजी ब्रजभाषा काव्य के अप्रतिम कवि थे।

श्री श्याम श्रोत्रिय ने श्री सखाजी के काव्य को एकत्रित कर उसे प्रकाशित करने का जो साहस दिखाया है, वह अभिनन्दनीय है। अपने व्यय से किसी पुराने कवि का उद्धार करना आज चमत्कार ही है। मैं श्री श्याम श्रोत्रिय महोदय को इसके लिए बधाई देता हूँ।

–श्यामप्रकाश देवपुरा,साहित्य-मण्डल,श्रीनाथद्वारा

नाम पुस्तक - महामति प्राणनाथ
लेखक - डा. कमला शर्मा
प्रकाशक - श्री प्राणनाथ मिशन,६२,सिद्धार्थ एन्क्लेव, रिंग रोड, नई दिल्ली मूल्य-५० रु.

समन्वयवादी दृष्टिकोण को अपनी आधारभूमि बनाकर 'महामति प्राणनाथ जी' ने अपने धार्मिक विचारों को एक नया कलेवर दिया है। उस समन्वयवादी साधक की साधना को सुधी समाज तक पहुँचाने का कार्य सुश्री डा. कमला शर्मा ने अपने शोध ग्रंथ 'धर्म समन्वय उद्गाता–महामति प्राणनाथ' के माध्यम से किया है। दस विषय बिन्दुओं में विभक्त शोध ग्रंथ महामतिजी के सम्पूर्ण जीवन वृत्तान्त को प्रस्तुत करता है।

ग्रंथ का आरम्भ महामति प्राणनाथ के गुरु श्री सद्गुरु निजानन्द स्वामी श्री देवचन्द्रजी के संक्षिप्त जीवन परिचय से हुआ है।

२. **महामति प्राणनाथ-** महामति जी के जीवन के विभिन्न वृत्तान्त जैसे –निष्कलंक बुध उपाधि, दीक्षा अरब यात्रा, दीवानपंद, औरंगजेब से धर्म चर्चा, महाराज छत्रसाल से भेंट आदि। लेखिका ने उनके संक्षिप्त जीवन परिचय के साथ–साथ महामति जी के धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक व सामाजिक दृष्टिकोणों पर भी प्रकाश डाला है।

३. **महामति प्राणनाथ वाणी परिचय-** महामति प्राणनाथ प्रणीत वृहद ग्रंथ 'कुलजम स्वरूप का परिचय है जिसकी सम्पूर्ण चौपाइयों का योग अठारह हजार सात सौ अट्ठावन और पाँच सौ चौबीस प्रकरण है और यह महामति प्रणीत ६६ ग्रंथों का संकलन है। लेखिका ने प्रत्येक ग्रंथ का संक्षिप्त व सार रूप वर्णन किया है।

४. **महामति प्राणनाथ दर्शन-** महामति प्राणनाथ के दार्शनिक पक्ष–अक्षरातीत परब्रह्म परमात्मा, अक्षरब्रह्म, अक्षरपुरुष, परमधाम, त्रिधा–सृष्टि, जीव, ईश्वरीय, ब्रह्म सृष्टि, जगत, माया, योगमाया, तारतम ज्ञान, मोक्ष आदि का क्रमबद्ध रूप में वर्णन किया है।

५. **भक्तिसाधना -**

भक्ति व साधना के इस खण्ड को लेखिका ने बड़े परिश्रम के साथ संजोया है। महामति जी के भक्ति व साधना के एक–एक पक्ष का अलग–अलग वर्णन किया है। जैसे –स्वलीलाद्वैत, एकेश्वरवाद, श्याम–श्यामा, युगल स्वरूप की आराधना, आराध्य और आराधक, निष्काम भक्ति, माधुर्यभक्ति, पतिव्रत भाव, गोपीभाव, अलौकिक सखीभाव, शरणागति, आत्मपहचान, सुन्दरसाथ की जगनी, मानवदेह की उपादेयता, शास्त्र–श्रवण, जीव की जाग्रतावस्था ज्ञान साधना, प्रेम साधना आदि लेखिका के इस खण्ड को ग्रंथ की आत्मा बना दिया है। महामति जी के भक्ति व साधने के समन्वयवादी स्वरूप को बड़े ठोस तथ्यों के साथ प्रस्तुत किया है और यही इस ग्रंथ का लक्ष्य बिन्दु भी रहा है।

६. **लीलावर्णन-** श्री कृष्ण ने पृथ्वी पर अवतार लेकर विभिन्न प्रकार की लीला की हैं, लेकिन उनमें से भी ब्रजलीला, रासलीला व जागनी लीला ये त्रिधा लीला विचित्र हैं। इन्हीं लीलाओं का महामति जी ने अति सूक्ष्मतम रूप से वर्णन किया है। श्री मद्भागवतसार में महामति जी ने ब्रह्मात्माओं को श्रीमद्भागवत का सारांश समझाया है और ब्रह्मात्माओं को जगाने और उन्हें परमात्मा और परमधाम की सुधि दिलाने के लिए लक्ष्मी का दृष्टान्त, माया का प्रभाव बताने वाले के लिए ऋषि मार्कण्डेय का दृष्टान्त और इन्द्रावती के आत्मरूप से ब्रह्मात्माओं को अक्षरातीत परमात्मा परमधाम की लीलाओं का स्मरण कराने तथा नींद से जगाने के लिए सूत कातने वाली सखियों का कातनी दृष्टान्त दिया है।

७. **भावपक्ष ८. साहित्यिक विवेचना, ९. महामति**

प्राणनाथ की भाषा-

महामति प्राणनाथजी की मातृभाषा गुजराती है। उनके विशाल ग्रंथ 'कुलजम स्वरूप' में कई भाषाओं और बोलियों का समावेश है। महामति जागनी अर्थात् जन–जागरण हेतु वे अलग-अलग देशों व प्रान्तों में भ्रमण करते रहे, इसलिए उनको वाणी में वहीं के भाषायी शब्द सम्मिलित हो गये हैं। महामतिजी ने अपने उद्‌गारों को चौपाइयों के रूप में लोगों तक पहुँचाया है।

१०. **परवर्ती प्रणामी सन्त** और महामति प्राणनाथ–इस बिन्दु में महामति के परवर्ती व समकालीन उन प्रणामी सन्तों का वर्णन है, जिन्हें महामति जी से मार्गदर्शन मिला व उनका प्रभाव उनके साहित्य पर पड़ा है।

महामति प्राणनाथ जी वास्तव में एक समन्वयवादी विचारधारा के पोषक थे। उस युग मे हिन्दू–मुस्लिम एकता की अत्यन्त आवश्यकता थी क्योंकि दोनों में परस्पर टकराव बना ही रहता था। दोनो धर्मों की एकता पर बल देते हुए कहते है–

जो कछु कह्याया कतेब ने, सोई कहया वेद।
दोऊ बंदे एक साहेब के, पर लड़त बिना पाए भेद।।

उनकी सभाओं में एक ओर श्रीमद्‌भागवत् का और दूसरी और कुरान का पाठ समान स्वरूप से होता था। महामति के दर्शन में जहाँ एक ओर पृष्टिमार्गीय मर्यादित पुष्टिभक्ति है वही दूसरी ओर कबीर की कर्म, ज्ञान, योगसाधना का वर्णन है। केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही नही भाषायी दृष्टिकोण से भी वे समन्वयवादी थे। उनके 'कुलजल स्वरूप' ग्रन्थ में हिन्दू, मुस्लिम व ईसाई तीनों धर्मों के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग कर तीनों धर्मों से समन्वय स्थापित किया है। उनकी वाणी में गुजराती, सिन्धी, कच्छी, खड़ी बोली, अरबी–फारसी, संस्कृत आदि भाषाओं व बोलियों के शब्द सम्मिलित हैं लेकिन अपनी वाणी को देवनागरी लिपि में लिपिबद्ध कर उसे हिन्दुस्तानी नाम दिया है, जो उनके समर्पित राष्ट्रीयभावना का द्योतक है। तात्कालीक समस्या में हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य को मिटाने के लिए महामति प्राणनाथजी ने मेड़ता में मस्जिद के अजान को सुनकर दोनों धर्मों की समानता का उल्लेख इस प्रकार किया था–''लाइलाह इल्लिल्लाह मुहम्मदुर्रसुल्लुल्लाह' का अर्थ 'ला' नहीं क्षर ब्रह्माण्ड 'इलाह' अक्षर–अविनाशी सत्ता से परे 'इल्लुल्लाह अक्षरातीत परमात्मा का पैगाम मुहम्मद लाए हैं' महामति जी का यह सामयिक प्रयास वर्तमान परिवेश के हिंसात्मक कट्‌टरता का वैमनस्य के वातावरण को सौहार्द्र पूर्ण बनाने में मार्गदर्शक बन सकता है। सुश्री डा. कमला शर्मा का यह शोधग्रंथ सराहनीय है और वे इस हेतु बधाई की पात्रा हैं। पुस्तक की छपाई अत्यन्त सुंदर, कागज उच्च कोटि का है और मूल्य अत्यन्त कम है।

–सुश्री हेमाली व्यास , साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

श्रीकृष्ण लीला चरित

सम्पादक : जगमोहन प्रसाद चंचरीक

कवि ने १६२५ दोहों में श्रीकृष्ण चरित रूपी अमृत से हम लोगों को तृप्त करने का प्रयत्न दिया है। मैं इन तीनों दिनों में इसे आद्योपान्त पढ़ गया। सभी कुछ नया लगा। यों भी कृष्ण चरित सदैव नया ही रहता है, किन्तु उनके प्रत्येक भक्त के मन में उनके बारे में अलग–अलग भाव हैं, वे जिस रीति से कृष्ण को प्राप्त करना चाहते हैं–उनके भाव–भाषा–काव्य सभी उसी के अनुसार बन जाते हैं।

पुस्तक सचित्र है, जो चित्र हैं वे भी अपनी अलौकिकता लिये हुए और दुर्लभ रहे हैं।

– भगवतीप्रसाद देवपुरा,साहित्य-मण्डल,श्रीनाथद्वारा

पुस्तक - परमानन्ददास : काव्य और आलोचना

लेखक- डा. किशोरी लाल
प्रकाशक - गुप्ता साहित्य भण्डार, मालीपुरा, उज्जैन
पृष्ठ सख्या-१६८, मूल्य - २००/-

'परमानन्ददास : काव्य और आलोचना' शीर्षक कृति के प्रस्तोता हैं डा. किशोरी लाल । मध्यकालीन साहित्य को समझने–समझाने में इनका अप्रतिम योगदान है। क्रमानुसार सुसमृद्ध व्याख्या पद्धति को आज भी इन्होंने जीवित रखा है।

हर सिंगार

समीक्षा वस्तुतः व्यावहारिक ही है, व्याख्या परक एवं कृतिनिष्ठ। रचना की तह में निहित सर्जनात्मक अनुभूति का साक्षात्कारपूर्वक किया गया विश्लेषणात्मक पुराख्यान है।

पुस्तक में लेखक ने अष्टछाप के सुप्रसिद्ध भक्त कवि परमानन्ददास की कतिपय चुनी हुई रचनाओं को लेकर उनका काव्य सौन्दर्य और अन्तःमर्म उद्घाटित किया है। इसमें स्वयं व्याख्याकार ने 'अपनी बात' में परमानन्ददास का जीवनवृत्त और साहित्यिक तथा दार्शनिक आलोचना रखी है। उसके बाद ही प्रमुख पदों की व्याख्या प्रस्तुत हुई है।

रचना का मूल उपादान संवेदना है और संवेदना का घटक अनुभूति के अतिरिक्त दृष्टि भी है। रचनाकार की दृष्टि 'वल्लभी' है और भक्ति की साम्प्रदायिक साधना पद्धति भी। ये भक्त भक्ति को पंचम पुरुषार्थ मानते तथा गोपीभाव की भक्ति से लीला–रस का आस्वादन और गान करते हैं। यहाँ विरह का स्वर उग्र है।

डा. किशोरीलाल ने भूमिका में काव्य के साहित्यिक और दार्शनिक पक्ष से जिन बिन्दुओं के अन्तर्गत विचार किया है, वे हैं–जीवनवृत्त भक्ति एवं दर्शन, अभिव्यंजना कौशल, भाषा सौष्ठव तथा छंद योजना।

आलोचना का मुख्य पक्ष है–काव्य समीक्षा। यह समीक्षा कृति पर केन्द्रित है। भाषा के विषय में मुख्य बात यही है कि अष्टछाप के सभी कवियों की भाषा 'चलती' और साहित्यिक ब्रज ही है। इन्होंने नन्ददास की तरह भाषा के जड़ाव पर बल नहीं दिया है, पर ग्रामीण मुहावरे और शब्द प्रयुक्त किये हैं। भाषा में सहज प्रवाह एवं सजीवता है।

परमानन्ददास पर दो वृहद् ग्रंथ हिन्दी साहित्य में पहले से हैं–विद्या विभाग कांकरोली से प्रकाशित 'परमानन्द सागर' तथा अलीगढ़ से प्रकाशित 'परमानन्ददास' । इनमें श्री परमानन्ददास के सम्पूर्ण छन्द संग्रहीत हैं। आलोच्य पुस्तक में केवल २०० छन्द ही लिये गए हैं जिन्हें लेखक ने विषयक्रम के अनुसार लेकर सटीक व्याख्या की है।

इस सजिल्द पुस्तक की छपाई साफ सुथरी है, किन्तु मूल्य २००/–रु. कुछ अधिक है।

–पुरुषोत्तम पालीवाल, साहित्य-मण्डल,श्रीनाथद्वारा

वीणा अमृतोत्सअंक

सम्पादक - डा. श्यामसुन्दर व्यास

'वीणा' को प्रकाशित करने वाली संस्था 'श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति' इन्दौर को धन्य है कि उसने पर्याप्त पीड़ा उठाकर भी इस पत्रिका को जीवित रखा है। जब हिन्दी की सैंकड़ों यशस्वी पत्रिकाएँ काल के गाल में विलीन हो गई तब 'वीणा' की 'वीणा' अनवरत झंकृत होती रही, यह सम्पूर्ण हिन्दी संसार के लिए गौरव का विषय है।

आज जैसे महान सम्पादक के लिए मैं क्या लिखूँ–आपने 'वीणा' के लिए क्या नहीं किया–स्वास्थ्य पर आपका ध्यान नहीं, परिवार वालों से बराबर दूर, अहर्निश वीणा के प्रकाशन की चिन्ता सवार। सम्पूर्ण भारत से आलेख 'वीणा' में प्रकाशित होने आते हैं। सैंकड़ों प्रकार के, अनेक विधाओं में, विभिन्न भाषा-भाषियों के लेख पढ़कर, संशोधित करते हुए प्रकाशित करना कोई खेल नहीं है और उस स्थिति में जबकि 'वीणा' पूरे भारत में समय पर प्रकाशित होने वाली पत्रिका बनी हुई है।

मुझे तो आश्चर्य इस बात का है कि जिस दिन में इसकी प्राप्ति प्रतीक्षा करता हूँ–उसी दिन मुझे वीणा प्राप्त हो जाती है।

'वीणा' ने साहित्यकारों के लेख ही नहीं छापे हैं अपितु सैकड़ों साहित्यकार तैयार भी किये हैं। जिन्हें कोई नहीं जानता था उन्हें 'वीणा' ने ही सर्वसुलभ बनाया है। मैं तो 'वीणा' का जन्मभर का आभारी हूँ जिसके द्वारा मैं अनेकानेक लेखकों, कवियों और पत्रकारों से सम्बन्ध स्थापित कर सका। यह कहना समीचीन होगा कि मेरे साहित्यिक जीवन की उन्नति के लिए 'वीणा' सम्पादक श्रीमान् डा. श्यामसुन्दर जी व्यास ही प्रेरक रहे हैं। उन्हीं के आशीर्वाद से मैं कुछ कर पा रहा हूँ।

वीणा' के 'सितम्बर' अंकों में माँ भारत–भारती के लिए जो कुछ किया गया है, अब तक अन्य कोई पत्रिका नहीं कर सकी। कई वर्षों के सितम्बर अंक तो हिन्दी की धरोहर हैं।

प्रभु श्रीनाथ जी डा. श्यामसुन्दर जी व्यास को चिरायु करें ताकि 'वीणा द्वारा माँ भारती की 'वीणा' झंकृत होती रहे।

–भगवतीप्रसाद देवपुरा,साहित्य-मण्डल,श्रीनाथद्वारा

हर सिंगार

मानस-चन्दन
सम्पादक डा. गणेशदत्त सारस्वत

सीतापुर से प्रकाशित 'मानस चन्दन' हिन्दी की एकमात्र ऐसी पत्रिका है जिसके अंकों के माध्यम से कोई भी व्यक्ति तुलसी पर पी.एच.डी. कर सकता है। कवि की कोई कृति नहीं जिसके बारे में इसमें विवाार न किया जाता हो। यों जन्म, जाति के बारे में तो चिन्तन है ही, भाषा, बोली, काव्य सौष्ठव, समन्वयवाद आदि पर भी पर्याप्त एवं गहन चिन्तनपरक लेख–इस पत्रिका में प्रकाशित होते रहते हैं। ४४ पृष्ठ की इस पत्रिका में–जो बारीक अक्षरों में ठोस सामग्री दी जाती है –वह अन्य २०० पृष्ठों वाली पत्रिकाओं में नहीं होती। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, इसमें एक भी विज्ञापन का न छपना, ग्राहक भी कितनेक होंगे–क्योंकि आज तो सभी 'महान–साहित्यकार पत्रिकाओं को मुफ्त में चट करना चाहते हैं–करें क्या? युग ही ऐसा है। एक महान सारस्वत सज्जन के सारस्वत यज्ञ को शतशः नमन।

–भगवतीप्रसाद देवपुरा, साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

पुस्तक - 'राम काव्य : बोध के विविध रूप'
लेखक- डा. परमलाल गुप्त
प्रकाशक - पीयूष प्रकाशन, शारदा नगर, सतना (म.प्र.)
पृष्ठ संख्या- ८६ मूल्य - ६५/-

प्रस्तुत पुस्तक डा. परमलाल गुप्त के रामकथा से सम्बद्ध सोलह निबन्धों का संग्रह है, जिसमें लेखक का मौलिक चिन्तन प्रतिबिम्बित होता है। विषय का विवेचन बड़ी गंभीरता से किया गया है जिनमें पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय चेतना का स्वर मुखरित होता है।

निबन्धों के गहन अध्ययन से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि रामकाव्य में युग–चेतना उपेक्षित नहीं हुई है। वाल्मीकि से लगाकर आज तक मूल कथानक वही रहने पर भी वर्णनों में किंचित् परिवर्तन होते रहे हैं, जो स्पष्ट रूप से विषय पर युगचेतना के प्रभाव को व्यंजित करता है। वस्तुतः रामकाव्य एक ओर जहाँ शुद्ध साहित्यिक वर्ग में रहा है तो दूसरी ओर उसका धार्मिक महत्व भी रहा है। वाल्मीकि की कथा किसी धर्म से नहीं जुड़ी। लौकिक साहित्य में राम को विष्णु का अवतार माने जाने पर भी उन्हें नायक ही माना गया है।

युग की धार्मिक चेतना से रामकाव्य प्रभावित होता रहा है, अतः युगानुसार धार्मिक साहित्य की सृष्टि हुई। एक ओर इसे दर्शन से जोड़ा गया तो दूसरी ओर वैष्णव विचारधारा से। अतएव इस सन्दर्भ में विभिन्न रामायणों की रचना हुई। कालान्तर में वैष्णव धर्म सबल होता गया जिससे जैन तथा बौद्ध परम्परा में रामायाण आगे नहीं मिलती । वैष्णव भक्ति परम्परा तुलसी साहित्य में मिलती है, जिसमें रामकथा में जो भक्ति धारा प्रवाहित होती है वह जनमानस में आज भी तरंगायित है। इससे आधुनिक कवियों ने भी पर्याप्त प्रेरणा ली है।

आधुनिक काल में राम के ईश्वर रूप की भक्तिमूलक विचारणा का अन्त हो गया है। हमारी आस्था अलौकिक, अनन्त, दिव्य नर देहधारी से 'नर रूप' पर आ टिकी है। इसे आस्था के केन्द्र का परिवर्तन मात्र कहा जा सकता है, अनास्था नहीं। इस परिवर्तन का प्रभाव नये राम साहित्य पर पड़ा। साकेत, साकेत–सन्त, वैदेही वनवास, वनस्थली प्रदक्षिणा, अरूण रामायण आदि में इसीलिए धार्मिक के स्थान पर सामाजिक और साँस्कृतिक दृष्टिकोण की प्रधानता रही है। व्यक्ति, उसकी पीड़ा, समस्याएँ एवं उनके निराकरण की चेष्टा ही आज तक के साहित्य में प्रधान रूप से व्याप्त रही है। इसका एक मात्र कारण है आधार के लिए कवियों का वाल्मीकि की ओर प्रत्यावर्तन।

उदात्त विचारों से परिपूर्ण निबन्धों के इस संग्रह में चिन्तन की गहराई है। देश की वर्तमान स्थिति के लिए लेखक के मन में पीड़ा है। इस स्थिति में परिवर्तनार्थ संवेदनशील लेखकों को आगे आकर निष्ठापूर्वक प्रयास करने हेतु आह्वान किया गया है। डा. गुप्त का यह प्रयास स्तुत्य एवं अभिनन्दनीय है। मेरी शुभकामना एवं प्रबल आकांक्षा है कि डा. गुप्त की सबल लेखनी से साहित्य और समाज की निरन्तर सेवा होती रहे।

✍ डा.एस.जे.'दिवाकर' सरस्वती सदन, इन्दिरा कॉलोनी, कोटा जंक्शन

हर सिंगार

ाम पुस्तक- 'लघुकथाकार अनिल शूर 'आज़ाद'
सम्पादक - इन्दु वर्मा
काशक - दिल्ली साहित्य समाज, साइट-२/५३,
वेकासपुरी, नई दिल्ली -१८
पृष्ठ - ५५ मूल्य - ५०/-

लेखन वही सफल कहा जा सकता है जिसमें कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक कहने की क्षमता हो। जैसे बिहारी के छोटे-छोटे दोहों में अर्थ की गंभीरता समाहित रही है, उसी प्रकार लघुकथाओं के माध्यम से भी मर्म को छूने वाले प्रभावकारी ढंग से अभिव्यक्ति की जा सकती है। वर्तमान युग में प्रतिस्पर्धाओं के चक्रव्यूह में फँसे व्यक्तियों के पास इतना समय ही कहाँ है कि वह विस्तृत ग्रंथों का अध्ययन कर सकें। वैसे भी दूरदर्शन ने पुस्तकों के प्रति लोगों को विरक्त करने में अहम भूमिका निभाई है। ऐसे में लघुकथाओं की सार्थकता और बढ़ जाती है।

अनिल शूर एक सफल लघुकथाकार हैं। उनकी साहित्यिक उपलब्धियों का परिचय देती इस पुस्तक को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड में आलेख-समीक्षाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ दी गई हैं, जिनमें १२ समीक्षाएँ तनिक विस्तार से दी गई हैं। इनमें लघुकथाओं तथा लेखक के साहित्यिक अवदान को रेखांकित किया गया है।

द्वितीय खंड में श्री "आज़ाद" की ३५ प्रतिनिधि लघुकथाएँ दी गई हैं जो सचमुच अपने लघु कलेवर में विस्तार को समाहित किये हुए हैं और 'गागर में सागर' की उक्ति को चरितार्थ करती हैं।

तृतीय खंड में श्री अनिल शूर का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी साहित्यिक यात्रा का विवरण है।

पुस्तक की छपाई सुन्दर व शुद्ध है। इसे पढ़ने से इस शिशु विद्या-लघुकथा विद्या से परिचय मिलने के साथ ही इसकी सार्थकता को समझना भी सरल हो जाता है। पुस्तक के कलेवर को देखते हुए मूल्य अवश्य भारी लगता है।

—श्यामप्रकाश देवपुरा, साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

नाम पुस्तक - सृजन यज्ञ जारी है।
सम्पादक - डा. अनिलकुमार आंजनेय
प्रकाशक - अखिल भारतीय अन्तरजनपदीय परिषद्,
उजियार, पृष्ठ - १२८, मूल्य - १००/-रु.

'सृजन यज्ञ जारी है' नामक पुस्तक विश्वविख्यात हिन्दी उपन्यासकार श्री विवेकीराय की साहित्य-यात्रा का दस्तावेज है जिसमें उनके द्वारा अब तक रचित समस्त कृतियों का समीक्षात्मक परिचय दिया गया है। अमर उपन्यास सम्राट श्री प्रेमचन्द्र के बाद ठेठ ग्रामीण जीवन की संवेदनाओं को शब्दों रूपी फ्रेम में जड़ कर जन-जन को उससे परिचित कराने वाले विवेकीराय जी की कृतियों का यह परिचय निःसन्देह पाठक वर्ग को इन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित करने वाला है। इस देश की आत्मा का परिचय देने वाली इन कृतियों को पढ़ने से आज की इस संवेदनहीन और पाश्चात्य जीवन शैली के पीछे आँख मूंद कर भागने वाली पीढ़ी को देश के सच्चे स्वरूप का परिचय तो मिलेगा ही, वे ग्रामीण जीवन के निकट भी आ सकेंगे।

'सृजन यज्ञ जारी है' में श्री विवेकीरायजी की जिन कृतियों के बारे में देश के वरिष्ठ साहित्यकारों के समीक्षात्मक लेख हैं, वे हैं-समर शेष है, सोना माटी, मंगल भवन, लोकऋण, श्वेत पत्र, नमामि ग्रामम्, बबूल, पुरुष पुराण, जगत तपोवन सो कियो, आम रास्ता नहीं है, जुलूस रुका है, फिर बैतलवा डाल पर, गँवई गंध गुलाब, नया गाँवनामा, मनबोध मास्टर की डायरी, के कहल चुनरी रंगा ल, मेरी श्रेष्ठ रचनायें, चित्रकूट के घाट पर, गूँगा जहाज, बेटे की बिक्री, कालातीत, नयी कोयल, श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ, गंगा-यमुना-सरस्वती, रामझरोखा बइठि के, दीक्षा, हिन्दी कहानी : समीक्षा और सन्दर्भ, यह जो है गायत्री, अर्गला, आधुनिक उपन्यास : विविध आयाम, किसानों का देश, गाँवों की दुनिया, गणदेवता से गुडअर्थ तक, ओझइती, त्रिधारा और कथूली गाँव।

हर सिंगार

इन ३५ कृतियों के अतिरिक्त श्री विवेकीराय के समस्त साहित्य के चिन्तन धरातल, लेखकीय परिचय, लेखक से हुए वार्तालाप, शोधार्थी द्वारा पूछे गये प्रश्न और विवेकीराम के उत्तर आदि के साथ–साथ लेखक के प्रकाशित ग्रंथों की सूची भी इसमें दी गई है जो न केवल उनके साहित्य से परिचित कराते हैं बल्कि उनके अन्तर्निहित सृजनात्मक व्यक्तित्व का दर्शन भी कराते हैं।

श्री विवेकीराय आज भी जिस युवकोचित उत्साह से अपने इस भगीरथ प्रयास में जुटे हैं, वह निश्चित ही सभी के लिए प्रेरणादायी उदाहरण होगा। जमीन से जुड़ने का जो मार्ग इनकी कृतियों द्वारा दिखाया जा रहा है वह हिन्दी साहित्य को इनका श्रेष्ठ अवदान है।

समीक्षकों और लेखकों के परिचय से प्रस्तुत पुस्तक और उपयोगी बन गई है। निस्सन्देह यह एक अत्यन्त सकारात्मक कदम कहा जा सकता है।

–भगवतीप्रसाद देवपुरा,
प्रधानमंत्री, साहित्य-मण्डल,श्रीनाथद्वारा

नाम पुस्तक 'मंजिल'
कवि/लेखक-डा. परमलाल गुप्त
प्रकाशक - पीयूष प्रकाशन, सतना (म.प्र.)
पृष्ठ-१०० मूल्य-५०/- पेपर बैक्स ३०/-

मंजिल एक कविता संग्रह है, जिसमें कवि ने अपने गंभीर चिंतन को कल्पनाशक्ति द्वारा कलात्मक रूप से अभिव्यक्त किया है। मानवीय भावों के विकास को दर्शाने वाली इन कविताओं में संस्कृति के उत्थान को बल मिला है। यथा–

'प्रतीक' शीर्षक कविता में आह्वान किया है कि अयोध्या में राम मंदिर निर्माण जैसे कार्य को राजनीति में घसीट कर भारतीय संस्कृति को तालिबानी स्वरूप प्रदान करना गलत है। इस पुनीत कार्य द्वारा राष्ट्रनिर्माण को गतिमान करने पर बल दिया है।

'आतंकवाद' में क्रूरता और बर्बरता को उद्घाटित करते हुए उसे मन के अज्ञान अंध कूप से मुक्त करने का आह्वान किया है। आतंकवाद केवल पशुता है और वह जगत को केवल पीड़ा ही देता है।

'नारी का दूसरा रूप' में नारी के मूल स्वरूप ममतामयी का वर्णन करते हुए परिवारों में विष घोलने, उन्हें विघटित करने, अप संस्कृति में ढकेलने वाले दूसरे स्वरूप की विकृति को रेखांकित किया है जो कि वर्तमान में विष वल्लरी की तरह फैल रहा है।

काव्य संग्रह की बोध, किरण, पाश्चाताप, पत्नी, आदर्श समाज, राह आदि कविताएँ भी अत्यन्त भावपूर्ण एवं रोचक हैं। आज के साँस्कृतिक प्रदूषण को कवि ने विशेष बल देते हुए उससे देश को बचाने की प्रेरणा दी है। 'विभिन्न विचारधाराओं के शाश्वत स्वरूप के समन्वय करने का सबल प्रयास ही हमें 'मंजिल' तक पहुँचाने में समर्थ होगा'। मंजिल का मूल यही है।

निश्चय ही यह काव्य संग्रह हमें वास्तविक मनुष्य बनने की प्रेरणा प्रदान करने में समर्थ है। डा. परमलाल गुप्त अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल रहे हैं।

शुद्ध मुद्रण इसका एक उज्ज्वल पक्ष है। मूल्य भी उचित ही है। संग्रह पठनीय एवं संग्रहणीय है।

✍ दाऊलाल शर्मा, लोधाघाटी, नाथद्वारा

हम हिन्दी हैं हमें मोहब्बत
हिन्दी हिन्दुस्तान से,
हमें जुड़े रहना है
अपनी मिट्टी की पहचान से।
अंग्रेजी से आती है
अब भी दुर्गन्ध गुलामी की,
दूर करो अब ये
बेशर्मी अपने देश महान से।
–पं. नरेन्द्र मिश्र

हरसिंगार पर प्रतिक्रियाएँ

हरसिंगार का प्रकाशन सार्थक

आप लोग राष्ट्रभाषा–हिन्दी के प्रचार–प्रसार और विकास हेतु जो कुछ कर और करा रहे हैं, निश्चय ही स्तुत्य, सराहनीय, सार्थक, सारगर्भित और सुअनुनुकरणीय है, प्रेरक और उत्साहवर्धक भी हरसिंगार **प्रकीर्णकांक** में प्रकाशित आलेखों–'क्या राजनेता इस देश को नरक बनाकर चैन लेंगे? अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय के भक्ति साहित्य में वृन्दावन का स्वरूप, 'महाभागवत श्री परीक्षित महाराज', 'अंग्रेजी भाषा और सभ्यता में विलीन होती भारतीय संस्कृति, 'इंडिया का प्रधानमंत्री अंग्रेजी बोलता ही शोभा देता है,' नाटिका–अंग्रेजी हटाओ–देश बचाओ', तथा सम्पादकीय सहित सभी रचनाएँ प्रेरक, ज्ञानवर्धक और रोचक हैं। हिन्दी दिवस पर हर वर्ष आयोजित होने वाले कार्यक्रम हिन्दी की प्रगति हेतु अभी भी अपर्याप्त हैं, जिसके मूल में यदि कुछ दुःखद और असंतोषजनक कुछ भी है तो वह है हमारी सबकी मानसिकता जो अंग्रेजियत में डूबी हुई हैं। हमें गाँधी जी के आदर्श–'पापी को नहीं, पाप को मिटाओ' की तर्ज पर अंग्रेजी मानसिकता या अंग्रेजियत को हटाना, भगाना और नेस्तनाबूद करना होगा, तभी अपनी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा–हिन्दी के विकास में योगदान कर सकेंगे।

– वीरेन्द्र शर्मा ''कौशिक'' मऊरानीपुर(उ.प्र.)

❖ ❖ ❖

हरसिंगार (त्रैमा.) : अंग्रेजी हटाओ अंक
संम्पादक : भगवतीप्रसाद देवपुरा
प्रकाशक : साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा, वार्षिक ५५/-

लेख, कविता, समीक्षा, समाचार आदि भरपूर सामग्री है इसमें। सुन्दर आवरण के बीच सामग्री का चयन भी सुन्दर है। प्रस्तुत अंक अंग्रेजी हटाओ अंक है। हिन्दी को अधिकार दिलाएँ देश बचाएँ, अंग्रेजी हटाओ देश बचाओ, हिन्दी पढ़े–आगे बढ़े, हिन्दी का गौरव–देश का गौरव आदि विषय लेकर हिन्दी के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दी को समर्पित विद्वानों से उनका चित्र आदि देकर उनसे परिचित कराया गया है।

– शुभ तारिका, माह-फरवरी २००२

हिन्दी के प्रति समर्पित त्रैमासिक ''हरसिंगार'' के चौथे वर्ष का चौथा अंक बुद्धिजीवियों के बन्द नेत्रों के कपाट खोल रहा है।

साहित्य–मण्डल, श्रीनाथद्वारा–३१३३०१ राजस्थान–द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक ''हरसिंगार'' के चौथे वर्ष का चौथा अंक (अक्तूबर–दिसम्बर – २००१)''अंग्रेजी हटाओ अंक'' के रूप में श्री भगवतीप्रसाद देवपुरा द्वारा सम्पादित हुआ है, जिसे पढ़कर बुद्धिजीवियों के बन्द नेत्र खुल जाते हैं। उक्त पत्रिका के आवरण पर ''हिन्दी को अधिकार दिलायें, देश बचायें; केन्द्रीय परीक्षा का माध्यम हिन्दी हो; अंग्रेजी हटाओ--देश बचाओ; हिन्दी पढ़ें–आगे बढ़ें व हिन्दी का गौरव–देश का गौरव'' का उद्घोष करती अंग्रेजी एवं अंग्रेजियत की काली छाया से ग्रसित माँ भारती का जंजीरों में जकड़ा चित्र, भारतीय हिन्दी भक्त साहित्यकारों का हिन्दी की दुर्दशा पर चिन्तन व मनन करने को विवश करने वाला है।

उक्त पत्रिका के सम्पादक श्री भगवतीप्रसाद देवपुरा ने अपने तीन पृष्ठीय सम्पादकीय आलेख में हिन्दी की दशा का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित चित्रण करते हुए कहा है–''......कैसी विडम्बना है कि केन्द्रीय सरकार अंग्रेजी को अपनी छाती से चिपकाये हुए है और उसके वाशिन्दे नौकरियों के नाम पर दम तोड़ रहे हैं। आज दो प्रतिशत अंग्रेजीदाओं के लड़के ही ठाठ से हम पर राज कर रहे हैं। यह परिवर्तन अब कैसे होगा, कब होगा और भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से राष्ट्रभाषा हिन्दी को अपना स्थान कैसे मिलेगा–यह कल्पनातीत है।''

आगे अपने सम्पादकीय में वे कहते हैं–''आज जैसे सारा देश रामभरोसे चल रहा है, वैसे ही हम हिन्दी हितैषी भी राष्ट्रभाषा हिन्दी को रामभरोसे रहने दें। जब राम की कृपा होगी तब हिन्दी आ जाएगी। किन्तु अपने 'राम' जागृत हो जायं और वे अपनी कलम से केन्द्रीय परीक्षाओं का माध्यम राष्ट्रभाषा

हिन्दी कर दें तो कल से ही अंग्रेजी विद्यालय समाप्त होने प्रारम्भ हो जायेंगे और हमारी माँ किसी की मोहताज नहीं रहेंगी।''

सम्पादकीय आलेख के पश्चात् पृष्ठ ५ से पृष्ठ १३ तक के पद्य–खण्ड में सर्वश्री प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, रामलखन पटेल, सुनहरी लाल शुक्ल, श्री कृष्ण स्वरूप शर्मा, तत्तोत बालकृष्णन, कान्ति बोड़ा, डा. कृष्णलाल, पुरुषोत्तम देवपुरा, नीताकोठारी 'शबनम', हरिनारायण नीमा, रामेश्वर दयाल गोयल, बी.पी.शर्मा 'अमिताभ', डा.रश्मिकान्त व्यास, श्याम साहु, डा. सुरेन्द्र शर्मा व डा. रवि शर्मा–जैसे हिन्दीभक्तों की ओजपूर्ण कवितायें प्रकाशित हैं। पृष्ठ ६८ पर हिन्दी विषयक सम्पादकीय प्रमाणित है।

गद्य खण्ड में देश के जाने–माने हिन्दी लेखकों–सर्वश्री राजेन्द्र शंकर भट्ट, राज केसरवानी,डा. विश्वनाथ शुक्ल, शिवकुमार गोयल, डा. अजरा 'नूर', डा. शंकरराव कप्पीकेरी, डा. कृष्णलाल, डा. सुषमा शर्मा, मालती शर्मा, उदयवीर विराज, डा. जयन्ती प्रसाद नौटियाल, दर्शन सिंह रावत, डा. रवि शर्मा, सुनील सरवाही, आचार्य चन्द्र प्रकाश, जगन्नाथ, डा. रामप्रसाद मिश्र, अनिल त्रिवेदी, डा. विजय कुलश्रेष्ठ, रामेश्वर दयाल गोयल व उमाशंकर मिश्र के हिन्दी के चतुर्मुखी विकास के लिए बुद्धिजीवियों के मस्तिष्क को झकझोर देने वाले लेख छपे हैं। पृष्ठ ७३ से पृष्ठ ७६ तक में सर्वश्री रामाश्रण पीतलिया, डा. सुरेश पाण्डेय व माणिक लाल वशिष्ठ के विशेष आलेख प्रकाशित हैं। पृष्ठ–७७ से पृष्ठ–८१ तक में ''कवि हुंकृति'' स्तम्भ के अन्तर्गत सर्वश्री रघुनाथ चित्रेश, छुट्टन खाँ, 'साहिल', डा. श्रीकृष्ण 'जुगनू', विठ्ठल पारीक, देवकीनन्दन कुम्हेरिया व सुश्री निशा भट्ट की हिन्दी भाव–प्रधान सरस कविताएँ हैं, जिन्हें पढ़ने को बार–बार मन करता है।

पृष्ठ–८२ से पृष्ठ ८३ तक में ''समाचार झरोखा'' स्तम्भ के अन्तर्गत हिन्दी–विषयक विशेष समाचार हैं। ''विशेष लेख'' स्तम्भ में पृष्ठ–८७–८८ में ओमप्रकाश वर्मा का सम्पादक के नाम पत्र प्रकाशित है। इसी स्तम्भ में पृष्ठ ८६–६२ तक में श्री दत्तात्रेय तिवारी व पृष्ठ–६३ से पृष्ठ–६५ तक में श्री भानुप्रताप शुक्ल के विशेष लेख प्रकाशित हैं। पृष्ठ–६६–६७ व ६८ में (तीन पृष्ठीय) इन पंक्तियों के लेखक द्वारा–''हरसिंगार'' त्रैमासिक के तीसरे वर्ष का अंक –३–४ की 'क्रान्तिस्वर' में प्रकाशित की गई समीक्षा पुनः प्रकाशित की गई है। पृष्ठ–७२ व ७३ के बीच में आर्ट पेपर के बीस पृष्ठों में हिन्दी के सम्मानित साहित्यकारों, सम्मानित सम्पादकों व सम्मानित पुरजनों के जीवन–परिचय उनके चित्र सहित, व अंग्रेजी हटाओ, देश बचाओ–आलेख एवं कवि हुंकृति–स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित लेखकों व कवियों के चित्र प्रकाशित किये गये हैं।

जिन हिन्दी सेवी साहित्यकारों के चित्र–सहित संक्षिप्त परिचय दिये गये हैं उनमें सर्वश्री बी.एम. गोविन्दनंबीशन् (केरल), श्यामलाल (दिल्ली), वी.आर. वासुदेवन 'शेष' (चेन्नई), डा. महेन्द्र भानावत (उदयपुर), डा. विश्वदेव शर्मा (मुम्बई), डा. कौशलेन्द्र पाण्डेय (लखनऊ), ओमप्रकाश वर्मा (जमशेदपुर), डा. माया चौधरी (इन्दौर), डा. जयन्ती प्रसाद मिश्र (नई दिल्ली), डा. सत्येन्द्र चतुर्वेदी (जयपुर), डा. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' (उदयपुर) व राज केसरवानी (इन्दौर) हैं।

जिन हिन्दी सेवी सम्मानित सम्पादकों के चित्रों के साथ परिचय छपे हैं उनमें सर्वश्री उदयवीर विराज (दिल्ली), कृष्ण चन्द्र 'बेरी' (वाराणसी), कनक मधुकर (उदयपुर) व अनन्त कुमार साहू है और श्रीअखिल विनय (मुम्बई), श्री मुनीन्द्र (हैदराबाद) व डा. त्रिलोकचन्द्र तुलसी (होशियारपुर) के चित्ररहित संक्षिप्त परिचय छपे हैं। जिन सम्मानित पुरजनों के सचित्र परिचय प्रकाशित हैं, उनमें सर्वश्री रसिकबिहारी लाल पालीवाल, जगदीशचन्द्र शर्मा, पं. श्री नारायण लाल शास्त्री व रोड़ीलाल गुर्जर हैं।

अंग्रेजी हटाओ, देश बचाओ–आलेख एवं कवि हुंकृति के जिन वाचकों के एक पृष्ठ में केवल चित्र प्रकाशित हैं उनमें सर्वश्री डा. सुरेश पाण्डेय (वृन्दावन), श्री विठ्ठल पारीक (कामां), सुश्री निशा भट्ट (उदयपुर), रामशरण पीतलिया (कामवन),

माणिकलाल वशिष्ठ (श्री नाथद्वारा), देवकीनन्दन कुम्हेरिया (गोवर्द्धन), डा. श्रीकृष्ण जुगनू (उदयपुर) व गिरीश विद्रोही (श्रीनाथद्वारा) हैं।

इस सुन्दर पत्रिका के १२४ पृष्ठीय 'अंग्रेजी हटाओ अंक'' का मूल्य मात्र पन्द्रह रुपये हैं जो बहुत कम है। वार्षिक शुल्क मात्र ५५ रुपये हैं।

साहित्य–मण्डल, श्रीनाथद्वारा–३१३३०१ (राजस्थान) –द्वारा देशाहित में प्रकाशित की जा रही यह पत्रिका और हिन्दी सेवी लेखकों, कवियों, सम्पादकों आदि को सम्मानित किये जाने का कार्य वास्तव में हमारे देश के कर्णधार हिन्दीप्रेमी देशभक्त सत्तारूढ़ नेताओं व भ्रमित हो रहे साहित्यकारों व देश की बुद्धिजीवी जनता की बन्द आंखें खोलने वाला है। मैं इस महायज्ञ को निरन्तर जारी रखने के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं व्यक्त करता हूँ।

डा. तातोराम गुप्त 'विरही'
–संपादक 'क्रांति स्वर' फतेहपुर (उ.प्र.)

❖ ❖ ❖

'हिन्दी को अधिकार दिलाएँ, देश बचाएँ।'
'केन्द्रीय परीक्षा माध्यम हिन्दी हो।'
'अंग्रेजी हटाओ-देश बचाओ।'
'हिन्दी पढ़ें-आगे बढ़ें।'
'हिन्दी का गौरव-देश का गौरव ।'

ऐसे उद्घोष 'हरसिंगार' का 'अंग्रेजी बचाओ' अंक ही कर सकता है और 'अंग्रेजी' और 'अंग्रेजियत' से ग्रसित 'माँ भारती' को मुक्त करा सकता है। इस पवित्र यज्ञ में जितने विद्वान् मनीषियों ने अपनी रचनाओं की आहुतियाँ दी हैं, वह सभी अभिनन्दनीय, वन्दनीय हैं। 'वन्दना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो।' भारतीय संस्कृति में चार का अंक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। चाहे चार वेद हों अथवा अन्तःकरण चतुष्टय–सभी का मौलिक स्थान हैं। 'हर सिंगार' भी चार वर्ष की अवस्था में चौथा अंक अपना विशेष महत्त्व रखता हैं। पत्रिकाओं के मध्य 'हरसिंगार' का अपना स्थान है। उसमें भी यह चतुर्थ वर्ष का यह चतुर्थ अंक सहसा महाकवि कालिदास के लिए कथित उक्ति का स्मरण दिला देता है–

''काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्य शकुन्तला।
तत्रापि चतुर्थोऽङ्कः तत्र श्लोक चतुष्टयम्।।''

प्रोफेसर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी की पंक्तियाँ– ''राष्ट्रपिता की श्रद्धा बनकर आज खड़ी जो सामने। उस हिन्दी का तिलक किया है मेरे हिन्दुस्तान ने।'' एकदम महात्मा गांधी का स्मरण दिला देती है, जिन्होंने हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया था।

तत्तोत बालकृष्णन् की अर्न्वेदना कि–

'माँ के रहते
धाई का स्तन पीने वाले बच्चों !
कितना अपमान है! भारत का।
हम घोषणा करते है, गौरव से !

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा, हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा पर, व्यवहार में अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा।

हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और
लानत है ! थू है इस रीति को
ग्लानि आती नहीं उस पर हमें।।''

डा. विश्वनाथ शुक्ल ने प्रत्यक्ष क्रियात्मक रूपों के दस सूत्र दिये हैं। वह बाइबिल के दस आदेशों की भाँति हैं और हिन्दी के उन्नयन में निश्चय ही सोपान का कार्य कर सकते हैं। बस आवश्यकता हमारी निष्ठा की है।

इसी प्रकार डा. अजरा 'नूर' के सप्त बिन्दु हिन्दी के लिए सोचने के लिए बाध्य कर देते हैं।

डा. शंकरराव कप्पीकेरी के अनुसार ''बहुदलीय शासनकाल में भी हिन्दी को न्याय नहीं मिल रहा है। नये षड़यंत्र रचे जा रहे हैं।'' निश्चय ही इन षड़यंत्रों को समाप्त करना होगा, तभी हिन्दी का उन्नयन हो सकता है।

डा. जयन्ती प्रसाद नौटियाल के अनुसार–''भाषा जानने वालों की संख्या के आधार पर विश्व में हिन्दी प्रथम स्थान पर है।'' 'अंग्रेजी हटाओ देश बचाओं'' के आलेख और कवि हुंकृति के वाचक एवं कविगण सभी आदरास्पद हैं।

ऐसे समय में जब समस्त भारतवासियों को एकजुट होकर राष्ट्र के लिए एक राष्ट्रध्वज और एक राष्ट्रगान

तथा एक राष्ट्रभाषा के लिए कृत संकल्प होना चाहिए। वहीं कुछ विघटनकारी तत्त्व क्षेत्रीयता का उन्माद फैला रहे हैं, यह अन्यन्त खेद का विषय है।

पत्रिका के सभी स्तम्भ, चाहे वहां पद्यखण्ड 'गद्यखण्ड' 'आलेख' 'कवि हुंकृति' 'समाचार झरोखा' 'विशेष लेख' अथवा समीक्षा के अन्तर्गत हों, स्तुत्य हैं। वस्तुतः ऐसे सायाम प्रयास ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद दिला सकते हैं।

''या देवी सर्वभूतेषु हिन्दी रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः।।

❖ ❖ ❖

वर्तमान युग में हिन्दी साहित्य को एक सम्माननीय स्थान प्रदान करने में प्रयत्नशील साहित्य मण्डल, श्रीनाथद्वारा, द्वारा प्रकाशित 'हरसिंगार' के चतुर्थवर्ष का चतुर्थ अंक 'अंग्रेजी बचाओ' (पृष्ठ ७२) हाथों में उपलब्ध है। निश्चय ही लेखों, कविताओं, आलेखों, कविहुंकृति, समाचार झरोखों एवं विशेष लेखों के माध्यम से हिन्दी को बचाने में एवं उसे उसका सम्मानजनक स्थान दिलाने का जो स्तुत्य प्रयास हम इस अंक में पाते हैं, वह सराहनीय है। 'हरसिंगार' पत्रिका का सम्पादन 'तुलसी पुरस्कार' से सम्मानित श्री भगवतीप्रसाद देवपुरा जी, प्रबन्ध–सम्पादक श्री श्यामप्रकाश देवपुरा जी, सहयोगकर्ता श्री पुरुषोत्तम पालीवाल एवं विज्ञापन व्यवस्थापक श्री संजयप्रकाश देवपुरा जी हैं।

'हर सिंगार' के इस अंक में पृष्ठ २ से पृष्ठ ४ तक सम्पादक श्री भगवतीप्रसाद देवपुरा जी ने अपने सम्पादकीय में सम्पूर्ण देश में अंग्रेजी को अति महत्त्व देने वाले एवं हिन्दी को केवल संस्थाओं के माध्यम से एवं कुछ ही स्थानों पर स्थान देने का एक सफल चित्रण किया है।

पृष्ठ ५ से पृष्ठ १५ तक सम्मानीय कवि चित्रकारों ने अपनी सशक्त कविताओं के माध्यम से हिन्दी महिमा के जो चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत किये हैं, निश्चय ही उन्हें पढ़कर मन में हिन्दी के प्रति प्रेम द्विगुणित हो उठता है। प्रो. राजेन्द्र मिश्र जी की पंक्तियाँ–

''वाणी है स्वाधीन राष्ट्र की जन्म सिद्ध अधिकार है,
कन्नड़, तमिल, तेलगू, मलयालम सबसे इसको प्यार है,
ज्ञानपीठ के लिए एक सा भारत का हर प्रान्त है।
उस हिन्दी का तिलक किया है मेरे हिन्दुस्तान ने।
''तथा श्री रामलखन पटेल जी की कविता हिन्दी सबसे महान् की पंक्तियाँ–

''हिन्दी जन–जन की भाषा, यही हिन्दी की परिभाषा।
सप्त ऋषियों की बानी, देवताओं की अभिलाषा।'

हिन्दी की महानता, एवं अखण्डता को व्यक्त करती है। श्री कृष्णस्वरूप शर्मा' जी की कविता की कुछ पंक्तियाँ–

निश्चित वे देश के दुश्मन,
जिनसे अब भी अंग्रेजी मन।
इनको हमसे बचना होगा।
करें ये भारत का अपमान।
मेरी हिन्दी मेरी शान।।''

तथा श्री तत्तोत बालकृष्णन् जी की कविता 'अंग्रेजी हटाओ' की पंक्तियाँ–

अंग्रेजी का बोलबाला
दूर करना होगा,
उठो देश प्रेमियों, उठो भारतवासियों
उठो प्राचीन संस्कृति के पुजारी ।
तभी देश की असली आजादी होगी।

चिन्तन एवं मनन के योग्य हैं। इसी के साथ डा. कृष्णलाल, श्री पुरुषोत्तम देवपुरा, नीता कोठारी 'शबनम' श्री बी.पी. शर्मा 'अमिताभ', डा. रश्मि कान्त व्यास, श्री श्याम साहू तथा डा. रवि शर्मा जी की हिन्दी के सम्मान को अक्षुण बनाये रखने वाली कवितायें मन में हिन्दी के प्रति प्रेम को जागृत करने वाली हैं।

पृष्ठ १४ पर विभिन्न समाचार पत्रों से साभार प्रस्तुत राजकीय संस्थानों में हिन्दी का जरूरी प्रयोग, प्रधानमंत्री कार्यालय ने हिन्दी में काम करने की ठानी, आदि आलेख यह संकेत देने में सक्षम हैं कि सरकारी संस्थान भी हिन्दी के पक्षधर हैं।

पृष्ठ १५ से २३ तक प्रकाशित श्री राजेन्द्र

हर सिंगार

शंकर भट्ट जी ने अपने विस्तृत शोधात्मक लेख 'अंग्रेजी का अंधकार' में हिन्दी के आदि स्वरूप से लेकर वर्तमान अवस्था तक का उल्लेख करते हुए इस बात पर निश्चयात्मक रूप से प्रकाश डाला है कि अंग्रेजी ने लेखन और अध्यापन के क्षेत्र में स्वयं को विश्व स्तर तक का बना रखा है और हिन्दी अनुवाद की भाषा बनी हुई है। हिन्दी से अन्य भाषाओं में अनुवाद कार्य होगा तभी उसे विश्व व्यापकता एवं विश्व प्रतिष्ठा प्राप्त होगी।

डा. विश्वनाथ शुक्ल जी ने अपने (दो पृष्ठों २४–२५ के) लेख में 'मातृभाषा– राष्ट्रभाषा – राजभाषा हिन्दी की सहज ऊर्जा' में हिन्दी के महत्त्व को दर्शाते हुए क्रियात्मक रूप में हिन्दी के प्रयोग के जिन १० सूत्रों का उल्लेख किया है, निश्चय ही यदि उन्हें अपने सामान्य जीवन में अपनाने का प्रयास किया जाये तो हिन्दी पुनः अपने प्रतिष्ठापूर्ण स्थान को प्राप्त कर लेगी इसमें जरा भी सन्देह नही है।

श्री शिवकुमार गोयल जी का लेख 'अंग्रेजी भाषा की गुलामी को कब तक ढोते रहेंगे'। निःसन्देह एक सराहनीय प्रयास है। जब हम उस उपदेश को, जो दूसरों के लिए आदर्श रूप कहकर अपनाने के लिए कहते हैं, उसे अपने जीवन में आचरित कर दिखा दें, तभी उसकी सार्थकता हैं, इसे मैं एक आदर्श लेख के रूप में स्वीकार करती हूँ। दूसरों को उपदेश देना बहुत आसान कार्य है पर स्वयं उसे अपने जीवन में उतारना कठिन ही नहीं आज के समय में असम्भव सा दिखता है।

जहाँ तक हिन्दी दिवस की सार्थकता का प्रश्न है–डा. अजरा नूर जी के लेख की महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"वास्तव में अगर देखा जाये तो बात यहाँ अंग्रेजी भाषा की अच्छाई बुराई की भी नहीं है, न ही इस प्रकार के उद्‌गारों की आवश्यकता है कि मेरा बस चले तो अंग्रेजी को आग लगा दूँ। यहाँ तो प्रश्न अपने देश में हिन्दी भाषा की सर्व व्यापकता एवं सर्व ग्राह्मता का है। अंग्रेजी भाषा और साहित्य के महत्त्व एवं अध्ययन की उपयोगिता के विरोध की कहीं गुंजाइश नहीं। उसका ज्ञान मानव जाति का सम्बल है, उसका अध्ययन हो मगर उसी रूप में जैसे संसार की अन्य भाषाएँ।"

पृष्ठ ४० से ४२ तक श्री उदयवीर विराज जी ने अपने सारगर्भित लेख 'अंग्रेजी को भारत की मातृभाषा बनाने का यत्न' में सामान्य उदाहरणों के माध्यम से हिन्दी पर हावी होती हुई अंग्रेजी के प्रभाव को दर्शाया है।

डा. जयन्तीप्रसाद नौटियाल ने अपने शोध परक लेख में भाषा जानने वालों की संख्या के आधार पर हिन्दी को प्रथम स्थान पर रखा है। इससे ज्ञात होता है कि आज भी सम्पूर्ण विश्व में हिन्दी का एक सम्मान –जनक एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है।

श्री दर्शनसिंह रावत, डा. रवि शर्मा आदि के लेख भी गम्भीरता एवं चिन्तन मनन के गुणों से समाहित है, वहीं श्री सुनील सरवाही ने अपने लेख में इस बात पर विशेष बल दिया है कि हिन्दी का ज्ञान होना ही केवल सन्तोष का विषय नहीं है, अपितु इसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे विज्ञान, प्रौद्योगिकी, विधि अथवा कोई भी क्षेत्र हो, सैद्धान्तिक रूप में अपनाने के साथ व्यावहारिक रूप में भी अपनाना चाहिए। उनका मत है कि स्वयं हिन्दी भाषी प्रयोक्ताओं की उदासीनता व सीमितता, हिन्दी के सम्यक् विस्तार में बड़ी बाधा है।

राजभाषा बनने में हिन्दी पूर्णतः सक्षम है, अपने इस लेख में श्री जगन्नाथ जी ने हिन्दी की व्यापकता का वर्णन करते हुए इसे सभी क्षेत्रों में अपनाने योग्य बताया है। वास्तव में उनका यह शोध अत्यन्त सराहनीय एवं प्रशंसनीय है।

डा. विजय कुलश्रेष्ठ जी के लेख 'अनर्थकारी हिन्दी' की ये पंक्तियाँ आज के युग में कितनी सार्थक प्रतीत हो रही हैं–"ऐसे समय में जहाँ विज्ञान और प्रौद्योगिकी की नई फसलें कम्प्यूटर में उगायी जानी हों, वहाँ एक ओर अंग्रेजी के बिना सब सून जैसी खोखली दुहाई और प्रान्तीय भाषा को राजभाषा बनाये जाने का आन्दोलन कितना हितकारी होगा, इस पर सोचने की आवश्यकता किसी को नहीं है।"

श्री उमाशंकर मिश्र, डा. उर्मि शर्मा, डा. शंकरराव कप्पीकेरी आदि के लेख प्रेरणाप्रद हैं, जो हमें हिन्दी को पुनः सम्मानित स्थान राष्ट्रभाषा के स्थान पर स्थापित करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

हिन्दी सेवी सम्मानित साहित्यकारों, सम्मानित पुरजनों, तथा सम्मानित सम्पादकों का सचित्र विस्तृत परिचय, जिन्होंने हिन्दी के सम्मान को बनाये रखने के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया है, सभी के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं। ऐसे हिन्दी प्रेमियों को कोटिशः नमन है।

आलेखों में श्री रामशरण पीतलिया जी ने अपने आलेख में अपने पर पाश्चात्य संस्कृति के हावी होने का उल्लेख करते हुए एक ऐसे निर्विवाद सत्य को प्रस्तुत किया है जो प्रत्येक युग में सत्य ही रहेगा–'बिना अपनी भाषा के सारा चिन्तन गूंगा है, लुंजपुंज है।''

डा. सुरेश पाठक , श्री माणिकलाल वशिष्ठ के आलेख भी समसामयिक एवं मनन करने के योग्य हैं। कवि हुंकृति में सभी कवियों की कवितायें अत्यन्त सरल भाषा में हिन्दी के माहात्म्य का गुणगान करने वाली एवं मन में हिन्दी के प्रति जोश भरने वाली हैं। श्री रघुनाथ चित्रेश जी की कविता की पंक्ति–
''जिसको प्यार नहीं हिन्दी से वो कैसा हिन्दुस्तानी है।
ऐसे पूत कपूतों पर हम थूकें और धिक्कार कहें।
शरीर में जोश का संचार करती है।

श्री छुट्टन खाँ की कविता 'जरा कुछ सोचो' तो वास्तव में हमें चिन्तन करने के लिए बलात् प्रेरित कर देती है।

डा. श्रीकृष्ण जुगनू जी ने तो अपनी कविता 'हिन्दी से उजियारा है' में तो अत्यन्त सरल शब्दों में हिन्दी के गद्य एवं पद्य क्षेत्र की व्यापकता के साथ इसके व्याकरण को भी बहुत ही प्यारा बताया है।

श्री विट्ठल पारीक, श्री देवकीनन्दन कुम्हेरिया, सुश्री निशाभट्ट ने अपनी सशक्त काव्य रचना के माध्यम से हिन्दी का आह्वान किया है और उसे जन मानस के सिंहासन पर आरूढ़ करने का स्वयं निश्चय कर दूसरों को भी प्रेरित किया है।

समाचार झरोखा के अन्तर्गत विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित विविध लेखों का संकलन किया है।

अन्त में सम्पूर्ण रूप से 'हरसिंगार' के इस अंक के सभी लेख, आलेख, गद्य एवं पद्य रचनाएँ स्तुत्य, चिन्तनीय, मननीय एवं प्रेरणाप्रद विचारों से युक्त हैं। साथ ही सम्मानित हिन्दी प्रेमियों का विस्तृत परिचय से परिपूर्ण यह अंक संग्रहणीय एवं प्रेरणाप्रद है।

डा. रश्मि त्रिवेदी, १३/१५३, इन्दिरा नगर, लखनऊ

❖ ❖ ❖

आपकी सम्पादकीय मनीषा से मण्डित 'हरसिंगार' त्रैमासिक के दो 'अँग्रेजी हटाओ'' अंक वर्ष २: अंक ३,४ एवं वर्ष ४, अंक ४) स्वयं आपके हाथों प्राप्त कर आन्तरिक प्रसन्नता का बोध हुआ। खेद है कि आज अँगरेजी हमारे व्यवहार की ही नहीं, संस्कार की भी भाषा बनती जा रही है। साथ ही, हिन्दी को अपदस्थ करने की भी साजिश वह कर रही है। ऐसी स्थिति में उसका सर्वतोमुख बहिष्कार अपेक्षित है। यथा प्रस्तुत दोनो अंकों, में एतद्विषयक बहुआयामी और आस्वाद वैविध्य वाली सामग्री का प्रीतिकर परिवेषण हुआ है। मेरा तो दावा है कि ये दोनों अंक, जो अँगरेजी न हटाने के पक्ष में है उन्हें भी, अँगरेजी विरोध की मनोवृत्ति से सम्पन्न कर देने की क्षमता रखते हैं। अवश्य ही, आपका सम्पादन ही कुछ ऐसा है, जिसकी भाषा पाठकों के सिर चढ़कर बोलने वाली है। मेरी अशेष शुभ भावनाएं और साधुवाद स्वीकार करें। आपका सम्पादकीय जितना तीखा है, उतना ही तल्ख भी है।

– डा. श्रीरंजन सूरिदेव, पटना,

हिन्दी की मीरा विष पीकर भी न कभी मिट पाई,
रासो के छंदों में अब तक अमर चन्द बरदाई ।
धनुर्बाण के साथ रमे हैं भारत के कण-कण में,
चोपालों की रामकथा के सिया राम रघुराई।

–पं. नरेन्द्र मिश्र

हर सिंगार

समाचारों के झरोखे से

प्रधानमन्त्री-कार्यालय ने हिन्दी में काम करने की ठानी

नयी दिल्ली। हिन्दी में काम करने वाले राज्यों के साथ प्रधानमन्त्री-कार्यालय अब मात्र हिन्दी में ही काम करेगा। अहिन्दी भाषी राज्यों को अवश्य ही हिन्दी के साथ उसका अंग्रेजी रूपान्तर भेजा जाएगा।

प्रधानमन्त्री-कार्यालय ने यह कदम स्वयं प्रधानमन्त्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी की पहल पर उठाया है।

प्रधानमन्त्री के कहने पर पहली बार ऐसा होगा कि उनके कार्यालय से विभिन्न देशों की सरकारों से मिलने वाले पत्रों का जवाब हिन्दी में देना शुरू किया जायगा। कार्यालय के कर्मचारियों को निर्देश दिया गया है कि विदेशों से जो पत्र प्रधानमन्त्री को उनकी भाषा में प्राप्त होते हैं या तो उनका उत्तर उन्हीं की भाषा में देने की व्यवस्था की जाय अथवा उनका जवाब हिन्दी में दिया जाय। लेकिन साथ में उसका अंग्रेजी रूपान्तर भी भेजा जाय। पिछले काफी दिनों से प्रधानमन्त्री इस स्थिति से बहुत खुश नहीं थे कि उनके कार्यालय में हिन्दी में कामकाज उनकी अपेक्षा के अनुरूप नहीं हो रहा था। यहाँ तक कि हिन्दीभाषी राज्यों के साथ भी पत्राचार का माध्यम हिन्दी नहीं थी। इस स्थिति से क्षुब्ध होकर उन्होंने एक बैठक में टिप्पणी की, लगता है, अब मुझे ही कुछ करना पड़ेगा। इसी के बाद ही यह भी फैसला किया गया कि केन्द्र के हिन्दी जानने वाले सभी मन्त्रियों के पत्रों का जवाब, हिन्दी में ही दिया जायेगा तथा उनके साथ मूल पत्र-व्यवहार भी इसी भाषा में किया जायेगा।

कोलकाता पुस्तकालय में छह लाख दुर्लभ पुस्तकें बर्बाद

कोलकाता के राष्ट्रीय पुस्तकालय की करीब छह लाख दुर्लभ और खास पुस्तकें बारिश का पानी रिसने से खराब हो गईं तथा एशियाटिक सोसायटी के लाइब्रेरियन का पद दस साल से नहीं भरा गया, यह जानकर पर्यटन मंत्री जगमोहन को झटका लगा है। हमारे ज्यादातर पुस्तकालय जर्जर हालत में हैं–जगमोहन ने यह आज लाइब्रेरियनों की राष्ट्रीय बैठक में कहा । उन्होंने पुस्तकालयों के हालात, उनके सुधार और आधुनिकीकरण के लिए बैठक बुलाई है, क्योंकि उनके अनुसार पुस्तकालय मानव जाति का दस्तावेज हैं और पुस्तकें मानवता के लिए महान् लोगों द्वारा छोडी गई विरासत हैं। उन्होंने कहा कि वह सांसदों से कहेंगे कि वे अपने–अपने सांसद स्थानीय क्षेत्र विकास कोष के दो करोड़ रुपये में से १५ से २० लाख रुपये अपने निर्वाचन क्षेत्र में सार्वजनिक पुस्तकालयों के लिए रख छोड़ें। वह मानव संसाधन विकास मंत्रालय को भी सुझाव देंगे कि पुस्तकालय आन्दोलन को राष्ट्रीय साक्षरता मिशन से जोड़ा जाए, क्योंकि लोगों को पढ़ने का मौका नहीं मिला तो वे फिर निरक्षरता की ओर लौट जाएँगे।

– ''दैनिक जागरण से साभार
-समकालीन साहित्य समाचार,(फरवरी, २००२)

ये हिन्दी बोला करते हैं, सिर्फ चुनावों में,
बिना कार घूमा करते अंधियारे गांवों में।
इसके बाद इन्हें हिन्दी से क्या लेना देना,
छोड़ दिया करते हिन्दी को मोड़ घुमावों में ।

–पं. नरेन्द्र मिश्र

हर सिंगार

धनादेशों का रूपान्तरण रोकने की मांग की डाक विभाग । राष्ट्रभाषा हिन्दी का अंग्रेजी रूपान्तरण शीघ्र रोके

श्रीनाथद्वारा। साहित्य–मण्डल के प्रधानमंत्री श्री भगवतीप्रसाद देवपुरा ने डाक विभाग द्वारा मनीआर्डर की भाषा बदलने एवं संबंधित तक सही संदेश न पहुँचने पर चिंता व्यक्त करते हुए संचार मंत्री से मांग की है कि वे डाक विभाग की इस प्रकार की गतिविधियों को तत्काल रोकने हेतु आवश्यक कदम उठायें।

उन्होंने अपने पत्र में लिखा है कोई भी व्यक्ति धनादेश पर राशि भेजते समय उस राशि को भेजने का उद्देश्य एवं संदेश धनादेश पर अंकित करता है। लेकिन वर्तमान में यह देखने में आ रहा है कि डाक विभाग द्वारा उन धनादेशों की भाषा ही नहीं बदली जा रही, बल्कि धनादेश से यह भी स्पष्ट नहीं होता कि वह धनादेश संबंधित व्यक्ति द्वारा किस उद्देश्य से भेजा गया है, यहाँ तक कि धनादेश पर अंकित पूरा संदेश भी संबंधित तक नहीं पहुँचाया जाता। इतना ही नहीं धनादेश वितरण के उपरांत जो पावती प्राप्त होती है, उस पर भी पता अँग्रेजी में टंकित होता है एवं कई बार तो उस पर प्राप्तकर्त्ता के हस्ताक्षर एवं संस्थान की मोहर तक नहीं होती, जिससे यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि उक्त धनादेश संबंधित तक पहुँचा भी है या नहीं। उन्होंने धनादेश की भाषा बदलने पर भी आपत्ति व्यक्त करते हुए लिखा है कि धनादेश की भाषा बदलने का हक किसी को भी नहीं है।

अतः उन्होंने माँग की है कि जो धनादेश प्रेषित किया जाता है, उसे ही मूल रूप से संबंधित तक पहुँचाने की व्यवस्था एवं उसी धनादेश की पावती वापस करने की व्यवस्था की जावे। ताकि संबंधित व्यक्ति की राशि एवं संदेश सही रूप से प्रेषिती तक पहुँच सके।

श्री देवपुरा ने देश के सभी नागरिकों एवं संस्थाओं से अपील की है कि वे भी इस संबंध में संचार मंत्री को ज्ञापन भेजें, ताकि धनादेशों का अँग्रेजी रूपान्तरण रोका जा सके।

– 'अनुरोध' अप्रेल २००२

हिन्दी में भेजे गए मनीआर्डरों का अंग्रेज़ी रूपान्तरण तुरन्त रोका जाए

श्रीनाथद्वारा (राजस्थान) से प्रकाशित त्रैमासिक "हरसिंगार" के "अंग्रेजी हटाओ अंक" में आपकी विस्तृत समीक्षा पढ़ कर आनन्द आया और आप विद्वान् समीक्षक भी हैं।

इसमें "हरसिंगार" के सम्पादक साहित्य वाचस्पति–भगवती प्रसाद देवपुरा का परिचय छपा है। उनके १०–१–२००२ के पत्रांक सामना/२६२२ की प्रति मुझे मिली है, जो उन्होंने डाकघर नाथद्वारा के डाकपाल को भेजा है और उसकी अनुकृतियाँ तेरह सरकारी अधिकारियों और गैर–सरकारी संस्थाओं को भेजी गई हैं। उनका अनुरोध है कि हिन्दी में भेजे गए मनीआर्डरों का अंग्रेजी रूपान्तरण तुरन्त रोका जाए। धनादेश फार्म पर हिन्दी में लिखा सन्देश ग्राहक शुल्क किस पत्रिका के लिए है आदि मनीआर्डर पाने वालों को नहीं भेजते। हिन्दी में भेजे गए फार्म को अंग्रेजी में बदलने का किसी को कोई अधिकार नहीं है।

–डा. अखिल विनय, मुम्बई
(क्रान्तिस्वर) ११ फरवरी २००२

अनुगूँज

हम हिन्दी अपनी बलिदानी ताकत तोलेगी,
लक्ष्य भेद वाली चौहानी आंखें खोलेंगी।
आज चन्दवरदाई ने फिर ललकारा है,
अब दिल्ली के लाल किले से हिन्दी बोलेगी।

–पं. नरेन्द्र मिश्र

हर सिंगार

इतिहास कांग्रेस में अंग्रेजी का विरोध, बिहार से उठे स्वर

भोपाल (प्रटासं)। जब इतिहास पर भगवाकरण और तालीबानीकरण के आरोप लग रहे हों ऐसे में भारतीय इतिहास कांग्रेस की पूरी कार्रवाई अंग्रेजी में चलने पर नया विवाद शुरू हो सकता है और आज इतिहास कांग्रेस के अंतिम दिन यह विवाद का मुद्दा बन ही गया। जब बिहार के इतिहासकारों ने इसे हिन्दी का अपमान बताते हुए धरना शुरू कर दिया।

बात सही भी है, जब सौ करोड़ भारतीयों की भावना से जुड़े गंभीर मुद्दे पर चर्चा की जा रही हो, उसमें आम भारतीय की भाषा का ही इस्तेमाल न हो, सारी कर्रवाई बेमानी मानी जा सकती है। राज्य और केन्द्र सरकार प्रत्येक कार्यालय में राजभाषा का प्रचार कर रही है ऐसे में इस आयोजन ने इसे झूठी ढपली पीटना ही साबित किया है। बासठवीं इतिहास कांग्रेस में स्वागत के अलावा कुछ भी हिन्दी में नहीं हुआ। प्रदेश के उच्च शिक्षा मंत्री रत्नेश सालोमन ने अपना स्वागत भाषण हिन्दी में दिया। इसके बाद मुख्यमंत्री सहित सभी अतिथियों ने अंग्रेजी भाषा में ही भाषण दिया। इसके बाद पूरे दो दिन सभी मुद्दों पर अंग्रेजी को ही महत्व दिया गया। इसके विरोध में आज बिहार के इतिहासकारों का भारतीय हृदय क्रोधित हो ही उठा। इसके चलते बिहार के इतिहासकारों ने प्रदर्शन करते हुए धरना दिया। साथ ही पूरी कार्रवाई हिन्दी में चलाने की मांग की। इस प्रदर्शन के कारण भारतीय इतिहास कांग्रेस की कार्रवाई काफी देर प्रभावित रही। खबर लिखे जाने तक धरना चालू रहा।

'अनुरोध' का सम्पादकीय

आपके प्रथम पृष्ठ के सम्पादकीय से शतशः सहमत होते हुए भी मैं यह स्पष्ट करना उचित समझता हूँ कि हमारे प्रधानमंत्री इन सिपहसालारों के समक्ष इतने असहाय क्यों हैं? क्यों नहीं इनकी अवज्ञा करने वालों को वे बर्खास्त करते ? यह विडम्बना ही है कि हम पर किये जा रहे भाषायी जुल्मों को वहन किये जा रहे हैं। क्यों नहीं हम एक होकर इन सबका ठोस मुकाबला करते? अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग से आखिर कितने दिनों काम चलेगा ? आप सशक्त हैं मध्यप्रदेश की राजधानी में बैठे हैं और वहाँ के मुख्यमंत्री धड़ल्ले से पहली कक्षा से अंग्रेजी चला रहे हैं। किसे रोएँ, किस सरकार को राएँ-अपना दुखड़ा किसे सुनाए। ये सब राजनेता निश्चित ही अंग्रेजी के ही नहीं लगते, अंग्रेजों के भी गुलाम हैं।

मुझे जयपुर में तुलसी सम्मान से सम्मानित किया जा रहा था, उस समय मैंने पुरजोर अंग्रेजी का विरोध किया तो सभासीन मुख्य अतिथि जो राजस्थान के पूर्व मुख्य न्यायाधीश थे, ने कहा-"अंग्रेजी अब इस देश से नहीं जाएगी, वह बहुत अच्छी भाषा है" मैंने तुरन्त उत्तर भी दिया कि "यदि १५ अगस्त, ४७ को आप होते तो शायद यही कहते-अंग्रेज इस देश से नहीं जायेंगे, वह बहुत अच्छे आदमी हैं।" मेरा कथन सुनकर वे बड़े चिढ़े, किन्तु क्रुद्ध होकर रह गये। यह तो एक छोटा-सा उदाहरण है, ऐसा न हो एक दिन भाषा के मामले में हम कुछ न कर सकें क्योंकि अनुदान, सहायता आदि देकर धन लुटाया जा रहा है और धन लोलुप हिन्दी भक्तों और संस्थाओं ने दोगला रुख अख्तियार कर लिया है-ऐसी स्थिति में, इस विकट स्थिति में हम लोगों को मिलकर हिन्दी हित में काम करना है। आप अकेले अपने परिवार को पीड़ित करते हुए पत्र निकाल रहे हैं, हम लोग किसी प्रकार अपना कार्य कर रहे हैं। राजकीय सहायता से कोसों दूर। फिर भी कुछ कर रहे हैं-इसी का सन्तोष है। ईश्वर करे हमारे जीवनकाल में ही माँ भारती हिन्दी राष्ट्रभाषा-राजभाषा बनकर भारत को गौरवान्वित कर दे। देखें-भविष्य के गर्भ में क्या है?

— भगवतीप्रसाद देवपुरा

केन्द्र की राजभाषा विषयक नीति पर रोष

सरकार की हिन्दी के प्रति उदासीनता एवं उपेक्षा के कारण राजकीय कामकाज अँग्रेजी में ही हो रहा है। यही नहीं, सरकार की शिक्षा नीति के कारण देश के सभी राज्यों में कक्षा एक से ही अँग्रेजी शिक्षण लागू करने की योजना क्रियान्वित हो रही है। पंजाब, बंगाल, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, राजस्थान आदि में इस प्रकार की घोषणा हो चुकी है और पाठ्यक्रम में इसे लागू कर दिया गया है।

केन्द्र सरकार ने विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं का माध्यम भी अँग्रेजी ही कर रखा है और हिन्दी करने को तैयार नहीं है। इससे यह देश गुलामी की ओर निरन्तर बढ़ रहा है।

उपर्युक्त विचार राष्ट्रीय हिन्दी परिषद् की दि. ७ जुलाई की विशेष बैठक में केन्द्र सरकार की राजभाषा नीति पर रोष प्रकट करते हुए विभिन्न वक्ताओं ने प्रकट किये।

बैठक में आगामी १४ सितम्बर २००२ को वृहद् हिन्दी सम्मेलन करने का निर्णय भी लिया जिसमें ३१ हिन्दी सेवियों को सम्मानित किया जायगा तथा एक स्मारिका प्रकाशित की जायगी।

–श्यामप्रकाश देवपुरा, श्रीनाथद्वारा

राजभाषा विभाग

भारत सरकार, गृह मंत्रालय के राजभाषा प्रशिक्षण संबंधी लक्ष्यों को प्राप्त करने, उनमें आने वाली कठिनाइयों तथा दूरदराज क्षेत्रों में स्थित कार्यालयों में प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से हिन्दी शिक्षण योजना, मुंबई कार्यालय द्वारा एक विशेष बैठक का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि श्री एच.एल. जुत्शी, चेअरमैन एवं प्रबंध निदेशक, हिन्दुस्तान पेट्रोलिएम एवं अध्यक्ष नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (उपक्रम), मुंबई ने अपने उद्बोधन में हिन्दी की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा कि राजभाषा संबंधी प्रशिक्षण आधुनिकतम यंत्रों और तरीकों से जोड़ा जाना चाहिए तभी हम समय के साथ चल पाएँगे।

श्री विचारदास जी, निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली ने अध्यक्षता करते हुए कहा कि राजभाषा संबंधी प्रशिक्षण के लिए सबका सहयोग अपेक्षित है, तभी लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेंगे। इस बैठक में पश्चिम क्षेत्र के महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक और गोवा के सर्व कार्यभारी अधिकारियों एवं मुंबई स्थित कार्यालयों के सम्पर्क अधिकारियों ने सभी ने भाग लिया। श्री एन.बी.सिंह, आयकर आयुक्त एवं अध्यक्ष नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, कोल्हापुर विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित थे।

अतिथि का परिचय श्री अनंत श्रीमाली, सहायक निदेशक ने दिया एवं बैठक का संचालन डा. श्रीमती शिल्पा महाले, उपनिदेशक ने किया।

– डा. शिल्पा महाले,राजभाषा किरण से

साहित्यिक गतिविधियाँ

"विज्ञान की शिक्षा मातृभाषा में देना बहुत जरूरी है, तभी बच्चों का पूर्ण विकास होगा– लेकिन हमारे यहाँ विविधताओं के चलते अँग्रेजी माध्यम से बहुत नुकसान हो रहा है।" राष्ट्रीय हिन्दी सेवी महासंघ और विज्ञान प्रसार संस्था द्वारा जाल सभागृह में आयोजित 'हिन्दी में विज्ञान लेखनः सीमाएँ और सम्भावनाएँ' विषयक परिसंवाद और श्री योगेश केसरवानी की विज्ञान कृति 'विज्ञान के विविध आयाम' के लोकार्पण समारोह में अध्यक्ष पद से बोलते हुए प्रसिद्ध वैज्ञानिक पद्मश्री डा. दिलीप दे. भवालकर जी ने उपर्युक्त उद्गार प्रकट किए।

समारोह में कस्टम्स व सेण्ट्रल एक्साइज के आयुक्त श्री कमलेशमणि तिवारी मुख्य अतिथि थे। इनके अतिरिक्त साहित्यकार सर्व श्री सूर्यकान्त नागर, डा.विजय बाबू गुप्ता, प्रो. महेश दुबे, डा. अशोक रस्तोगी आदि ने भी हिन्दी में विज्ञान लेखन की आवश्यकता बताते हुए श्री योगेश केसरवानी की लोकार्पित कृति की उपादेयता को सराहा।

महासंघ के राष्ट्रीय संयोजक राज केसरवानी ने संस्था की गतिविधियों तथा भावी योजनाओं की जानकारी दी। संचालन आलोक दवे ने तथा आभार प्रदर्शन अरुण कुमार जैन ने किया।

- पुरुषोत्तम पालीवाल, श्रीनाथद्वारा

हर सिंगार

पत्र वार्ता

साहित्य–मण्डल, श्रीनाथद्वारा के तत्वावधान में तथा आपके सक्षम सान्निध्य में हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में श्रीनाथद्वारा में दिनांक १४–६–२००१ को अंग्रेजी हटाओ दिवस के बहुमुखी कार्यक्रमों का स्नेह आमंत्रण एवं आपका आशीष भरा सुन्दर संग्रहण योग्य सारस्वत पत्र प्राप्त हुआ, इस हेतु आपका कोटिशः हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करने के साथ ही इस सुन्दर आयोजन की सफलता हेतु मेरी शुभकामनाएँ कृपया स्वीकार कीजिये।

साहित्य–मण्डल, श्रीनाथद्वारा के पावन आँगन में दिनांक १६,२० व २१ मई २००० को आपके कुशल प्रबंधन, संचालकत्व एवं निःस्वार्थ सेवा के फलस्वरूप अ. भा. अधिवेशन का जो महान व सफलतम आयोजन हुआ तथा राजस्थान व विशेषकर श्रीनाथद्वारा के साहित्यकार मित्रों, विद्वजनों व मण्डल के कार्यकर्त्ताओं ने जो प्रेम–प्रीति की वर्षा की थी उसकी अमीट छाप अधिवेशन में उपस्थित समस्त हिन्दी सेवियों के हृदय में चिर स्मरणीय रहेगी। इस आयोजन में जहाँ साहित्य की रसधार बह रही थी वहीं प्रभु श्रीनाथजी के प्रत्यक्ष आशीर्वाद का भी अनुभव हो रहा था।

अधिवेशन में आपने साहित्यकारों व प्रतिनिधियों का जो सारस्वत सम्मान किया ऐसा आत्मीय आयोजन मैंने आज तक नहीं देखा। मण्डल की ओर से आपने प्रत्येक प्रतिनिधि को हिन्दी साहित्य के संग्रहणीय ग्रन्थों, भगवान श्रीनाथजी के सुन्दर स्वरूप एवं प्रसाद प्रदान कर धन्य धन्य कर दिया था। सम्मेलन के प्रधानमंत्री श्री श्रीधर शास्त्री साहब ने भी अपने उद्‌बोधन में कहा था कि साहित्य–मण्डल, श्रीनाथद्वारा द्वारा जो यह आयोजन किया गया है, उसे वर्षों तक कोई तोड़ नहीं पायेगा।

नाथद्वारा अधिवेशन के बाद मेरा स्थानांतरण हो जाने, पारिवारिक विशेष दायित्व का निर्वहन करने एवं दो बार मेरा एक्सीडेंट हो जाने से मैं यथासमय अपने भावों से साहित्य–मण्डल का धन्यवाद ज्ञापित नहीं कर सका, इसका मुझे खेद है।

अधिवेशन की कार्य व्यवस्था में संलग्न साहित्य मण्डल के समस्त कार्यकर्त्ताओं, विद्वानों एवं मण्डल की पाठशाला के निश्छल हृदय नन्हे–मुन्ने बच्चों का भी बारंबार धन्यवाद।

आज आपके दि.१४/६/२००१ के आमंत्रण के साथ ही अपने अध्ययन कक्ष में साहित्य–मण्डल के अंग्रेजी हटाओ अंक १९९९ एवं संयुक्तांक २००० को पढ़ रहा था। सयुक्तांक में मुझे भी स्थान दिया गया इस हेतु धन्यवाद। वास्तव में किसी यज्ञ की पूर्णाहुति के लिये संकल्प– समीधा एवं "मंत्र शक्ति" का होना अनिवार्य है। इन गुणों का आपमें समावेश है। "अंग्रेजी हटाओ" कार्यक्रमों पर सचित्र ऐसे सुन्दर ग्रन्थों का सम्पादन मैंने आज तक नहीं देखा।

–आचार्य मनोहर गोरे, एल.आई.जी.(प्रथम), १६७, इन्दिरा नगर, उज्जैन

***

२ जून, २००१ को देहरादून में सम्पन्न हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के द्वितीय सत्र में आपका अध्यक्षीय भाषण सुनने का सौभाग्य मिला। आपने 'साहित्य–मंडल' की गतिविधियों के बारे में जो जानकारी दी उससे यह हिन्दी प्रेमी गर्व का अनुभव कर रहा है। कितना त्याग, कितना अटूट प्रेम और कितना लगाव हिन्दी के प्रति 'साहित्य–मंडल' के प्रधानमंत्री और कार्यकर्ताओं का है। मैं सबके प्रति नतमस्तक हो गया हूँ। काश! मुझे भी मंडल का एक कार्यकर्त्ता बनने का सौभाग्य मिला होता। १९८६ में एक बार नाथद्वारा जाने का अवसर मिला था। पर नाथद्वारा का प्रसिद्ध मंदिर ही देख सका था। अबकी बार अवसर मिला तो साहित्य मंडल ही मेरा मंदिर होगा।

आपका भाषण सुनते समय मुझे आज से २१ वर्ष पहले इलाहाबाद में स्व. डा. फादर कामिल बुल्के का एक समापन भाषण याद आ रहा था।

हर सिंगार

श्रद्धेय बुल्के जी ने कहा था कि जब तक हम हिन्दी बोलने, लिखने और पढने में 'स्वाभिमान' का अनुभव नहीं करेंगे, हिन्दी का कल्याण नहीं हो सकता। ऐसे ही तपस्वियों के त्याग से हिन्दी की विकास–यात्रा आज तक आगे बढ़ती रही है। अगर सरकार राजभाषा अनुभाग और संसदीय राजभाषा समिति पर करोड़ों रुपया बरबाद करने के बजाय 'साहित्य मंडल' जैसी अवधारणा को मूर्त्ति रूप दे सके तो हिन्दी का अधिक भला होगा, इसमें सन्देह नहीं। हिन्दी के नाम पर कितना छल–प्रपंच, कितना वाग्जाल फैलाया जा रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है। पिछले ५० वर्षों से इतना बड़ा देश एक भाषा को नहीं अपना सका। इससे बड़ी अकर्मण्यता और नपुंसकता क्या हो सकती है। सरकारी तन्त्र कितना हृदयहीन और संवेदनाशून्य है, इस पर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। हिन्दी के स्वनामधन्य लेखक आपस में ही टांग–खिंचाई और टांग–तुड़ाई में आकण्ठ व्यस्त हैं। न जाने कितने उत्कृष्ट रचनाकार देश के कोने–कोने में अज्ञात और अनाम अवस्था में पड़े हैं। प्रकाशक उनकी रचनाओं को छापने को तैयार नहीं हैं, और किसी तरह रचनाएँ प्रकाशित हो भी जायें तो आलोचक प्रवर उन्हें अपने संज्ञान में लेने को तैयार नहीं । यही है वर्तमान का हिन्दी जगत्। राजनीति की दलदल साहित्य–जगत पर पूरी तरह हावी हो गई है। ऐसे में जनता के स्तर पर हिन्दी के प्रति अनुराग में कोई खोट नहीं है। यह साहित्य मण्डल' जैसे कृतित्व से सुस्थापित होता है। 'साहित्य–मण्डल' को मेरा कोटि–कोटि प्रणाम।

आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ एवं सानन्द होंगे। 'साहित्य–मंडल' के बारे में जानकर अभूतपूर्व खुशी का अनुभव हुआ। मंडल के कार्यकर्त्ताओं को प्रणाम एवं परिवार के सभी सदस्यों को यथा योग्य।

–शिवबाबू मिश्र, २१डब्ल्यू, बंगला एरिया, आर्डनेन्स स्टेट, रायपुर, देहरादून

***

साहित्य-मण्डल नाथद्वारा द्वारा आयोजित अंग्रेजी हटाओ दिवस १४-९-२००१

एक दृष्टि में

अपूर्व अनन्य

शक्ति भक्ति अनुरक्ति अभिव्यक्ति के भण्डार।
प्रभु कृपा से सभी कल्पनाएँ हो साकार।।

और सफलताएँ छूती हैं जो आकाश।
वर्णन कैसे करूँ, शब्द नहीं मेरे पास।।

सृजन विसर्जन का यह श्रम, वित्तीय प्रयास।
भव्य और आकर्षक पर्यावरण प्रकाश।

अनुशासन फिर और समय की सीमा भी।
संपादन और संचालन का कौशल भी।।

रहे देखते श्वांस रोक सब विद्वद्जन।
पिता और पुत्रों का हार्दिक अभिनन्दन।।

भुला नहीं पायेंगे ऐसे आयोजन।
बने अपूर्व अनन्य यहाँ बीते जो क्षण।

लोकार्पणः-

अंक तुलसी और अंग्रेजी हटाओ अंक।
श्रेष्ठ, सुन्दर, स्तर समुन्नत, रहा लोकार्पण।।

तुलसी की नवीनकृति कुण्डली रामायण।
नव ज्ञानोपलब्धि, हम हुए बड़े प्रसन्न। धन्य

–पुरुषोत्तम देवपुरा, मावली

हर सिंगार

चिन्ताएं हिन्दी उत्थान की

आदरणीय शास्त्रीजी,

आपका २६ अप्रेल का पत्र और आगे का समाचार मिला है। आपको मैं दिखावे के लिए नहीं लिखता, उसकी आवश्यकता भी नहीं रही है। लिखते समय जो मनोभाव उभरते हैं, उन्हें जैसा का तैसा कागज पर उतार देता हूँ। इस पर भी ऐसा बने जिसका उत्तर ही नहीं बने तो इसे या तो अपनी असमर्थता मानूँगा या भगवान की, और आपकी, कृपा कृतज्ञ हूँ।

जो स्थिति अंग्रेजी के पुनः प्रवेश की पंजाब में है, वही की वही उत्तर भारत के सभी राज्यों में है–बंगाल में भी इसकी शिकायत रही है। मुझे लगता है कि यथाशीघ्र सम्मेलन को अपने विश्वस्त व्यक्तियों से, जो शिक्षा व्यवस्था के जानकार हों, हर राज्य में वहाँ की भाषा और उसके साथ अंग्रेजी के प्रसार के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। आपको याद होगा, एक दो बार मैंने इस पर खेद और ग्लानि प्रकट की है कि हम सबके हिन्दी के लिए इतने प्रयत्नों के उपरान्त भी अंग्रेजी का प्रसार और आधिपत्य बढ़ता जा रहा है।

इसका कारण कहीं और है। जब तक भारत शासन में हिन्दी को उसका स्थान नहीं मिलेगा, और अंग्रेजी का बोलबाला रहेगा, अंग्रेजी में अपने बच्चों को तशकत करना हर अभिभावक के लिए स्वाभाविक रहेगा। हम प्रान्तीय प्रबन्ध पर आपत्ति चाहे जितनी कर लें, और यह की जानी चाहिये, परन्तु केन्द्र में हिन्दी को सुरक्षा जब तक प्राप्त नहीं होती, हिन्दी की स्थिति नहीं सुधरेगी।

दोनों तरीके ठीक हैं। राज्य–राज्य में भी विरोध होना चाहिए, और राष्ट्रीय स्तर पर भी, चाहे दिल्ली में आयोजन करने पड़ें। योजना बनाकर, समय लेकर, भारत सरकार के प्रमुख मंत्रियों से और प्रधानमंत्री से साक्षात् भी मिलना चाहिये। वर्तमान प्रधानमंत्री की राजनैतिक दुर्बलता के कारण ही अंग्रेजी के वे पुष्टिकारक बन गये हैं।

यह अवसर है जब सम्मेलन एक बार फिर अपना राष्ट्रीय दायित्व निभाये। यह सिर्फ भाषा का प्रश्न नहीं है। समस्त राष्ट्रीय अस्मिता बंधक हो गयी है। आप समर्थ हैं। इस ओर आपके प्रयत्न, आपका राष्ट्रीय स्वरूप और भी उन्नत करेंगे। प्रयाग ने हिन्दी को प्राण दिये हैं, अब उसके जिम्मे उसी जीवनरक्षा का दायित्व आया है। मैं जितना कर सकता हूँ, उसके लिए पूरी तरह आपके साथ हूँ।

श्री भगवतीप्रसाद देवपुरा के पत्र की प्रति आपके पास भेजी है। उत्तर देने के बारे में उन्होंने भी आप जैसी बात ही कही है। उनका मैं बहुत आदर करता हूँ।

***

प्रिय श्री देवपुरा जी,

आपका २३ अप्रेल का पत्र आया था। उसके बाद इलाहाबाद से श्री शास्त्री जी का २६ अप्रेल का पत्र आया है। उसकी प्रति भेज रहा हूँ। सिर्फ इसलिए नहीं कि उत्तर देने में उन्होंने भी आप ही जैसे भाव प्रकट किये हैं। उसके उत्तर की प्रति से आपको आभास होगा कि इस समय हिन्दी की स्थिति के सम्बन्ध में मैं कितना व्यग्र हूं। मुझे विश्वास है कि शास्त्रीजी के पत्र के साथ चंडीगढ़ में पंजाबी भाषा संरक्षा सम्मेलन का जो आमन्त्रण आया है, वह आपके पास भी पहुँच गया होगा। इसके बारे में मेरे विचार मेरे शास्त्रीजी को लिखे पत्र में हैं।

मैं अपने को माफ नहीं कर पा रहा कि इस समय सिर्फ शाब्दिक चिन्ता दिखाने के सिवा सक्रिय रूप से कुछ कर नहीं पा रहा । आप अधिक समर्थ

और सौभाग्यशाली है। सोचियेगा, और बताइयेगा कि वास्तविक परिणाम प्राप्त करने के लिए किया क्या जा सकता है।

आप भी अपनी तरह से सारे देश में अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव के सम्बन्ध में जानकारी संकलित करें तो अच्छा रहेगा। दो ओर से प्रभाव बनेगा। ऐसी जिज्ञासा अपने आप सक्रियता निर्मित करेगी।

राजस्थान में भी अंग्रेजी की स्थापना इसी प्रकार से हो रही है। मैं जितना व्यग्र हूं उतना ही अपनी असमर्थता से खिन्न। और क्या कहूं।

– विनीत राजेन्द्रशंकर भट्ट

श्रद्धेयवर,

सादर अभिवादन। आपका पत्र, शास्त्री जी के पत्र की छाया प्रति, उनका उत्तर मिला, अनुगृहीत हूँ। पंजाबी भाषा संरक्षा सम्मेलन' का निमंत्रण–पत्र मेरे पास नहीं आया है, कोई विशेष बात हो तो कृपा कर उसकी छाया प्रति भिजवाने का कष्ट करें

मैंने 'अंग्रेजी हटाओ' अंकों के सम्पादकीय में सदैव इस बात को स्पष्ट किया है कि–

१. सभी हिन्दी संस्थाएँ बिखरी हुई हैं । जब तक वे संगठित होकर कोई ठोस कार्य नहीं करेंगी, कुछ होने वाला नहीं–अपनी-अपनी ढपली अपना–अपना राग–कहावत चरितार्थ हो रही है।

२. यही हाल हिन्दी साहित्यकारों का है, वे बात हिन्दी की करते हैं, रोटी हिन्दी की खाते हैं, किन्तु अफसर बनाने के लिए अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में भेजते हैं–ऐसे दोगले जब तक मौजूद हैं, तब तक उनकी आवाज से क्या होने वाला है।

३. सभी केवल शाब्दिक बातें करके ही अपने कामों की इतिश्री कर लेते हैं। सोचते हैं उनके कहने मात्र से, प्रस्ताव पास कर देने मात्र से हिन्दी आ जायगी, ऐसा होने वाला नहीं।
अभी अपने यहाँ धनादेशों का अंग्रेजीकरण करने के विरोध में अच्छा आन्दोलन चलाया। प्रसन्नता होगी आपको कि सारे देश के अखबारों ने अपने पत्र को प्रमुखता से छापा और अब ६५ प्रतिशत तक धनादेशों का अंग्रेजीकरण रुक गया है। जब तब आन्दोलन नहीं होगा–लफ्फाजी से कुछ चलने वाला नहीं

४. पं. जवाहरलाल नेहरू ने जो विष बीज बोया है, उस फसल को काटना हमारे लिए भारी पड़ रहा है–आज भी सोमनाथ या, सोनिया, पासवान आदि नेता, यों कहें अटलजी और महाजन, आडवाणी भी जिस ढंग से अंग्रेजी को प्रतिष्ठित कर रहे हैं, वह देश को तोड़ने का कुकृत्य होगा। इन सब में केवल मुलायमसिंह ही ऐसे व्यक्ति हैं जो हिन्दी के पक्ष में सदैव लगे रहते हैं।

५. आज हर प्रान्त में पहली से अंग्रेजी चलने लग गई है। राजस्थान में तो भारतीय संस्कृति के ठेकेदारों ने तीसरी कक्षा से अंग्रेजी अनिवार्य कर दी जो वर्तमान में भी–कांग्रेस शासन में भी धड़ल्ले से चल रही है।

६. आप व्यग्र हैं, मैं व्यग्र हूँ और अन्य हिन्दी सेवी भी हिन्दी लाने के लिए अत्यन्त व्यग्र हैं, किन्तु इसके लिए करें क्या? कोई सुनने वाला नहीं, कोई आंसू पोंछनेवाला नहीं। ऊपर से नीचे तक जितने भी राजनेता हैं, साहित्यकार, कवि, पत्रकार हैं, सब अंग्रेजी के गुलाम। उनकी कथनी–करनी में भारी अन्तर है।

७. ऐसी स्थिति में मेरे पास तो आपके पत्र का एक ही उत्तर है कि हम एक निश्चित तिथि की छूट देकर बाद में आजीवन भूख हड़ताल की सूचनाएँ देदै या कोई मांगे तो अपना बलिदान दे दें –इसके सिवाय अब कोई मार्ग नहीं, बिना बलिदान हिन्दी आनेवाली नहीं।

–भगवतीप्रसाद देवपुरा

हर सिंगार

अँग्रेजी हटाओ: देश बचाओ

भगवतीप्रसाद देवपुरा

पर्दा खुलता है।

(दोनों ओर से तीन-तीन बालिकाओं का प्रवेश-वे माँ भारती का आह्वान करती हैं।)

जय–जयतु भारती, करें आरती, हम सब आज तुम्हारी।
तुम हरो अविद्या, विद्या का भरकर प्रकाश मुसकाओ।।
हे हंसवाहिनी, आज हमारी, वाणी पर आ जाओ।
हम मंगल स्तोत्र उचारें, हम मंगल भाव विचारें।
हम मंगलमय करें विश्व को, यही कामना प्यारी।। जय जयतु...
हे वीणावादिनी, आओ ! ऐसा मृदु संगीत सुनाओं।
जड़ प्रकृति बनादो नूतन, उसमें शतदल सुमन खिलाओ।।
हम कोकिल स्वर में करें तुम्हारे, स्वागत की तैयारी।।जय–जयतु...

(प्रस्थान)

(दूसरा पर्दा खुलता है- अध्यापक और कक्षानायक परस्पर बातें कर रहे हैं।)

अध्यापक - नरेश, तुमने हिन्दी दिवस के आयोजन की तैयारी करली ?

नरेश - हाँ श्रीमान् ! मैं अपने साथियों को लेकर प्रेक्षागार की सम्पूर्ण व्यवस्था कर चुका हूँ। उसमें यत्र–तत्र राष्ट्रभाषा हिन्दी के बारे में बेनर लग चुके हैं। सारी बैठक और बिजली की व्यवस्था कर दी गई है। जैसे ही आपका आदेश होगा–समारोह प्रारम्भ कर दिया जायगा।

अध्यापक- शाबाश नरेश ! तुम्हारा हर कार्य व्यवस्थित होता है। तुम्हारे साथी बड़े परिश्रमी और समझदार हैं। अतः सारा कार्य व्यवस्थित हो जाता है **(थोड़ा रूक कर)** हाँ, बताओ, कल मुख्य अतिथि किसको बुलाएँ ?

नरेश - उन्हें लाइए श्रीमान्, जिन्हें वस्तुतः हिन्दी से प्रेम हो....

अध्यापक - **(बीच ही में)** हाँ–हाँ, ऐसे व्यक्तियों को लाने से कोई लाभ नहीं जिनकी कथनी और करनी में अन्तर हो–अर्थात् हाथी के दाँत खाने के अलग और दिखाने के अलग।

नरेश - हाँ, यदि हिन्दी प्रेमी सज्जन ही पधारें तो हम लोगों को लाभ तो मिलेगा ही, उनका मार्गदर्शन भी प्राप्त होगा।

अध्यापक - मैं आज ही प्रधानाध्यापक जी से मिल कर सब तय कर लूँगा....तब तक तुम व्यवस्था ठीक कर लो।

नरेश - अच्छा श्रीमान् (जाता है)

(पर्दा गिरता है)

(पर्दा उठना, प्रधानाध्यापक जी अपने कार्यालय में बैठे हैं। अध्यापक जी श्री माथुर का प्रवेश)

प्र-अ. – आइये माथुर साहब ! कहिये, क्या बात है ?

माथुर – मैं कल के कार्यक्रम के बारे में बात करने आया था......

प्र.अ. – हाँ, हाँ कहिये, कल क्या कार्यक्रम है ?

माथुर – कल हिन्दी दिवस है श्रीमान् ।

प्र. अ.– अच्छा, बताइये मुझे क्या करना है।

माथुर – मुख्य अतिथि के रूप में किसे बुलाएँ ?

प्र.अ. – हिन्दी दिवस के लिए – किसी को भी बुला लो। एक तरह से उत्सव दिवस की पूर्ति ही तो करनी है। यों कौन सा हिन्दी दिवस ? तथा इसे मनाने से लाभ क्या ? अँग्रेजी जमी हुई है यत्र-तत्र-सर्वत्र। हिन्दी-दिवस मनाने से वह जाने वाली तो नहीं।

माथुर – ठीक है तिवारी साहब, आप सही फरमा रहे हैं कि वर्तमान स्थिति में अँग्रेजी जम कर बैठ गई है...लगता है, वह जाने वाली नहीं। फिर भी......

तिवारी जी – **(बीच ही में)** फिर भी क्या ?

माथुर – फिर भी राज्यादेशों का पालन तो करना ही होगा । हमें अपने स्तर पर 'हिन्दी दिवस' मनाना होगा।

तिवारी जी – मनाइये भाई.....मनाइये। मैं कहाँ मना कर रहा हूँ। तो फिर बुला लीजिये किसी को। मेरी समझ से वाजपेयी जी को बुला लें। ये पूर्व प्राचार्य रहे हैं और हैं भी हिन्दी भक्त । इन्हें यह सम्मान देना ठीक होगा।

माथुर – ठीक है, तो मैं वाजपेयीजी को बुला लूँ। क्या आप भी साथ पधारेंगे ?

तिवारीजी –आप अकेले ही ठीक रहेंगे.....और चाहो तो मैं भी चला चलूँगा।

(माथुर का प्रस्थान, पर्दा गिरता है)

(अगला पर्दा खुलता है। एक पलंग रखा है, पास में दो कुर्सी और छोटा टेबल रखा हुआ है। वाजपेयीजी पलंग पर बैठे हैं। वे अपने पुत्रों-रमेश-दिनेश से वार्तालाप कर रहे हैं)

दिनेश – हाँ पिताजी, स्थितियाँ ऐसी बनती जा रही हैं कि सरकार तो हिन्दी विरोधी है ही किन्तु जो लोग हिन्दी सेवी हैं– वे भी छद्म रूप से हिन्दी की हत्या करने पर तुले हुए हैं। वे सभाओं में भाषण देकर हिन्दी के पक्ष में बातें करते हैं और उनके घरों में धड़ल्ले से अँग्रेजी चलती है। भाषा अँग्रेजी, वेश–भूषा अँग्रेजी, रहन–सहन अँग्रेजी और क्या बताऊँ–खाना–पीना भी अँग्रेजी ढंग का।

वाजपेयीजी– तो इससे क्या हुआ ? घर की और देश की बात तो अलग–अलग है।

दिनेश– हाँ पिताजी, मैं देश की ही बात कर रहा हूँ। जो जैसा रहेगा वैसी ही उसकी सोच भी होगी। आज आदमी कहता कुछ है और करता कुछ है। जिसके घर में पग–पग पर अँग्रेजी बोली जाती है, वह बाहर जा कर हिन्दी के पक्ष में बातें क्यों करता है ?
क्या यह जनमानस के साथ विश्वासघात नहीं है ?

वाजपेयीजी – है, पर करें क्या ? हिन्दी संस्थाएँ ऐसे ही लोगों को अध्यक्ष और मुख्य अतिथि बनाकर गौरव महसूस करती हैं।

रमेश – पर ये संस्थाएं ऐसा क्यों करती हैं ?

वाजपेयीजी– इन्हें भारी अनुदान दिलाने वाले केन्द्रीय अधिकारी अँग्रेजीदाँ हैं, जब कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उन्हें बुलाया जाता है तो माहोल तो अँग्रेजी का होगा ही। यदि ऐसा नहीं होगा तो उनके अँग्रेजी आका अप्रसन्न नहीं हो जायेंगे ?

रमेश – पर पिताजी, हम यह सब कब तक सहन करते रहेंगे ?

वाजपेयीजी – जब तक सरकार अपना मानस न बदले

दिनेश – **(बीच ही में)** फिर कहीं ऐसा न हो जाय कि जनता उसका मानस बदलने के लिए उठ खड़ी हो ! अँग्रेज भी तो भागे थे हिन्दुस्तान से।

वाजपेयीजी –वे बातें और थी बेटा ! उन दिनों को याद कर आज भी सिहर उठता हूँ मैं। उस समय उन लोगो में देश भक्ति थी–वे स्वतन्त्रता के लिए मर–मिटने को तैयार थे और सब लड़ रहे थे अपनी भाषा के माध्यम से। हिन्दी उस समय जन–जन की भाषा थी और आज ....आज तो देश रामभरोसे चल रहा है। कोई इसका मालिक नहीं है। और भाषा ....भाषा तो सबकी अँग्रेजी बनी जा रही है। सब लोग अपने लाड़लों को सरकारी नौकरी दिलाने के लिए घर–बार बेचकर पब्लिक स्कूलों में पढ़ा रहे हैं। उन्हें हिन्दी से नाम मात्र भी लगाव नहीं..

रमेश – **(बीच ही में)** तब हमारी भारत–भारती हिन्दी का क्या होगा ?

वाजपेयीजी – होहि वही जो राम रचि राखा

(चौकीदार का प्रवेश)

चौकीदार – **(वाजपेयीजी से)** बाहर दो सज्जन पधारे हैं साहब ! वे आपसे मिलना चाहते हैं।

वाजपेयीजी – **(चौकीदार से)** उन्हें ससम्मान अन्दर ले आओ।

(रमेश-दिनेश से) और तुम अन्दर जाकर दो कुर्सियाँ ले आओ।

(तिवारीजी और माथुर का प्रवेश......रमेश और दिनेश कुर्सियाँ लाकर रखते हैं।)

वाजपेयीजी –बैठिये बन्धु, कैसे पधारे ?

तिवारी – हम आपको कष्ट देने आये हैं

वाजपेयी – **(बीच ही में)** हाँ, हाँ बोलिये, क्या बात है ?

तिवारी – कल हिन्दी दिवस है, आप कृपा कर मुख्य अतिथि के रूप में पधारने का कष्ट करें।

वाजपेयी– भाई, मुख्य अतिथि तो रहने दो– मैं ऐसे ही आ जाऊँगा।

माथुर – नहीं साहब, हमारी प्रार्थना स्वीकार कीजिये।

वाजपेयी – अच्छा भाई, आ जाऊँगा । किस समय आना है ?

माथुर – प्रात : ७ बजे

वाजपेयीजी – ठीक है। चाय लीजिये।

दोनों –धन्यवाद ! आज जल्दी है....फिर कभी हाजिर होंगे। अच्छा नमस्कार !

(दोनों का प्रस्थान)

दिनेश – आपको तो अब कल मीरा महाविद्यालय जाना ही होगा।

वाजपेयीजी – हाँ जाऊँगा। समय पर कुछ उद्‌बोधन.....

(फिर दरवाजा खोल कर चौकीदार प्रवेश करता है।)

चौकीदार – साहब, दो महिलाएँ आपसे मिलना चाहती हैं।

वाजपेयी – उन्हें ससम्मान ले आओ।

चौकीदार – अच्छा साहब **(प्रस्थान करता है और दोनों महिलाओं सहित पुनः प्रवेश करता है।)**

दोनों महिलाएँ– **(प्रवेश कर)** नमस्कार वाजपेयी साहब । हमने आपको डिस्टर्ब तो नहीं किया ?

वाजपेयीजी – नहीं सुमनजी, मेरे पास ऐसा कोई कार्य भी नहीं था जिसमें व्यवधान होता बताओ तुम कैसे आई हो ?

सुमन– कल हमारे स्कूल में हिन्दी डे मनाया जायेगा। आप चीफ गेस्ट के रूप में आएँ, अच्छा रहेगा। फंक्शन का समय प्रातः नौ बजे है।

वाजपेयी – मैं कहीं अन्यत्र व्यस्त रहूँगा.........आप किसी और को बुला लें।

सुमन – नहीं सर, आना आपको ही होगा .....प्लीज...

वाजपेयी – मुझे प्रातः सात बजे मीरा महाविद्यालय जाना है, अतः.......

सुमन – यह तो और भी ठीक रहा सर ! प्लीज एक्सेप्ट माई रिक्वेस्ट ।

वाजपेयी – ठीक है–मैं आ जाऊँगा।

सुमन – थैंक्स.....मेनी मेनी थैंक्स..........तो हम चलें।

(दोनों का प्रस्थान)

दिनेश – पिताजी, इनके यहाँ जाना कैसे ठीक रहेगा ?

वाजपेयी – स्वीकार कर लिया है–जाना तो होगा। जो होगा–देखा जायगा।

रमेश – ये सुमन जी तो पूरी अँग्रेज हैं इनके यहाँ हिन्दी –दिवस मनाने का क्या औचित्य ?

वाजपेयी – ठीक है बेटा ! अब इस प्रसंग को बन्द करो। कल जो होगा–देखा जायगा। जाओ, अब सो जाओ।

दोनों – अच्छा पिताजी **(दोनों का प्रस्थान)**

वाजपेयी – **(पलंग पर सोते हुए)** भारत में आखिर इस हिन्दी का होगा क्या ? क्या लोग विदेशी भाषा को गले का हार बना लेंगे ? क्या करें ? कैसे समझायें इन लोगों को ? अस्तु.

(निद्रालीन हो जाते हैं। पर्दा गिरता है।)

(स्थान- मीरा महाविद्यालय, बालक व्यवस्थित बैठे हुए हैं। अध्यापकगण कुर्सियों पर बैठे हैं। मुख्य अतिथि वाजपेयीजी का रमेश-दिनेश के साथ आगमन)

माथुर – हमारे आज के मुख्य अतिथि महोदय पधार गये हैं। हमारे आचार्य महोदय उनका स्वागत करेंगे।

(तिवारीजी द्वारा माला पहनाना, तालियाँ बजना)

(वाजपेयीजी का मुख्यासन पर बैठना, दिनेश-रमेश भी बैठते हैं)

माथुर – आज हिन्दी दिवस है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्मान में हमारी बालिकाएँ एक गीत प्रस्तुत करेंगी।

हर सिंगार

(बालिकाओं का प्रवेश-गीत प्रारम्भ करना)

'विश्व के आकाश में गूँजे सदा–जयगान हिन्दी का।
विश्व के साहित्य में हो उच्च – अनुपम स्थान हिन्दी का।।
जबकि भारतवर्ष पर अभिमान्, सारा जगत है करता,
क्यों न जागृत हो हमारे हृदय में, अभिमान हिन्दी का ।। विश्व के.........
एक स्वर यदि करें गायन हमारी देश भाषाएँ,
तो वही स्वर सम्मिलित बन जायगा सहगान हिन्दी का।। विश्व के........
इन्द्रधनुषी रंग मिलकर ज्योति की रश्मि में उज्ज्वल,
राष्ट्र निर्माण सच्चे अर्थ में निर्माण हिन्दी का।। विश्व ....
हो सकेगी किस तरह विकसित मधुर जनतंत्र की वाणी,
कोटि कंठों से उठेगा यदि न गौरव गान हिन्दी का।। विश्व........

(गीत समाप्ति के साथ ही बालिकाओं का प्रस्थान)

माथुर – हमारे प्रधानाचार्य माननीय तिवारी साहब सबका स्वागत करेंगे और उद्बोधन देंगे।

तिवारी – बच्चो ! हिन्दी के अनन्य उपासक माननीय वाजपेयी साहब हमारे बीच हैं। मैं उनका इस महाविद्यालय में पधारने पर स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ कि आपकी कल्याणी वाणी सुनकर आज हमारे बालक निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे। आज हिन्दी दिवस मनाने के लिए हम यहाँ एकत्रित हुए हैं। मुझे लगता है कि जिस प्रकार हिन्दी को निर्वासित कर हिन्दी दिवस मनाया जा रहा है, उसी प्रकार कभी कहीं हमारे प्यारे भारत देश के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया गया और फिर हमें भारत–दिवस मनाने के लिए कहा गया, तो हमें कैसा लगेगा ?

मैं अधिक इसलिये नहीं कहूँगा कि हिन्दी के अप्रतिम विद्वान माननीय वाजपेयी साहब हमारे बीच बिराजमान हैं। उनका प्रवचन हमारा मार्गदर्शन करेगा।

(अपने स्थान पर चले जाते हैं)

माथुर – अब मैं माननीय वाजपेयी साहब से निवेदन करूँगा कि वे हमें और हमारे बालकों को अपनी अमृतमयी कल्याणी वाणी से उद्बोधित करें।

वाजपेयी – *(बच्चों का जोर से तालियाँ बजा कर स्वागत करना।)*

मित्रो और बच्चो, शासन के निर्देशों से आज देश भर में हिन्दी–दिवस मनाया जा रहा है–किन्तु यदि देखा जाय तो इस देश में हिन्दी–दिवस मनाने का कोई औचित्य नहीं है। हमारा देश हिन्दुस्तान है तथा उसकी राष्ट्रभाषा और राजभाषा हिन्दी है। वैसे ही, जैसे इंग्लैण्ड की अँग्रेजी, चीन की चीनी, रूस की रूसी, जापान और जर्मनी की जापानी और जर्मन । जब हमारा देश अँग्रजों का गुलाम था तो अनेक बड़े लोगों ने तन, मन, धन से उनकी गुलामी ही अंगीकार नहीं कर ली बल्कि उनकी भाषा को भी गले उतार लिया। पीढ़ी दर पीढ़ी वह उसे अपने गले उतारती रही – उन्हें लाभ यह मिला कि वे शासन–प्रशासन में उच्च पदों पर आसीन हो गये। जब हम स्वतन्त्र हुए तो भी उनकी मानसिकता में अन्तर नहीं आया। हमारे विशिष्ट नेताओं में भी कई अँग्रेजीदाँ थे। इन लोगों ने उन

पर अपना प्रभाव जमा लिया जिससे हिन्दी तत्काल देश की राष्ट्रभाषा न बन सकी। उसे पन्द्रह वर्षों का वनवास दे दिया गया और वह वनवास बढ़ते–बढ़ते आज अनन्त काल के लिए हो गया। काश ! हमारा देश भी उसी समय टर्की के मुस्तफा कमाल पाशा की तरह यह कहता कि 'आज हम अँग्रेजों से स्वतन्त्र हुए हैं तो हमारी राजभाषा भी अंग्रेजी के स्थान पर तुर्की होगी। किन्तु क्या करें। हमारे तत्कालीन नेता अँग्रेजी मानसिकता से ग्रस्त थे। और उनके वंशज....ये नये काले अंग्रेज भी वैसे ही हैं। अतः हिन्दी के प्रयोग में नित नये–नये अड़ंगे लगाये जा रहे हैं। किन्तु हमें याद रखना है कि जैसे अँग्रेज यहाँ से गये वैसे ही अँग्रेजी को भी जाना है। आप सब आज प्रतिज्ञा करें कि हम सब अपना सारा कार्य हिन्दी में करेंगे–बालेंगे हिन्दी, लिखेंगे हिन्दी। सारा वातावरण हिन्दीमय होगा। बस मैं इतना ही कहकर अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

(महेश का मंच के पास आना और नारे लगाना। उत्तर में सभी बालक नारे लगाते हैं)

जय हिन्दी	–	जय नागरी
बोलेंगे हिन्दी	–	लिखेंगे हिन्दी
काले अँग्रेजों	–	हिन्दी में सब काम करो।
इस देश में अब अँग्रेजी	–	नहीं चलेगी–नहीं चलेगी
मैकाले के मानस पुत्रों	–	हिन्दी में सब काम करो
जो हिन्दी से टकरायेगा	–	सीधा ऊपर जायेगा
केन्द्रीय परीक्षाओं का माध्यम	–	हिन्दी करो–हिन्दी करो
भारतीय भाषाओं का	–	सम्मान हो, सम्मान हो
राष्ट्रभाषा हिन्दी	–	भारत मां की बिन्दी
अपना दैनिक काम	–	हिन्दी में करिये
अँग्रेजी	–	भारत छोड़ो
अँग्रेज यहाँ से चले गये	–	अँग्रेजी को भी जाना है।
हम सब बोलेंगे	–	हिन्दी, हिन्दी, हिन्दी
हिन्दी का हो बोलबाला	–	अँग्रेजी का मुँह काला
आज हमारी यह ललकार	–	अँग्रेजी जाये सागर पार

(पटाक्षेप)

(पर्दा उठता है। स्थान पब्लिक स्कूल, एक बेनर लगा हुआ है-Hindi Day-14-9-02) टाई आदि लगा कर छात्र बैठे हैं। बालिकाएँ भी हैं। सुमन अपनी अध्यापिका साथिनों सहित बैठी है। वाजपेयीजी प्रवेश करते हैं। सुमन उन्हें मंच पर ले जाती है और कुर्सी पर बैठने का आग्रह करती है। वाजपेयी कुर्सी पर बैठते हैं। पास में सुमन बैठ जाती है। एक अध्यापिका निर्मला समारोह प्रारम्भ करती है ।

निर्मला – हमारे चीफ गेस्ट आ गये हैं। अब हम हिन्दी डे का कार्य बिगिन करती हैं। फर्स्ट मिसेज सुमन चीफ गेस्ट को माला पहनाएँगी।

हर सिंगार

(सुमन माला पहनाती है, वाजपेयी उसे तत्काल उतार कर सामने रख देते हैं।)

सुमन – मैं इस फंक्शन पर वाजपेयी का अभिनन्दन करती हूँ। अब आप हमें हिन्दी के बारे में एक लेक्चर देंगे।

वाजपेयी – **(कुर्सी से खड़े हो कर)** मित्रो, बहनो, बच्चो ! यह अच्छी बात है कि आप अँग्रेजी विद्यालय में पढ़ने वाले बालक हिन्दी दिवस मना रहे हैं। किन्तु यहाँ समारोह का सारा कार्यक्रम घुटन पैदा करने वाला है। बेनर रोमन में, बातचीत, वार्तालाप और सम्बोधन–सभी अँग्रेजी मिश्रित। तब हिन्दी दिवस मनाने का अभिप्राय समझ में नहीं आ रहा है। आप आँग्ल भाषा में शिक्षा ले रहे हैं, कोई बुराई नहीं। भाषा से दुराव का कोई प्रश्न नहीं–किन्तु यह तो ध्यान दें कि हिन्दी दिवस के दिन तो सारा कार्य हिन्दी में हो–मैं आपसे इतना ही निवेदन करना चाहता हूँ।

सुमन – अनुगृहीत हूँ वाजपेयीजी, किन्तु हमें ऊपर के आदेशों का भी........

वाजपेयी – **(बीच ही में)** तो फिर हिन्दी दिवस मनाने की आवश्यकता ही क्या है ?

सुमन – आवश्यकता तो है, हैं तो हम सब इसी देश के वासी। आज नहीं तो कल–सारा काम हिन्दी में होने की संभावना हो सकती है।

वाजपेयी – जब आपका इतना अच्छा सोच है तो कल नहीं, वह काम आज से प्रारंभ कर दें, कितना अच्छा लगेगा।

सुमन – यही सही **(दरबान से)** बाबा, उतार लो ये सब पर्दे जिन पर अँग्रेजी में हिन्दी डे लिखा हुआ है। खड़िया से श्याम पट्ट पर लिखे आँग्ल अक्षर भी मिटा दो। अब हिन्दी–दिवस पर तो सारा कार्यक्रम हिन्दी में होगा ही–अपने विद्यालय का भी कार्य हिन्दी में परिणित हो जायगा।

वाजपेयी – धन्यवाद बहन सुमन ! तुम वास्तव में भारतीय नारी हो–लो, मैं हिन्दी–दिवस के आयोजन का परदा अपने साथ लाया हूँ उन परदों के स्थान पर लगा दो।

सुमन – **(दरबान से)** बाबा, वाजपेयी साहब के लाये हुए परदे को हटाये हुए अंग्रेजी परदे के स्थान पर लगा दो।

दिनेश – **(बीच ही में नारे लगाने लगता है)**– राष्ट्रभाषा हिन्दी

सारे बच्चे – भारत माँ की बिन्दी

दिनेश – जब तक सूरज चाँद रहेगा

सभी – हिन्दी तेरा नाम रहेगा।

सुमन – प्रणाम वाजपेयीजी, आपने यहाँ पधार कर आज हमारी आँखें खोल दी'....

वाजपेयी– नहीं बहन, तुमने स्वयं ही मार्ग चुन लिया।

(एक बालिका उठ कर आती है और सब बच्चों को गीत गाने को कहती है।)

सब एक साथ –
हम सब अपनी बोली बोलें।
घर में हों हम, या हों बाहर,
या जगती के किसी छोर पर,

मिलें परस्पर जहाँ कही भी,
बोलें हम अपनी ही बोली ।
इसमें जीवन रस को घोलें, हम सब अपनी बोली बोलें।

अच्छी है यह, या कि बुरी है,
प्रिय या अप्रिय कैसी भी है,
सीधी–सादी, भोली–भाली,
कैसी मीठी अपनी बोली।
इसमें हँसलें, इसमें रोलें, हम सब अपनी बोली बोलें।।

अपनी धरती, अपना नभ है,
अपना जल–थल, अपना सब है,
बात कहें, हम अपने दिल की,
साधारण बोली में अपनी।
अपनों के संग, अपने हो लें, हम सब अपनी बोली बोलें।।
हम सब अपनी बोली बोलें।।

पटाक्षेप

(पर्दा खुलता है । स्थान-वाजपेयीजी का घर। वाजपेयीजी पलंग पर बैठे हैं और रमेश, दिनेश स्टूल पर । वार्तालाप हो रहा है।)

वाजपेयी – बच्चो, तुम दोनों मेरे साथ थे, तुम्हीं बताओ, किसमें हिन्दी के प्रति प्रेम है? क्या कोई अपने मन से हिन्दी को सम्मान देता है ?

रमेश – क्षमा करें पिताजी, पहले समारोह में निश्चित ही हिन्दीमय वातावरण था, किन्तु हमें पब्लिक स्कूल वाला समारोह अच्छा लगा। हृदय परिवर्तन बड़ा कठिन कार्य है पिताजी। आपके संक्षिप्त उद्‌बोधन से ही सुमन बुआ के विचार बदल गये और उन्होंने आगे से हिन्दी में ही काम करने की ठान ली......

दिनेश – **(बीच ही में)** हाँ, यह बहुत बड़ा तोहफा है जो आपकी ओर से उन्हें मिला। ***(रमेश-दिनेश दोनों आपस में कुछ बात करते हैं फिर दिनेश पिताजी की ओर देख कहता है-)***

दिनेश – आज का दिन हिन्दी के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण है पिताजी, भले ही इस दिवस को मनाने के लिए सरकार का षड़यन्त्र ही क्यों न हो। हमारे विद्यालय में आज शाम को हिन्दी–दिवस का कार्यक्रम होगा। हालांकि आपको वहाँ निमंत्रित नहीं किया गया है पर.

वाजपेयी – पर क्या ?

दिनेश – आप हमारे संरक्षक की हैसियत से तो वहाँ आ सकते हैं।

वाजपेयी – **(थोड़ा सोच कर)** पर क्या यह ठीक रहेगा ?

रमेश – क्यों ठीक नहीं रहेगा पिताजी ? सभी संरक्षकों को निमन्त्रण तो दिया गया है। आप मुख्य अतिथि की तरह नहीं, हमारे पिताजी के रूप में पधारिये।

हर सिंगार

वाजपेयी – कार्यक्रम कितनी बजे है ?
दिनेश – शाम पाँच बजे।
वाजपेयी – अच्छा बेटों, मैं तुम्हारे साथ ही चला चलूँगा।
दोनों – अच्छा पिताजी, अब सब भोजन कर लें, फिर शाम को वहाँ चलना ही है।

पटाक्षेप

(स्थान-आर्य उ.मा.विद्यालय का प्रांगण, बच्चे करीने से बैठे हुए हैं। कुछ कुर्सियां लगी हुई हैं- उन पर अध्यापक बैठे हैं। सामने एक मेज है, उसके पीछे तीन कुर्सियां लगी हुई हैं। किसी के आने की प्रतीक्षा है।)

प्रधानाध्यापकजी माला लेकर खड़े हैं। इसी बीच रमेश एवं दिनेश सहित वाजपेयी आते हैं। प्रधानाध्यापक जी उन्हें अध्यापकों के पास ससम्मान बैठा देते हैं। रमेश, दिनेश दोनों बच्चों में जाकर बैठ जाते हैं।)

प्रधानाध्यापक – आपने बड़ी कृपा की वाजपेयी साहब
वाजपेयी – भई, कृपा किस बात की ? कभी–कभी मुझे आना तो चाहिए।
प्रधानाध्यापक – अगर सभी संरक्षक ऐसा ही सोच लें तो......

(इसी बीच मुख्य अतिथि का प्रवेश, प्रधानाध्यापक तुरन्त उनके पास जा कर माला पहनाते हैं और उन्हें लाकर मुख्य अतिथि के रूप में बैठा देते हैं। एक कुर्सी पर प्रधानाध्यापक भी बैठ जाते हैं। मुख्य अतिथि उठ कर वाजपेयी जी को भी अपने पास लाकर बैठा देते हैं। संयोजक आते हैं।)

संयोजक – महानुभावो, हमारे मुख्य अतिथिजी पधार चुके हैं। अब हमारा हिन्दी दिवस का कार्यक्रम प्रारम्भ होता है।

(पर्दा उठना, दोनों ओर से बालिकाओं का प्रवेश/बालिकाएँ 'जय हिन्दी गीत गाती हैं')

जनवाणी कल्याणी जय–जय, जय हिन्दी प्यारी
भारत की भारती, जन गण की उजियारी।।
हिमगिरि से सागर तक भारी धारा लहराई।
चन्द, सूर, मीरा, तुलसी की, वाणी गति लाई ।।
पान किया रसखान डूबकर, नानक पद गाये।
धन्य रहीम, मतिराम, कबीरा, भूषण वश लाये।।
मुक्तामणि हे गये सभी पर दयानन्द भारी।
जनवाणी ....।।

किया बिहारी ने बिहार अति, भारतेन्दु चमके।
केशव कुल की कानकरी कुछ, कलित कला दमके।।
दादा, तिलक, गोखले, लाला, गाँधी गति लाये।
वल्लभवीर, सुभाष, मालवीय, टण्डन गुण गाये।।
जय हिन्दी, बिन्दी माता की, भाल मुदितकारी।
जनवाणी..।।

हर सिंगार

जो संकल्प पूर्ण करना है, युवावीर आओ।
मुक्ति तभी, जनवाणी अपनी, हिन्दी गति लाओ।।
सभी उठें भारत भाषाएँ, साथ–साथ आयें।।
हिन्दी हिन्द राष्ट्रभाषा है, गौरव गति लायें।।
संविधान सम्मान करो नित, राष्ट्रभक्ति प्यारी।
जनवाणी ....।।

(बालिकाओं का जाना/तालियों की गड़गड़ाहट)

संयोजक – आपने 'जय हिन्दी प्यारी' गीत सुना। अब हमारे विद्यालय के छात्र श्री दिनेश और रमेश संयुक्त रूप से अपनी कविता प्रस्तुत करेंगे।

दिनेश – रमेश – 'आज राष्ट्रभाषा हिन्दी संकट में है। हमें चाहिये कि हम दृढ़तापूर्वक उसके संकट को दूर करें। हम दोनों ही एक कविता, संयुक्त रूप से, आपके समक्ष, इसी बात को लेकर प्रस्तुत करेंगे।

'ओ मैकाले के मानस पुत्रों, हो सावधान,
सुनलो जन–जन की वाणी को।
तुम धोकर हाथ पड़े हो जिसके पीछे,
कर नहीं सकोंगे पदच्युत उस कल्याणी को।।

होती सहनशीलता की भी तो कुछ सीमा,
मत समझो होंगे पूत कपूत सब इसके।
यह बैठी अपने बाल सँवार रही थी जो,
आकर बिखराया तुमने जूड़े को उसके।।

यह बिखरे बाल कराल व्याल बन जायेंगे,
पांचाली का जूड़ा यदि खुल जायेगा।
तुम स्वयं विचारो, सोचो इससे हिन्दी के,
पुत्रों में कितना रोष, क्षोभ छा जायेगा।।

अँग्रेज गये, अँग्रेजी की कलंक कालिख,
क्यों भारत–मुख पर, अरे पोतना चाह रहे ?
लगता अपने हाथों से, तुम आज बन्धु,
यह सूत्र एकता, स्वयं तोड़ना चाह रहे।।

यह याद रहे, यह संस्कृति की प्रतिमा पुनीत,
इसको तप की ज्वालाओं ने जग में पाला।
भारत की वाणी को वंचित उसके पद से,
कर नहीं सकेगा फिर भी यह विधान काला।

जय हिन्दी–जय नागरी–

(तालियों की गड़गड़ाहट)

संयोजक – अब जयशंकर अपनी कविता प्रस्तुत करेंगे।

हर सिंगार

जयशंकर – भारत भर में आज खिंच रहा, हिन्दी–पांचाली का चीर।
जीवन में तूफान भरो, अब आगे कदम बढ़ाओ वीर।।
तड़प रहा है सारा भारत, बोल सके अपनी भाषा।
ललक रहे हैं सारे प्राणी, मिलने की लेकर आशा।
कश्मीर, मद्रास और बंगाल तथा गुजरात मिलें।
एक राष्ट्रभाषा मानस में, रंगबिरंगे फूल खिलें।।
रच दो वह पावन संगम, प्यासा जग जावे जिसके तीर।
जीवन में तूफान भरो अब, आगे कदम बढ़ाओं वीर।
भारत भर में आज खिंच रहा, हिन्दी पांचाली का चीर।
जीवन में.. ।।

संयोजक – हिन्दी पांचाली का चीर खिंच रहा है, हमें आगे बढ़ कर उसे बचाने की तैयारी करनी होगी। हमारा सौभाग्य है कि माननीय वाजपेयी साहब आज यहाँ बिराजे हुए हैं। मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे पधारें और हमें मार्गदर्शन दें।

वाजपेयी – **(आकर)** मित्रों, आपने मुझे बोलने का अवसर दिया, मैं अनुगृहीत हूँ। वस्तुतः आज हिन्दी की स्थिति बड़ी विचित्र हो गई है। हम सब पब्लिक स्कूलों के पीछे भाग रहे हैं। अपना धन–माल बेचकर बच्चों को अँग्रेजी पढ़ा रहे हैं पर इससे होगा क्या ? क्या सभी सरकारी अधिकारी बन जाएँगे ? इस मृगतृष्णा ने हिन्दी को बहुत पीछे धकेल दिया है। हम जब तक अपनी मानसिकता नहीं बदलेंगे, तब तक हिन्दी स्थापित नहीं होगी। सरकार ने कभी हिन्दी हितों को नहीं देखा, वह आज भी अँग्रेजी से ओतप्रोत है। हिन्दी से उसका कोई लेना–देना नहीं। अतः हमें स्वयं ही हिन्दी को स्थापित करने के लिए कटिबद्ध होना होगा। इस कार्यक्रम से लगा कि युवाओं में हिन्दी के बारे में आक्रोश है–वह तभी मिटेगा जब हिन्दी की पूर्ण स्थापना हो जायगी।

जय हिन्दी–जयनागरी।

संयोजक – अब हमारे मुख्य अतिथि महोदय हमें मार्गदर्शन देंगे।

मुख्य अतिथि –मित्रो, एक सफल कार्यक्रम के लिए मेरा धन्यवाद स्वीकारें। देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी है और रहेगी। सरकार अँग्रेजी की पूँछ चाहे जितना पकड़े रहे उसे यहाँ से जाना है। यदि सरकार हठधर्मी पर अड़ी रही तो जनमानस का आक्रोश फूट पड़ेगा–जो इन काले अँग्रेजों को जमींदोज कर देगा। आज आक्रोश के जो स्वर फूटे हैं, वे अनुचित नहीं हैं। अँग्रेज गये–अँग्रेजी को भी जाना है–यह शत–प्रतिशत सत्य है। दक्षिण भारत में आज हिन्दी का कोई विरोध नहीं है। उन्होंने धड़ल्ले से हिन्दी सीखी है–वे आज हिन्दी में निष्णात हैं। अगर हिन्दी की चिन्दी की जा रही है तों हिन्दी क्षेत्रों में। अतः हमें अपना घर देखना होगा और उन लोगों को सबक देना होगा जो हिन्दी के पीछे लट्ठ लेकर पडे हुए हैं। मित्रो, आज के दिन हम प्रतिज्ञा करें कि हम हिन्दी को सम्मान देंगे और यदि आवश्यकता हुई तो इसके लिए अपने प्राणों का बलिदान देने में भी नहीं चूकेंगे। । इस दृढ़ निश्चय से ही हिन्दी की स्थापना होगी।

जय हिन्दी, जय भारत।

(दिनेश-रमेश नारे लगाते हैं)

अडवानी को दे दो तार	–	अँग्रेजी भेजो सागर पार
अटलजी को दे दो तार	–	अँग्रेजी भेजो सागर पार
मैकाले के मानस पुत्रों	–	हिन्दी में सब काम करो
राष्ट्रभाषा हिन्दी	–	भारत माँ की बिन्दी।
जय हिन्दी	–	जय नागरी

संयोजक – मैं कार्यक्रम समाप्ति की घोषणा करता हूँ।

– प्रधानमंत्री, साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

* * *

"हिन्दी आन्दोलन"

(टी.वी. सीरियल से साभार)

अमिताभ बच्चन	:	हिन्दी तो है भारत की पहचान, हिन्दी तो है भारत की शान.
शत्रुघ्न सिन्हा	:	पूछो उन नेताओं से, क्यों होश नहीं हैं करते,
	:	क्यों भारत में नुमाईश, अंग्रेजी की है करते,
सुनील दत्त	:	क्या शान नहीं है हिन्दी में, क्या मान नहीं है हिन्दी में,
उदित नारायण	:	क्यों मचलते नहीं हिन्दी में, उनके अरमान..............
दिलीप कुमार	:	अंग्रेजों की गुलामी ने हज़ारों लिए बलिदान,
		हिन्दी के असर से थक हार के छोड़ गए मैदान.
आशुतोष राणा	:	फिर क्यों अंग्रेजों की अंग्रेजी का है बोलबाला,
जैकी श्राफ	:	क्या इसी लिए गांधी, सुभाष, भगत हुए कुर्बान ..
जितेन्द्र	:	प्यारे देश वासियों, हिन्दी का कुछ तो ख्याल करो,
गोविन्दा	:	अपनी राष्ट्र भाषा में अपनी देखभाल करो
नाना पाटेकर	:	हिन्दी बोलने में जो शरमाये, वे अपना भारत छोड़ जाए,..
		देश भक्त बनों तब कहलाओगे भारत की सन्तान
यूसुफ खान	:	क्या तुम अंग्रेज हो, क्या मैं अंग्रेज हूँ ?
		क्या ये इंगलिश्तान हैं ? फिर क्यों हम अंग्रेजी बोलें ?
		प्यारे ये तो हिन्दुस्तान है।
आमिर खान	:	मेरा भारत महान
सलमान खान	:	मेरा भारत महान
सैफ अली खान	:	मेरा भारत महान
शाहरूख खान	:	मेरा भारत महान
अनिल कपूर	:	मेरा भारत महान
सनी देओल	:	मेरा भारत महान

कोरस :
सरिता
धर्मचन्द्र चौहान
रमेश चौहान
रमेश प्रजापति
दिलशाद
संतोष कुमार



